एकेडेमॉस- 2021

विभिन्न विषयों से सम्बद्ध, पूर्व-समीक्षित वार्षिक शोध पत्रिका

ISSN 2231-0584
Vol. 15, 2021

कमला नेहरू कॉलेज

(NAAC द्वारा 'A' ग्रेड मान्यता प्राप्त)

दिल्ली विश्वविद्यालय

एकेडेमॉस- 2021

ISSN 2231-0584

विभिन्न विषयों से सम्बद्ध, पूर्व-समीक्षित
वार्षिक शोध पत्रिका

कमला नेहरू कॉलेज
(NAAC द्वारा 'A' ग्रेड मान्यता प्राप्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

साँची स्तूप के एक द्वार का दृश्य। निर्माण का वह भाग जिस पर हमारा 'लोगो' (Logo) आधारित है, सबसे ऊपर दृश्यमान है।

स्वामित्व एवं अन्य विवरण

एकेडेमॉस- 2021

ISSN 2231-0584

प्रपत्र–XVI

प्रकाशन स्थल	:	कमला नेहरू कॉलेज (NAAC द्वारा 'A' ग्रेड मान्यता प्राप्त) दिल्ली विश्वविद्यालय
प्रकाशन समयावधि	:	वार्षिक
मुद्रक	:	सेंसर एडवरटाईंजिंग प्रा. लि.
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एफ–81बी, लक्ष्मीनगर, दिल्ली–110092
प्रकाशक एवं स्वामित्व	:	डॉ. कल्पना भाकुनी (प्राचार्या) कमला नेहरू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली–110049
पता	:	कमला नेहरू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय
सम्पादक	:	डॉ साधना अग्रवाल
सहसम्पादक	:	डॉ. मैत्रेयी कुमारी

मैं (डॉ. कल्पना भाकुनी) घोषित करती हूँ कि ऊपर दिए गए सभी विवरण मेरी जानकारी के अनुसार सही हैं।

अप्रैल, 2021

डॉ. कल्पना भाकुनी
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

ISSN 2231-0584

अनुक्रमणिका

संपादकीय
डॉ साधना अग्रवाल

1. **भारतेन्दु की स्त्री–दृष्टि और मनीषा कुलश्रेष्ठ का 'मल्लिका' उपन्यास** **1–8**
डॉ. कमलेश कुमारी

2. **समकालीन स्त्री लेखन में निरूपित पुरुष छवि –** **9–20**
रजनी गुप्त

3. **'कोरोना में भारतीय परिदृश्य और स्त्री केन्द्रित हिन्दी दलित कविता'** **21–31**
डॉ. रजत रानी मीनू

4. **हिन्दी–भाषा की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ** **32–37**
डॉ. तृप्ता

5. **भारतेन्दु की भाषा–नीति** **38–44**
डॉ. श्रीनिवास त्यागी

6. **विज्ञापन–उपभोक्ता संस्कृति और बदलता भारतीय परिदृश्य** **45–50**
डॉ.सुषमा सहरावत

7. **डॉ.सत्यव्रत शास्त्री और उनका 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' महाकाव्य** **51–57**
हेमलता रानी

8. **संचार एवं संचार–माध्यमों की भाषा** **58–68**
डॉ0 ललित चंद्र जोशी

ISSN 2231-0584

9.	**महात्मा गाँधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी** डॉ.मीना	**69–76**
10.	**भक्तिकाल की सार्थकता** डॉ. राजमोहिनी सागर	**77–84**
11.	**नाट्यशास्त्र में संगीत–शास्त्र** डॉ गुंजन कुमार झा	**85–96**
12.	**एक कदम पर्यावरण संरक्षण की ओर : गाँधी जी के विचार में** डॉ. संगीता वर्मा	**97–104**
13.	**टोकरी में दिगंत; स्त्री संघर्ष और जिजीविषा** डॉ भारती	**105–111**
14.	**दलित हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक जीवन** डॉ. मोहम्मद इसराइल	**112–116**
15.	**उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियों में मनोविज्ञान** शाहीन बानो	**117–121**
16.	**केशव की स्त्री–दृष्टि** नेहा गौड़	**122–129**
17.	**'अहिंसा परमो धर्मः' की पशुपक्षिविचिन्तनम् में समुद्भावना** रामजीत यादव	**130–145**

ISSN 2231-0584

18. **शांकर वेदान्त में देह की अवधारणा** **146—154**
अमित सिंह

19. **सूक्ष्म शरीर का दार्शनिक पर्यालोचन** **155—163**
डॉ. अनिल कुमार

20. **पुरुष सत्तात्मक समाज में औरत, अस्तित्व व अस्मिता की तलाश : कृष्णा सोबती के कथा साहित्य के संदर्भ में** **164—168**
श्रीमती नीतू सिंह

21. **उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी की ठेकेदारीः सामाजिक बहिष्करण या मुक्ति का अस्त्र?** **169—173**
करन

ISSN 2231-0584

संपादकीय

आज जब पूरा विश्व कोरोना महामारी के दौर से जूझ रहा है तो मुझे निराशा के इस क्षण में रेमंड विलियम्स की ये पंक्तियां दोहराने का मन करता है कि 'हम अच्छे समय से जितना सीख सकते हैं, उससे कम बुरे समय से नहीं।' चूंकि अक्षर को अजर अमर माना गया है और कहा गया है कि दुनिया के नष्ट होने पर भी शब्द कभी नहीं मर सकते। शब्द की सार्थकता पर मुझे फिलिस्तीनी कवि महमूद दरवेश की कविता याद आती है–

जब तक मैं जीवित रहूँगा

जब तक मेरे शब्द गूंजते रहेंगे।

यूँ तो शोध या आलोचना भले ही नीरस और उबाऊ काम हो लेकिन मुझे लगता है कि आलोचना का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है : रचना को समझने में पाठकों की मदद करना। तमाम बातें इसी में आ जाती हैं। जिस प्रकार रचना से आलोचना को आधार और महत्व मिलता है, उसी प्रकार आलोचना से शोध को दिशा मिलती है और शोध से आलोचना को दृष्टि मिलती है। शोध मूलतः तत्वों पर निर्भर होता है। वैसे भी ज्ञान की दृष्टि से शोध बहुत जरुरी है और उतना ही जरुरी है शिक्षण में इसका इस्तेमाल। अच्छा शिक्षण शोध से ही उपजता है। इसलिए एक अच्छे शिक्षक का या किसी भी शिक्षण संस्थान के उत्कृष्ट होने की पहचान शोध को ही माना जाता है। चूंकि शोध का मूल उद्देश्य कोई नई स्थापना करना होता है।

सुपरिचित आलोचक परशुराम चतुर्वेदी ने अपने प्रसिद्ध लेख ' आलोचना और अनुसंधान' में लिखा है–' अनुसंधान का काम अब केवल किसी वस्तु के सम्बन्ध में पता लगाना अथवा किसी बात के उत्स तक जाने का प्रयास करना मात्र ही नहीं रह गया, उसके चीज रूप से लेकर उसके विकास तक का परिचय प्राप्त करना , सजातीय वस्तु के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करना तथा विभिन्न दृश्टिकोणों के अनुसार उसका उचित और वास्तविक स्थान निर्धारित करना भी आज उक्त प्रकिया के प्रमुख अंग बन गए हैं। आज का अनुसन्धित्सु अपने कार्य में कोरी जिज्ञासा की प्रेरणा से नहीं प्रवृत्त होता और न उसकी प्राप्ति मात्र से ही वह संतुष्ट होना चाहता है। वह अपने प्रयत्नों का क्षेत्र और भी विस्तृत करके अपने को एक पक्का प्रयोक्ता भी सिद्ध करना चाहता है। इस प्रकार आधुनिक अनुसंधान प्रणाली शास्त्रीयता की प्राचीन वृत्ति को लांघकर क्रमशः ठेठ सामाजिक जीवन के अधिकाधिक सम्पर्क में भी आती जान पड़ती है।'

एकेडेमॉस हिन्दी का यह 15वां अंक, वर्ष 2021 पाठकों को समर्पित करते हुए हमें अत्यंत खुशी हो रही है। इसमें संकलित तमाम शोध आलेख बेहद महत्वपूर्ण हैं। चूंकि इनमें यदि एक ओर चुनौतियां हैं तो दूसरी ओर अंहिसा परमो धर्मः भी है। विषयों की विविधता

हमारा ध्यान आकृष्ट करती है और रोचकता बनी रहती है। मुझे उम्मीद है कि इन आलेखों को पढ़कर शोद्यार्थी और पाठक नवीन सूचनाओं और जानकारियों से अवश्य लाभान्वित होंगे। हम उन सभी लेखकों, विद्वानों, शोद्यार्थियों के हृदय से आभारी हैं कि जिन्होंने अपने शोधपरक आलेख भेजकर हमें सहयोग किया है।

कला प्रेमी, साहित्य प्रेमी, सुरुचि सम्पन्न माननीया प्राचार्या डॉ कल्पना भाकुनी जी से न केवल हमेशा की तरह सहयोग मिला है बल्कि इस अंक को बेहतर और उत्कृष्ट बनाने के लिए उन्होंने अपने बहुमूल्य सुझावों से हमारा मार्गदर्शन भी किया है, जिसके लिए हम उनके प्रति हृदय से आभारी और कृतज्ञ हैं। मैं अपनी संपादकीय सहयोगी डॉ मैत्रेयी कुमारी का भी आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिनके सहयोग से एकेडेमॉस का यह अंक आपके सम्मुख है।

आपके बहुमूल्य सुझावों और प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

डॉ साधना अग्रवाल

भारतेन्दु की स्त्री–दृष्टि और मनीषा कुलश्रेष्ठ का 'मल्लिका' उपन्यास

डॉ. कमलेश कुमारी
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
शहीद भगत सिंह कॉलेज
दिल्ली, विश्वविद्यालय
ईमेल : kamleshsbsc.kumari@gmail.com

हिन्दी नवजागरण के प्रणेताओं में भारतेन्दु सबसे अग्रणी रहे हैं उनके राष्ट्र एवं हिन्दी प्रेम के साथ समाज सुधार के प्रयासों को वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत की सुदृढ़ नींव कहा जा सकता है। नवजागरण केवल एक पक्षीय एवं एक क्षेत्रीय ही नहीं था वरन् औपनिवेशिक शासन में भारत के अधिकांश प्रांतों में धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक परिवर्तन का दौर शुरू हो चुका था। यद्यपि इस बदलाव में स्वरूपगत भिन्नता थी। 19वीं सदी के इस नवजागरण में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न शिक्षा का था और विशेषतः स्त्री शिक्षा का। चूँकि भारतेन्दु की स्त्री दृष्टि को समझने हेतु यह आवश्यक है कि तत्कालीन स्त्री शिक्षा के प्रारूप निर्धारण में भारतेन्दु की क्या भूमिका थी? क्या वहाँ स्त्री–पुरुष यानि शैक्षिक स्तर पर लैंगिक समानता थी? और भारतेन्दु के इस संदर्भ में क्या विचार थे? यह सत्य है कि 'भारतेन्दु एक ओर ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा को हिन्दुस्तानियों के लिए जरूरी ठहराते थे, लेकिन दूसरी ओर लड़कियों को इसी ज्ञान–विज्ञान से दूर भी रखना चाहते थे।'[1] वास्तव में 19वीं सदी के पश्चिमी शिक्षा प्राप्त सुधारकों का एक बड़ा हिस्सा स्त्रियों को अपने धर्म का वाहक और अपनी सभ्यता–संस्कृति का मूर्तिमान रूप समझता था।

भारतेन्दु उनकी धार्मिक और नैतिक शिक्षा को बहुत जरूरी मानते थे। उनका यह विचार परिवार और समाज में स्त्रियों की परंपरागत भूमिका के समर्थन पर टिका था।[2] अनेक अवसरों पर भारतेन्दु के भाषणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है जब उन्होंने कहा था– 'लड़कियों को भी पढ़ाइये किन्तु इस चाल में नहीं जैसे आज कल पढ़ाई जाती हैं जिससे उपकार के बदले बुराई होती है ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखे, और पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।'[3] इतना ही नहीं भारतेन्दु की स्त्री दृष्टि नील देवी की भूमिका से भी प्रकट होती है 'जब मुझे अंग्रेजी रमणी लोग मेद सिंचित केश राशि कृतृम कुन्तलजूट, मिथ्या रत्नाभरण और विविधवर्ण–वसन से भूषित क्षीण कटि देश कसे, निज–निज पति–गण के साथ प्रसन्न बदन इधर से उधर फर–फर कल की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं तब इस देश की सीधी–साधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुख का कारण होती है। इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह की भाँति हमारी कुल लक्ष्मी गण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमै।'[4]

 ISSN 2231-0584

भारतेन्दु की स्त्री दृष्टि की स्पष्ट झलक हमें उनकी 'बालाबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से भी मिलती है। जिसे स्त्री–मुक्ति की पत्रिका माना गया जबकि ऐसा था नहीं।

इस पत्रिका में भारतेन्दु ने बहुत ही सावधानी और चतुराई पूर्वक विषयों का चयन किया। इसी पत्रिका में प्रकाशित एक फ्रांसीसी कहानी में महज 19 साल की उम्र में एक लड़की शहीद हो जाती है लेकिन पत्रिका में उसका निष्कर्ष बताया गया कि ''जो स्त्रियाँ अपना स्त्री धर्म छोड़कर देवियों जैसी वीरता दिखाने की कोशिश करेंगी, उनकी दुर्गति ऐसी ही होगी।.... स्त्रियों के घर जो पति देव रहते हैं उन्हीं की भक्ति पूर्वक सेवा करना परमोत्तम है।[5] कहने का तात्पर्य है कि उनकी इस पत्रिका में स्त्रियों को आधुनिक बनाने या आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा देने की अपेक्षा उन्हें बच्चों के पालन–पोषण से लेकर घरेलू कामों, परंपरागत पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप ढालने के उपदेश निहित थे जिसके लिए सती, सीता–सावित्री आदि आदर्श महिलाओं का महिमा मंडन होता था। भारतेन्दु की स्त्री दृष्टि में लैंगिक असमानता प्रत्येक स्तर पर मौजूद है। उनकी दृष्टि में स्त्री के लिए एकमात्र सुख पति सेवा है उसका पति से विलग होकर अपना कोई अस्तित्व नहीं।

'बालाबोधिनी' की विषय वस्तु भी इसी तथ्य को उजागर करती है यह सर्वविदित है कि 'भारतेन्दु रसिक जन थे। ब्रजभाषा में उन्होंने काफी श्रृंगारिक कविताएँ लिखी। अपनी पत्रिकाओं 'कविवचन सुधा', 'हरिशचंद्र मैग्जीन' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका में श्रृंगारिक रचनाएँ छापने में उन्हें कभी दिक्कत महसूस नहीं हुई। ये पत्रिकाएँ जरूर उन्होंने–सिर्फ पुरुषों के लिए निकाली होंगी क्योंकि जब उन्होंने ऐलान करके स्त्रियों के लिए 'बालाबोधिनी' पत्रिका निकाली, तो चार साल तक छपे उसके किसी भी अंक में श्रृंगार रस की दूर–दूर तक कोई गंध नहीं मिलती।[6] इसका तात्पर्य है कि भारतेन्दु ने कुलीन स्त्रियों का कहीं चरित्र भ्रष्ट न हो जाए इस भय से स्त्रियों को श्रृंगारिक साहित्य से दूर रखा। यहाँ प्रश्न उठता है कि ये दोहरे मानदण्ड क्यों? पुरुषों के लिए कुछ और स्त्रियों के लिए कुछ ओर! अपनी रसिक प्रकृति के कारण भारतेन्दु ने अपनी खास प्रमिकाओं, आलीजान उर्फ माधवी और मल्लिका दोनों के लिए श्रृंगार के पद लिखे थे लेकिन उन्हें भद्र घरानों में रहने वाली महिलाओं की चिन्ता अधिक थी जिन्हें वे इस श्रृंगारिक साहित्य से दूर रखना चाहते थे। यही कारण है कि 'बालाबोधिनी' में श्रृंगारिक रचनाओं का कोई जिक्र तक नहीं मिलता। निःसंदेह भारतेन्दु की अनेक स्तरों पर सुधारवादी मानसिकता होने के बावजूद स्त्री के संदर्भ में उनकी संकीर्ण और नैतिकता वादी सोच ही मिलती है जो उनकी लैंगिक असमानता पर आधारित स्त्री दृष्टि को ही प्रतिपादित करती है।

भारतेन्दु के उपर्युक्त स्त्री संबंधी विचारों के आलोक में यदि मनीषा कुलश्रेष्ठ के नवीनतम उपन्यास 'मल्लिका' की समीक्षा करें तो एक–एक करके भारतेन्दु की स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी मान्यता का उद्घाटन सहज ही हो जाता है। किसी सीमा तक भारतेन्दु की इस दृष्टि की निर्मिति के लिए तत्कालीन पितृसत्तात्मक सामंती परिवेश भी कम जिम्मेदार

नहीं। सामंती प्रवृत्ति जो स्त्री पर आधिपत्य और मिथ्या प्रदर्शन प्रियता पर आधारित है, 'मल्लिका' उपन्यास में इसकी बहुत गहरी पड़ताल की गई है।

लेखिका का वक्तव्य है– 'मल्लिका की कथा गल्प होते हुए भी ऐसे संपूर्ण व्यक्ति की कहानी है जो हाड–मांस से बना, किन्हीं बीते वक्तों में जीता हुआ, सांस लेता था। उसके होने के अल्प ही सही, ओझल ही सही, मगर प्रमाण है।''[7] क्योंकि केवल गल्प के आधार पर भारतेन्दु की स्त्री दृष्टि की समीक्षा नहीं की जा सकती। उसके लिए ठोस प्रमाण की आवश्यकता है। स्वयं लेखिका का कथ्य इसे पुष्ट करता है– 'मल्लिका आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चंद्र की वह प्रेमिका थी जिसके संबंध में इतिहास और साहित्य मौन है। भारतेन्दु के घर के पास रहने वाली बाल विधवा मल्लिका ने भारतेन्दु से हिन्दी पढ़ना–लिखना सीखकर बांग्ला के तीन उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया... लेकिन भाग्य की ऐसी विडंबना कि मल्लिका ने जो स्वयं मौलिक उपन्यास लिखा, उसका कहीं कोई जिक्र तक नहीं मिलता, जबकि उनका वह उपन्यास हिन्दी का प्रथम उपन्यास माने जाने वाले 'परीक्षा गुरू' से पहले का है।[8] स्पष्ट है पितृसत्ता ने मल्लिका की रचनात्मकता को प्रकाश में आने ही नहीं दिया। इतिहास में न जाने कितनी ही ऐसी महिला रचनाकारों की उपस्थिति दर्ज भी नहीं की गई। वे किसी न किसी महान पुरुष की छाया बन कर ही रह गईं। यद्यपि उनका रचा बहुत उदात्त साहित्य था। उनकी स्वतंत्र पहचान हिन्दी साहित्य के इतिहास से गायब है या गायब करा दी गई।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का प्रस्तुत उपन्यास भारतेन्दु के जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं से हमें अवगत कराता है साथ ही एक विरोधाभासी व्यक्तित्व के रूप में भारतेन्दु की पहचान भी कराता है इसका संकेत स्वयं बाबू हरिश्चंद्र ही करते हैं– 'तुम कहती हो ना कि मैं विरोधाभासी हूँ मेरी लेखनी कुछ लिखती है... मैं करता कुछ हूँ।'[9] उनकी स्त्री दृष्टि में यह विरोधाभास स्पष्ट रूप से उभर कर आता है। एक सामंती मनोवृत्ति जो कथनी करनी में सदैव अंतर रखती है। उसका भी संकेत यहाँ मिलता है। सम्पूर्ण उपन्यास भारतेन्दु के इस दोहरे चरित्र को रेखांकित करते हुए स्त्री के प्रति उनकी रूढ़िवादी संकीर्ण सोच को रेखांकित करता है। यह विचारणीय है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष मल्लिका सामंती परिवेश से निरंतर मुठभेड़ करती चलती है। भारतेन्दु 'बालाबोधिनी' के अंकों में जिन परंपरागत मूल्यों को स्त्रियों पर थोप रहे थे वहाँ मल्लिका अपने और समस्त स्त्री जाति के स्वतंत्र अस्तित्व का प्रश्न उठाती है। वह भारतेन्दु के बीमार रहने पर सोचती है– 'वह अपनी पूँजी से इस पत्रिका को चलाएगी, लेकिन इसकी विषय वस्तु बदल कर। जिसमें स्त्री का स्वयं का परिष्कार हो, उस पर थोप दिये गए सामाजिक मूल्यों का नहीं।'[10] पत्रिका में निकाले गए सभी अंकों में स्त्री के स्वत्व, उसके स्वतंत्र अस्तित्व की कोई चिंता भारतेन्दु को नहीं थी वरन् उनपर बलात् थोपे गए पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों को ही तरजीह दी जा रही थी। मल्लिका इसका विरोध करते हुए समाज द्वारा विस्मृत कर दी गयी आधी आबादी के केन्द्रीकरण की दिशा में सोचती है।

 ISSN 2231-0584

मल्लिका केवल भारतेन्दु की परछाई बनकर ही जीना नहीं चाहती वरन् वह स्त्री के लिए अपना अलग आकाश चुनने की आकांक्षी है 'ज्यू से मिलकर लगा कि अब मैं एक नए अस्तित्व को खोजकर अलग और स्वतंत्र जीवन चाहती हूँ। मैं किसी मृत की अस्थियों संग बह आए फूल की तरह गंगा लहरों पर यहाँ–वहाँ तिरते रहना नहीं चाहती थी।'[11]

मल्लिका के लिए स्त्री स्वाभिमान उसका अस्तित्व सर्वोपरि है जिसकी खोज में वह बनारस तक चली आई। लेखिका मल्लिका के माध्यम से भारतेन्दु के जीवन की तमाम विसंगतियों–अंतर्विरोधों को उभारने का प्रयास करती है। यह सत्य है कि पितृसत्ता की आँखों में स्वतंत्रमना स्त्री सबसे पहले चुभती है स्त्री शोषण के अनेक रंग, रूपों में कहीं उसे रक्षिता तो कहीं धन पोषिता से कुछ ऊपर का सम्मान जनक दर्जा देकर उसे धर्म–गृहीता की उपाधि दे दी गई। सामंती प्रवृत्ति के रसिक भारतेन्दु का संबंध इन सभी प्रकार की स्त्रियों से रहा है, लेकिन अपनी सुविधानुसार।

भारतेन्दु की अपव्ययी प्रवृत्ति का कुछ भार मल्लिका ने भी सहा है। मल्लिका के श्वसुर गृह से मिली पूँजी में से बहुत सी पूँजी 'हरिश्चंद्र मल्लिका एण्ड कंपनी' के प्रकाशन हेतु स्वाहा हो गई। उस पर भारतेन्दु उसे एक सेठ साहूकार की सामंती मानसिकता का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं 'तुम चिंता क्यों करती हो... तुम्हारे जीवन भर के सुख और ऐश्वर्य में कमी न आने दूँगा।'[12] ये झूठे प्रलोभन देकर मल्लिका को भ्रमाया गया। लेकिन स्वावलम्बी स्त्री जो आत्मिक प्रेम करने वाली हो वह धन–दौलत नहीं वरन् एकनिष्ठ प्रेम चाहेगी मल्लिका भी बाबू हरिश्चंद्र के एकनिष्ठ प्रेम की कामना करती थी, लेकिन क्या बाबू हरिश्चंद्र का आचरण वैसा ही था जैसा वे मल्लिका से अपेक्षा करते थे?

अनेक स्थलों पर भारतेन्दु के दोहरे चरित्र का उल्लेख उपन्यास में बार–बार हुआ है। 'ये दुरंगी बाते ठीक नहीं, पक्का तो एक ही रंग होता है। एक ही समय में दो नावों पर चढ़ने में बहुत कुछ डर रहता है– पार तो एक ही नाव कराती है।[13]

मल्लिका का निम्न वक्तव्य भारतेन्दु के दुरंगे चरित्र को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। जब ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने भारतेन्दु को कहा था– 'जब तक तुम स्त्री–पुरुष का भेद नहीं भूल जाते तुम अधूरे हो आसक्त हो। प्रवृत्तियों–रीतियों के पीछे चलोगे तो सच्चा साहित्य कैसे रचोगे।[14]

यह कौन सी प्रवृत्ति है जिस ओर विद्यासागर संकेत कर रहे थे निश्चय ही वे भारतेन्दु की सामंती मनोवृत्ति एवं लैंगिक असमानता की ओर संकेत कर रहे थे। यही सामंती प्रवृत्ति जिसके कारण अपव्यय, व्यसन, प्रदर्शन प्रियता के साथ–साथ चरित्र हीनता का अवगुण भी उनमें था, लेकिन केवल स्त्रियों को चरित्रवान, शीलवान, पतिव्रता होने का उपदेश वे निरंतर देते रहे। 'मैं प्रेम में स्त्री की एक निष्ठता को बहुत महत्त्व देता हूँ

 ISSN 2231-0584

मल्लिका। मैं बहुत अधिकार जमाने वाला पुरुष हूँ।[15] यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या यही एक निष्ठता जो स्त्री के लिए आवश्यक है वे उस स्त्री को भी एक निष्ठ प्रेम दे रहे थे? मल्लिका सोचती है 'कैसी है आपकी प्रेम पिपासा कि किसी एक से पूर्ण नहीं होती। आपको पत्नी में प्रेमिका चाहिए प्रेमिका में एकनिष्ठता।... बहुतों द्वारा चूमे गए इस प्रशस्त ललाट पर यश कब तक इठलायेगा... आपको बौद्धिकता के साथ रासरंग भाता है। भाषण में स्त्री को बेड़ियों से उबारने की बात करते हो और अपनी पत्रिकाओं में उन्हें सद् गृहस्थिन बनने, पति व्रतोपवास की सेवा का पाठ पढ़ाते हो। आपके भीतर ये कैसी सामंती प्रवृत्तियाँ हैं।[16] मल्लिका भारतेन्दु की इस सामंती प्रवृत्ति से भली भाँति परिचित हो चुकी थी। जीवन के साथ–साथ साहित्यिक सृजन के क्षेत्र में भी वे उसके साथ पक्षपात करते दिखाई देते हैं। यद्यपि वह अपने मन बहलाव के लिए अनुवाद और साहित्य रचना कर रही थी। किन्तु भारतेन्दु नहीं चाहते थे कि उसकी रचनाएँ प्रकाश में आए। लेकिन भाग्य की ऐसी विडम्बना है कि मल्लिका ने जो स्वयं मौलिक उपन्यास लिखा, उसका कहीं कोई जिक्र तक नहीं मिलता।'[17] 'कविवचन सुधा' में उनकी दूसरी प्रेमिका माधवी उर्फ अलीजान की ग़जले छपती हैं लेकिन मल्लिका के बौद्धिक एवं रचनात्मक व्यक्तित्व से भारतेन्दु भयभीत दिखते हैं। इस संदर्भ में मल्लिका का कथन उल्लेखनीय है– 'आप मुझसे तो चाहते हैं कि मैं अपनी प्रेम कविता गोष्ठी में पढ़ना तो दूर, बल्कि अपने नाम से भी न छपवाऊँ.. अजमंजस हैं मेरे जो आपको विरोधाभासों से उपजते हैं– उस पर भारतेन्दु का जवाब हैं– 'मल्लिका ये तर्क तो सही नहीं– ''चंद्रिका'' तुम हो यह कौन नहीं जानता?'

'भविष्य में कौन जानेगा?'
'हर वह व्यक्ति जो यह जानेगा मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ।[18]

तात्पर्य स्त्री पितृसत्तात्मक संरक्षण, उसकी संरक्षिता अथवा रक्षिता जिसे धर्म गृहीता भी कहा जा सकता है लेकिन (मल्लिका) स्त्री का अपना कुछ नहीं, वह रहेगी हमेशा पुरुष के (भारतेन्दु) के प्रभा मंडल में ही। उसकी अपनी कोई स्वतंत्र पहचान नहीं होनी चाहिए। पुरुष से आगे कोई स्त्री कैसे निकाल सकती है? भारतेन्दु का मल्लिका के साहित्य–सृजन को उसके नाम से नहीं वरन 'चंद्रिका' के नाम से छपवाने का आग्रह स्पष्टतः पितृसत्ता के आधिपत्य का प्रतीक है वह स्वयं कहती है कि 'आप आधिपत्य की वस्तु नहीं हो 'आपके सभी क्षण पराए हैं... और आप! चतुर सुजान हो।'[19] भारतेन्दु एक बहुत प्रतिष्ठित समाज एवं बौद्धिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं लेकिन स्त्री के संदर्भ में उनकी आधुनिक दृष्टि कहीं नजर नहीं आती वहाँ केवल पितृसत्तात्मक संकीर्ण मानसिकता ही सर्वत्र दृष्टिगत होती है। इस तथ्य को प्रतीकात्मक रूप मे मल्लिका की बहन शेफालिका भ्रमर को देखकर कहती है– 'एक छोटा सा कीट जो अपना काम निकालने के लिए इतना कुछ कर सकता है। रस पाने के लिए जो यह ऐसी चाल चल सकता है, तो अपना काम निकालने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता? तुमसे वह विवाह तो नहीं करेगा? वह बस फँसाना चाहता है, वह बहुतों से कह चुका होगा.... ।'[20]

 ISSN 2231-0584

यह शेफालिका का केवल अनुमान ही नहीं एक सीख ही नहीं वरन् सत्यानुभव था। उनके एक मित्र द्वारा 'चंद्रिका' (मल्लिका) के पदों की प्रशंसा सुनकर उन्हें भारतेन्दु साहित्य मंडल में शामिल करने के विचार को वे कितनी चतुराई से टाल जाते हैं– 'अरे नहीं! मैं केवल मन बहलाव को लिखती हूँ। मल्लिका को यह विनम्र सम्मान भला लगा। उसके हृदय में आज उठते नित बवंडरों पर मानों फुहारें पड़ी हो बाबू हरिश्चंद्र जानते थे मल्लिका को साहित्य मंडल में शामिल किया तो उसके रूप, शील और कला–पटुता की धूम मच जाएगी। वे हँसकर टाल गए।'[21] इस कथन से भारतेन्दु की स्त्री के प्रति दुरंगी सोच का उद्‌घाटन सहज ही हो जाता हे। उपन्यास में स्त्री के दोनों रूपों–पत्नी या प्रेमिका के प्रति संबंधों में सर्वत्र दोहरे मानदंड ही मिलते हैं। यहाँ यदि उनकी पत्नी मन्नो देवी की स्थिति पर विचार किया जाए तो वह गलत कैसे है? यदि किसी स्त्री का पति परस्त्रीगमन करता है, अपव्ययी है और परिवार तथा पत्नी की उपेक्षा करता है तब भी वह उसे क्षमा कर अंत तक उसकी सेवा–सुश्रुशा करती है। मन्नोदेवी की मनः स्थिति को भी यहाँ समझने की आवश्यकता है– 'गृहस्थी के हजार झंझट होते हैं बहन, उसपर पति मेरे पति जैसे हो जिन्हें प्रसन्न करने में जन्म कम पड़ता हो... बच्चों को तो देख ही नहीं पाती... ये लौटे नहीं, देर तक राह तकती हूँ... पता चलता है बाबू जी वहाँ भोजन करके आएँगे। आलीजान का नाम सुना है तुमने... पहले एक हुस्ना बाई जी थी XXX मेरा तो उपवास है ना हरतालिका तीज, पति की लम्बी आयु के लिए। सारे हवन–पाठ इसी प्रयोजन से थे।'[22] वास्तव में स्त्री के स्त्रीत्व की जो ऐतिहासिक गढन्त चली आ रही थी भारतेन्दु आधुनिक युग में भी उसी गढन्त को पुनर्व्याख्यायित करते दिखाई देते हैं। स्त्री की अस्मिता के विषय में अर्चना वर्मा का कथन यहाँ समीचीन प्रतीत होता है। 'मातृत्व कोमलता, स्नेह, समर्पण वात्सल्य शृंगार आदि वे ऐसे कोई स्वाभाविक प्राकृतिक गुण नहीं है जो स्त्री की देह के साथ जन्मजात हों। वे वस्तुतः स्त्री को लालसा की सामग्री बनाने वाले पुरुषप्रिय लक्षण हैं। स्त्री के ठोस–हाड–मांस के अस्तित्व का ये पुरुषकृत भावात्मक अमूर्तन है।'[23] स्त्री और उसके स्त्रीत्व का प्रत्येक युग में पितृसत्ता ने अपनी सुविधानुसार गढा है। स्त्री की यह 'कन्डीशनिंग' आज भी बदस्तूर जारी है। भारतेन्दु भी इसके अपवाद नहीं थे। पत्नी–पतिव्रता कुलीन, सुशील बच्चों का पालन पोषण करने वाली एकनिष्ठ पति सेवा में लीन होनी चाहिए। लेकिन उपन्यास की मन्नोदेवी तो इन समस्त गुणों पर खरी उतरती है फिर क्या पत्नी के रूप में उन्हें पति प्रेम मिला? और क्या नई प्रेमिका मल्लिका से भी अपने अनुसार आचरण नहीं कराते हैं? क्या 'स्त्रीत्व का दूसरा मतलब रिश्तों के ठोस ताने–बाने में दूसरे शब्दों में सामाजिक संरचनाओं की प्रतीक व्यवस्था में परिभाषित होने वाला वह अस्तित्व है जो एक तरफ उसके लिए भूमिकाएँ निर्धारित करता है तो दूसरी ओर उसके आचरण के लिए कसौटी भी बन जाता है। व्यक्ति के रूप में स्त्री के ये गुण और व्यवस्था के स्तर पर पारिवारिक सीमाओं के द्वारा निर्धारित ये भूमिकाएँ स्त्री नाम की उसी ऐतिहासिक गढन्त के व्यावहारिक आयाम है जिन्हें वह अपने खिलाफ पितृसत्ता के षडयंत्र की तरह पाती है और अपने भावात्मक और दैहिक शोषण के कारण की तरह देखती है।'[24] निश्चित रूप से मल्लिका और मन्नो देवी दोनों की भूमिकाओं को पितृसत्तात्मक सामंती ढाँचे में

 ISSN 2231-0584

अपनी (पुरुष हरिशचंद्र) की सुविधानुसार गढ़ा गया है। जिसे भारतेन्दु पोषित करते दिखाई देते हैं। एक ओर वे स्त्रीयोचित गुणों का गुणगान अपने भाषणों–लेखन में करते हैं तो फिर व्यावहारिक स्तर पर निजी जीवन में इतना अंतर्विरोध क्यों? मल्लिका विस्मित हो उठती है कि इस हरिश्चन्द्र ज्यू में कई अलग–अलग व्यक्ति रहते हैं क्या? मल्लिका विचार करती है कि 'उनका प्रेम एकनिष्ठ नहीं। प्रेम में एक निष्ठता की बातें बहुत करते हैं और वह एक निष्ठ प्रेम को प्रेम का उदात्त स्वरूप मानते हैं मगर एकनिष्ठता केवल स्त्री की पुरुष के प्रति हो पुरुष की एकनिष्ठता का क्या?' वे कहते हैं केवल मैंने उन्हें संपूर्ण और एकनिष्ठ प्रेम दिया है इसलिए भी मुझसे अगाध प्रेम करते हैं लेकिन क्या एक संपूर्ण और एकनिष्ठ प्रेम की आवश्यकता मुझे नहीं? एकनिष्ठता पारस्परिक होती है... किन्तु फिर भी अनजाने साधुता के साए में कितनी बार मैंने छिपी संकीर्णता देख ली जो महानता के प्रकाश पुंज में संसार देख न सका।[25] दरअसल भारतेन्दु की महानता के प्रकाश पुंज में उनकी स्त्री दृष्टि कुछ धुंधली हो गयी है। लेकिन उनके साहित्य–भाषणों और विशेषतः 'मल्लिका' उपन्यास के माध्यम से इसे न्यायसंगत नहीं माना जा सकता। भले ही एक गल्प है लेकिन पूरा गल्प भी नहीं, अल्प ही सही मगर इस इतिहास और साहित्य विस्तृत और उपेक्षित नायिका के कुछ ओझल प्रमाण भी हैं। भारतेन्दु जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति यदि चाहते तो मल्लिका को समाज के समक्ष सम्मान दे सकते थे। क्यों नहीं संसार के सामने उसे अपनाने के लिए वे राजपथ से उसके पास आए? लेकिन वे सामान्य व्यक्तियों की तरह गलियों में लुकते–छिपते मल्लिका से प्रेम संबंध स्थापित करते हैं। यह भारतेन्दु जैसे सुधारवादी एवं आधुनिक व्यक्तित्व के लिए क्या उचित था? इतना ही नहीं अनेक स्थलों पर उसे अपनी दूसरी प्रेमिका तवायफ माधवी के समक्ष खड़ा करके भी मल्लिका की जगह कहाँ निर्धारित करते हैं? 'मल्लिका का चेहरा पीला पड़ गया मैं अपने पथ से विचलित होकर कुलीनता से कहाँ जा गिरी हूँ? एक ठाकुर साहब की रक्षिता! श्यामा!।

आप कितना सहज ही वारवनिताओं के समकक्ष मुझे खड़ा कर लेते हैं न। पहले माधवी और अब... आप भी मुझे रक्षिता समझते हैं?[26] यह कैसी विडम्बना है कि भारतेन्दु मल्लिका को वह सम्मान नहीं दे सके जिसकी वह अधिकारी थी उसे तो ज्यू की मृत्यु पर रोने तक का अधिकार भी नहीं मिला 'कुंजडिनों–कहारिनों, नौकरों सब को गला फाड़कर रोने का अधिकार था किन्तु मल्लिका को नहीं'[27] निश्चित रूप से भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत थे। आधुनिक साहित्य के इतिहास में उनका स्थान पितामह का रहेगा। उन्होंने तत्कालीन समाज सुधार एवं हिन्दी भाषा हेतु जो योगदान दिया है वह अभूतपूर्व है लेकिन समाज की आधी आबादी अर्थात् स्त्री के विषय में उनके विचारों में अंतर्विरोध हैं और परंपरागत से रूढ़िवादिता सर्वत्र मिलती है।

यद्यपि तत्कालीन औपनिवेशिक राजनैतिक सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। पर प्रश्न यहाँ भारतेंदु और मल्लिका के बहाने उनकी स्त्री दृष्टि का है जिसे उनकी पत्रकारिता विशेषतः 'बालाबोधिनी' उनके भाषणों, नाटकों सभी के माध्यम से सहज ही समझा जा सकता है।

 ISSN 2231-0584

भारतेन्दु स्त्रियों के लिए केवल नैतिक चरित्र, घरेलू प्रबंध और धर्म संबंधी शिक्षा देने के ही पक्षधर थे क्योंकि मूलतः वे एक सामंती समाज के पितृसत्तात्मक परिवार के मुखिया ही थे। जिनके जीवन के अंतर्विरोधों और स्त्री विषयक संकीर्णताओं को 'मल्लिका' उपन्यास में लेखिका ने बखूबी उभारा है।

संदर्भ–सूची

1 रस्साकशी–वीर भारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2012, पृष्ठ 38
2 वही,पृष्ठ 39
3 https://www.hindisanay.com भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
4 https://hindisamay.com
5 बालाबोधिनी, 1/6, जनू 1874
6 रस्साकशी– वीर भारत तलवार, संस्करण–2012, पृष्ठ 38
7 प्राक्कथन– 'मल्लिका–मनीषा कुलश्रेष्ठ, राजपाल एण्ड, दिल्ली, संस्करण–2019, पृष्ठ 5
8 फ्लैप– 'मल्लिका उपन्यास मनीषा कुलश्रेष्ठ
9 'मल्लिका' मनीषा कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ 10
10 वही, पृष्ठ 11
11 वही, पृष्ठ 12
12 वही, पृष्ठ 22
13 वही, पृष्ठ 23
14 वही, पृष्ठ 97
15 वही,पृष्ठ 99
16 वही,पृष्ठ 25
17 वही, फ्लैप, (अंत में)
18 वही, पृष्ठ 123
19 वही, पृष्ठ 102
20 वही, पृष्ठ 109
21 वही, पृष्ठ 124
22 वही, पृष्ठ 137–38
23 अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर– अर्चना वर्मा, मेघा बुक्स, दिल्ली, संस्करण–2008, पृष्ठ 55
24 वही,पृष्ठ 55
25 मल्लिका–मनीषा कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ 142
26 वही,पृष्ठ 150
27 वही,पृष्ठ 157

समकालीन स्त्री लेखन में निरूपित पुरुष छवि

रजनी गुप्त
5/259 विपुल खंड गोमतीनगर लखनऊ 226010
मोबाइल : 09452295943/
फोन : 8318573266
ईमेल : gupt.rajni@gmail.com

पिछले कुछ दशकों से हिंदी कथा साहित्य का परिदृश्य बहुत तेजी से बदला है , खास तौर पर समकालीन स्त्री लेखन में उभरते नए नए प्रसंगों व मुहावरों को नए नए अर्थ मिलने लगे हैं , साथ ही व्यापकता के साथ गहरे संदर्भो को अनुस्यूत कर स्त्री समाज की सालों से दबी घुटी आवाजें , उनके जीवन की सच्चाइयां और संघर्ष अब खुलकर अभिव्यक्त होने लगे हैं जो पहले पितृसत्ता के दृश्य अदृश्य डरों , संकोच व आर्थिक पराधीनता से उपजती असुरक्षा के चलते उनके दमन के किस्से अक्सर दबे घुटे रह जाते थे। सालों से चले आ रहे पितृसत्ता को विरासत में मिले वर्चस्व या पुरुष सत्ता की अहंमन्यता व शक्ति – सत्ता के सम्मिश्रण के चलते स्त्रियां सालों से घुटन , परंपराओं या मूल्यों के नाम पर लादी गयी बंदिशों एवं पुरूष अधीनता तले बना दी गयी रूढियों के नाम पर होते शोषण के जर्जर चौखटों तले अप्रत्याशित भूकंपनुमा अनगिनत झटके बर्दाश्त करती रहीं। इस संदर्भ में साहित्यकार **महादेवी वर्मा ने श्रृंखला की कड़ियां** में लिखा है –' पिता, पति, पुत्र तथा अन्य संबंधियों के रूप में पुरुष स्त्री का सदा ही भरण पोषण कर सकता था, इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति पर विचार करने की किसी ने आवश्यकता ही नही समझी। दीर्घकाल का दासत्व , जैसे जीवन की स्फूर्तिमयी स्वच्छंदता नष्ट करके उसे बोझिल बना देता है, निरंतर आर्थिक परवशता भी जीवन में उसी प्रकार प्रेरणाशून्यता उत्पन्न कर देती है।'

इसी के परिणामस्वरूप प्रखर मेधा व दृष्टिसम्पन्न सक्रिय स्त्री के स्वप्न , संघर्ष , मुक्ति और स्वाधीनता की चाहत के साथ स्त्री अस्मिता के सवाल उसके अस्तित्व से अपरिहार्य रूप से जुड़ते गए। क्रमशः जड़ व जर्जर परंपराओं से स्त्री मुक्ति के साथ सचेतन स्त्री की हिस्सेदारी ने नए सिरे से पंख पसारने शुरू कर दिए। अपनी मार्मिक संवेदना, समझ व अनुभव के गहरे रंगों से भरे स्त्री लेखन में पितृसत्तात्मक समाज से निर्मित सामाजिक पारिवारिक व्यवस्था के खिलाफ पुरजोर आवाज उठायी गयी है। पितृसत्ता से मिले वर्चस्व को चुनौती देता स्त्री लेखन व्यवस्था से उपजते दमन और शोषण को अभिव्यक्ति देने के लिए अकुला उठा। 1930 से लेकर 1945 तक स्त्री लेखन को रेखांकित करने का काम हिंदी साहित्य में छुटपुट रूप भले ही शुरू हो गया हो मगर आगे चलकर इसका सही मायने में प्रस्फुटन हुआ मध्यकाल की कवयित्री मीराबाई व आधुनिक काल में महादेवी व सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा निरूपित विशद लेखन में। पहले वे गुमनाम पर्दे के भीतर से मद्धिम आवाज में अपनी आकांक्षाओं, सपनों व संघर्षो को शब्द देती थी फिर धीरे

 ISSN 2231-0584

धीरे उनक बेचौनी को नए किस्म के टूल्स विकसित होते गए। सुधी समीक्षक रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में कहें तो – ' काव्यरचना मीरा के लिए न पांडित्य प्रदर्शन का माध्यम रहीं , न भक्ति की दार्शनिक मीमांसा या परलोक प्राप्ति का सुलभ जरिया । वह तो उनके भीतर बहती भावनाओं का विस्फोट है , आत्मालाप आत्माभिव्यक्ति और आत्मप्रसार का जरिया जिसमें उसकी दमित वासनाएं और अमूर्त सपने दोनों अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ विद्यमान है – अपने मनोजगत का प्रत्यक्षीकरण । पारदर्शी मीरा की दमघोंटू चुप्पी चरित्रहनन के मर्मांतक घाव की टीस को अंत तक सहन न कर पाने की वेदना से जन्मी है। ' (स्त्री लेखन – स्वरूप व संकल्पना , रोहिणी अग्रवाल पृ. 29)

स्त्री लेखन में निरूपित पुरुष छवि पर विचार करते समय कुछ बुनियादी सवाल कौंधते हैं। स्त्री लेखन में व्यक्त पुरुष पिता , पति , प्रेमी या पुत्र का रेखांकन नायक वनाम खलनायक किस रूप में दर्ज हुआ है या कि स्त्री का कोई स्वतंत्र वजूद भी उभरकर सामने आ पाया है जहां वह इस विवाह संस्था से परे अपने तईं लिए गए निर्णय की रोशनी में अपना निजी व्यक्तित्व या पहचान बना पायी है ? नई सदी में सामाजिक सांस्कृतिक तब्दीलियों के मदेनजर नई किस्म की आधुनिकता से सृजित नई मानसिकता से उत्प्रेरित हमारे इस समाज में प्रजातांत्रिक मूल्यों की बढ़ती जनचेतना , तेजी से फैलते सूचना तकनीक के दौर में नए आचार विचार , व्यवहार को जीती स्त्रियां क्या मौजूदा परिवार व्यवस्था की पुरानी निरंकुश पितृसत्ता द्वारा कसी बेड़ियां तोड़कर अपने निजी विवेक से स्वतंत्र फैसला लेकर समानाधिकार , आत्म सम्मान व निजी स्पेस पाने जैसे बुनियादी हक लेने की सामर्थ्य या आत्मविश्वास बटोर पायी है या वे अभी भी बेचेहरा बनकर एकाधिकार वाली पितृसत्ता द्वारा उन पर जबरन लाद दिए संबंधों को ढोती हुई (प्रेमिका , पत्नी , पुत्री या मां बनकर) पति की निजी सम्पत्ति समझी जाती रहेंगी, इस सवाल पर स्त्रीवादी लेखिका **अनामिका** लिखती हैं– ' दोषी पुरुष नही , वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियां उनसे हीनतर है , उनके भोग का साधन मात्र। ' (अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य , पृष्ठ 162)

हम इस युगसत्य को कतई झुठला नही सकते कि विवाह संस्था में सदियों से पुरुष सत्ता विमर्श के रणक्षेत्र में चौतरफा बिछाई गई सुरंगों से बचकर स्त्री को अपने जीने की जद्दोजहद करनी पड़ती। वे आज भी इस एकाधिकारवादी सामंती पारिवारिक व्यवस्था तले आतंकित , अपमानित, असुरक्षित और बेचैन कर देने वाले अंधेरे अलक्षित तलघरों में जीते रहने की विडंबनाओं को ढोने के लिए अभिशप्त हैं , अभिव्यक्ति की आकुलता यहीं से उपजती हैं जहां पूरी साहसिकता से अनुभूति व संवेदना में कलम डुबोकर पूरे दम खम से लिखी गई छटपटाती स्त्री लेखन की बेखौफ आवाजें हमें सुनाई पड़ने लगी हैं। आज का स्त्री लेखन महज नारी मुक्ति की सीमाओं में बंधा नही रह गया है बल्कि स्त्री के विशद रचना संसार में निरूपित पुरुष छवि बेहद विश्वसनीय पुख्ता जमीन पर चलकर हमारे सामने उपस्थित है जिसे हम अलग अलग विधाओं द्वारा निरूपित करेंगे। समकालीन स्त्री लेखन में शोषित व शोषक दोनो तरह के पुरुष दृष्टि पूरी प्रामाणिकता से दर्ज हैं। इस क्रम

 ISSN 2231-0584

में आइए, सबसे पहले समकालीन कथा साहित्य में निरूपित पुरुष दृष्टि पर विचार करें– समकालीन स्त्री लेखन में स्त्री अधीनता के असंख्य ब्यौरे हैं जहां अपनी स्वतंत्रता की धुन में आत्मनिर्भर स्त्री पुरुष वर्चस्व को चुनौती देती तनकर खड़ी हो जाती हैं। पितृसत्ता किस कदर कितने स्तरों पर स्त्री सत्ता का बारीकी से शोषण व मानसिक दलन करती है , **कथाकार ममता कालिया के उपन्यास 'एक पत्नी के नोट्स'** में प्रशासनिक अधिकारी पति संदीप का चरित्रांकन आधुनिक जीवन शैली में कामकाजी स्त्री पुरुषों का बेहद सटीक व प्रामाणिक विवरण बनकर सामने आता है। ऐसे आधुनिक जीवन जीते पति केा पत्नी का स्वतंत्र रवैया कतई सहन नही। रूढ़िवादी पितृसत्ता की व्यवस्था के सांचे में ढला पुरुष पत्नी के हरतालिका के व्रत न रखने पर ताना मारता है, शक करते हुए उसे परेशान करता रहता है मगर रात में अपच होने के कारण पेट दर्द होने पर पत्नी को जगाकर अपना कलेजा पकड़कर कहने लगता–कविता, मैं तो चला। स्त्री पुरुष संबंधों की बारीक परतों को बेरहमी से उधेड़ा गया है । ऐसे मनोरोगी पतियों से हिंदी कथा साहित्य भरा पड़ा है जो अपने ढंग से एक तरफ तो अपनी पत्नी पर अधिकार व सत्ता का रोब दर्शाते हुए गर्व जताएंगे लेकिन कोई और पत्नी की तारीफ करे तो वे सह नही पाते। पत्नी की सोच में आजादी जिन्हें कतई बर्दाश्त नही। आधुनिकता का ताना बाना पहने ऐसे पुरुष भीतर से उतने ही एकाधिकार वादी एवं अहंमन्य है जिन्हें स्वतंत्र , स्वायत्त , आत्मनिर्भर , निर्णय क्षम, चेतनासम्पन्न पत्नी सहन नही। ममता कालिया के पहले उपन्यास ' बेघर ' में भी ऐसे नैतिक शुचितावादी पुरुष मन की थाह ली गयी है जहां स्त्री यौनिकता के मनोविज्ञान की गहरी जड़ों की शिनाख्त की गई हैं। प्रेम जैसे संवेदनशील पहलू को किस कदर महज प्रयोज्य वस्तु समझते हुए उसे केवल दैहिकता से जोड़े जाने के अनवरत सिलसिले आज भी थमते नजर नही आ रहे। ममता कालिया के **दुक्खम सुक्खम** उपन्यास में भी तीन पीढियों के बीच बिखरे समय को पूरी प्रामाणिकता के साथ एकसूत्र में बांधकर स्त्री मन को पढते हुए मानवीय गरिमा के भाव को पुष्ट किया गया हैं।

वरिष्ठ कथाकार मृदुला गर्ग के उपन्यास ' कठगलुाब ' की स्मिता को उसका डॉक्टर पति (मनोचिकित्सक) प्यार के नाम पर उसे मनोविश्लेषण का माध्यम बनाता है , स्मिता उसकी बातों का समर्थन न करने के बावजूद उससे सहमति का ढोंग करती रहीं। यह पोल खुल जाने पर उग्र पति न केवल उसे पीटता है बल्कि घायल अवस्था में भी स्मिता के साथ जबरन . . . , दूसरी ओर मारियान का पति इरविन है जो अपनी पत्नी की ही प्रतिभा को सोखकर लेखक बना है । वह पत्नी का इस्तेमाल करके उसे अपने जीवन से अपमानित करके निकाल देता है । नर्मदा से ब्याह करने की खातिर उसका जीजा अपनी पत्नी से बर्बरता पूर्वक पीटता है । वह नर्मदा को अपनी पीठ दिखाते हुए कहती हैं–तू नही मानेगी तो वह मुझे मार डालेगा । '

स्त्री शोषण की कई परतें कथाकार **मैत्रैयी पुष्पा के 'इदन्नमम'** में कुसुमा पात्र के जरिए खोली गई है। कुसुमा का पति रीतियों से निभाकर पति नही बन पाया सो दूसरी शादी की लेकिन कुसुमा का संबंध उसके भाई से है , ये जानने के बाद उसकी जान लेने पर

 ISSN 2231-0584

उतारू हो जाता है । इसी तरह चाक उपन्यास में पति रंजीत पत्नी को महज देह न समझकर भी वह अंदरूनी रूढियों से लड़ते लड़ते पस्त पड़ जाता है और स्वामित्व के गहराते बोध की प्रतिक्रिया स्वरूप शुरू हो जाता है पत्नी पर लांछन और प्रताड़ना का लंबा सिलसिला। प्रभा खेतान के उपन्यास ' छिन्नमस्ता ' में पत्नी की व्यावसायिक सफलता से आहत पति को परपीड़न में आनंद आता है। पत्नियों की व्यावसायिक कामयाबी पतियें के लिए न जाने कौन से आतंक का दरवाजा खोल देती है जिससे उबरने के लिए वे कठोर व क्रूर हो उठते हैं। पत्नी पर संदेह करना, उसे निर्ममता से पीट कर अपने अहं की तुष्टि करते क्रूर पुरुषों की व्यथा कथाओं से भरे पड़े हैं आत्मकथात्मक उपन्यास , जिसकी चर्चा बाद में पहले तो ये देखना होगा कि क्या स्त्री लेखन में पुरुष पात्र ऐसे भी उभारे गए है जो नेक हैं, उदार हैं, मनुष्य हैं और अपनी उदारता बरतते हुए स्त्री के सहयात्री बनकर साथ साथ चले सके हैं। नासिरा शर्मा की कहानियों के किरदार दो भिन्न परिवेश व अलग अलग संस्कृति के सरोकारों व सीमाओं को सहज ढंग से बुनते हुए मनुष्य होने की कहानी रचती जाती है।

'तत्सम' में राजी सेठ लिखती हैं – ' पुरुष पर स्त्री का अत्याचार भी क्या कम क्रूर होता है '। तत्सम के डॉ. ललित शांत, सीधे, अध्ययनशील प्राध्यापक है। लेखिका निरूपमा सेवती के उपन्यास 'बंटता हुआ आदमी' का पति चाहता है कि पत्नी को सारी सुविधाएं मिलें लेकिन भौतिक सुख सुविधाओं में लिप्त पत्नी पति के मन के ताप से बेखबर बनी रहती ।

कृष्णा सोबती जी के चर्चित उपन्यास ' जिंदगीनामा ' के शाहजी राबयां पर फिदा है उनके प्रेम में त्याग है, और समर्पण की खुशबू आती है – क्यों री धिया मटक्कनी , अब तो राजी हो न, जिस पर मन था, अपना हो गया। कैसा है रे जवांई हमारा? मित्रो मरजानी उपन्यास में कथाकार पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की स्वच्छंदता व आत्मसम्मान के साथ जीने का खुलापन एक नए अंदाज में उभारती है। कथाकार उषा प्रियवंदा ने रिश्तों के विघटन के साथ व्यक्ति के रूप में आधुनिक स्त्री की वैयक्तिक स्वातंत्र्य की नवीन संकल्पना के साथ हिंदी कथा जगत में **'शेष यात्रा'** एवं' भया कबीर उदास' में पुरुष के बारे में लिखा है –' पति, पुरुष जाति ही स्वार्थी होती है, अपना बीज अधिक से अधिक बिखेरना उनकी बॉयलोजीकल जरूरत है'।

इसी तरह मैत्रेयी पुष्पा कृत **इदन्नमम** उपन्यास के दाऊ जी ने अपने छोटे भाई की पत्नी से प्रेम किया और कुसुमा के जीवन के मरुस्थल को अपने अंतर्मन के नेह से सींचने में पीछे नही रहते, वे मृत्यु के समय अपने हिस्से की जमीन कुसुमा के नाम कर जाना चाहते हैं और दे जाते हैं उसकी गोद में बच्चा। ऐसा निश्छल अनुराग समाज की जड़ परंपराओं को धता बताते एक बड़ी व गहरी लकीर खींचकर पुरुष के नेक चेहरे को सामने लाता है। इसी उपन्यास का भृगुदेव स्वाभिमानी दलित युवा का प्रतिनिधि बनकर आरक्षण प्रणाली पर चोट करता है तो इसी तरह चाक उपन्यास में सारंग नैनी के जीवन में हवा के ताजे झोंके की तरह घुटन से राहत देता है श्रीधर। लेखिका कमलकुमार के उपन्यास **हेमबर्गर** का बालक बलात्कार की परिणति है, इस नाते मां की उपेक्षा पाता है मगर वह बालक निरूशब्द अपनी

 ISSN 2231-0584

अवहेलना को सहता जाता है। रोती हुई मां की पीड़ा न जानते हुए भी बांट लेना चाहता है उसका दुख ।

समकालीन स्त्री लेखन में बलात्कार जैसी दारूण त्रासदी को पूरी संवेदनशीलता, मार्मिकता व गंभीरता से **'छिन्नमस्ता'** उपन्यास में प्रभा खेतान ने उभारा है। कितनी भयावह स्थिति से गुजरना पड़ता था महज साढ़े नौ साल की बच्ची को जिसे उसका भाई ही अपनी हवस का शिकार बना डालता है। इतनी छोटी डरी, सहमी बच्ची की प्रिया की मासूमियत, मनोव्यथा, अत्याचार, मानसिक व दैहिक शोषण के दिल दहलाने वाले ब्यौरे उपन्यास में पढ़कर पाठक विचलित हो उठते हैं। हमारे देश में आए दिन न जाने कितने नजदीकी रिश्तेदार मासूम बच्चियेां के बचपन को रोंदकर जघन्यतम अपराध कर डालते हैं, बेचैन कर देने वाली ऐसी घटनाएं आए दिन अखबारों, टीवी की खबरें बनती हैं। चित्रा मुदगल का आवां उपन्यास में सौतेला भाई अपनी बहन से प्रेम निवेदन का दुस्साहस कर बैठता है तो इदन्नमम उपन्यास में बुखार ग्रस्त मंदा का बलात्कार उसका अध्यापक मामा ही कर डालता है जिसके घिनौने आचरण से क्षुब्ध होकर कुसुमा भाभी अपनी नफरत जतातीं हैं– मास्टर ऐसा कुपढ़ अज्ञानी है, थू है ।'

आवां में अन्ना साहब क्या शालीन बलात्कारी है, उनके भावोच्छवास पशुवत पुरुष बने पात्र के हैं –' हाथ मत छुड़ाओ, जैसा कहता हूं, करती चलो, नमिता, और तेज, और तेज . . उस ओछी हरकत पर मां उसे छुपाने की सीख देती हैं. इसी उपन्यास में आवां का पवार जाति का डोम है लेकिन सामाजिक सम्मान की खातिर अपने को पवार बताकर नेतागिरी भी करता है, वह नमिता से शादी करके राजनीति में फलदायी समीकरण बिठाने की जुगत करता है जिससे अवर्ण व सवर्ण सबके वोट उसे मिल सकें। तो मृदुला गर्ग के कठगुलाब में स्मिता के लिए यह यकीन करना मुश्किल था कि उसका जीजा इतना विकृत कैसे हो सकता है, बलात्कृत पात्र अपनी ही देह से घृणा से उबकाई से पस्त पड़ जाती हैं। नर्मदा के साथ बलात्कार करने से पहले वह उससे शादी करता है ।

'लगता नही है दिल मेरा' में कृष्णा अग्निहोत्री लिखती है' विश्वस्त नौकर ही छह सात साल की बच्ची का नंगी करके अपने उपर सुला लेता है, ऐसा नौकर छिन्नमस्ता में भी है। कठगुलाब हो या आवां, बलात्कार छिपाने के जतन दोनों में किए जाते हैं। कथाकार मन्नू भंडारी के महाभोज के दा साहब छद्म्पूर्ण भ्रष्ट राजनैतिक व्यवस्था के सच्चे प्रतिनिधि बनकर सामने आते हैं । चाक में प्रधान, फत्ते सिंह, कुंवर पाल थाना सिंह जैसे पुरुष पात्र कई स्तरों पर एक साथ स्वार्थ प्रेरित राजनैतिक षड्यंत्रों में लिप्त रहकर पुरुष के नकारात्मक चेहरों पर चढ़ी कालिख को उजागर कर देते हैं।

बेशक मन्नू भंडारी के **'महाभोज'** में त्रिलोचन जैसे पात्रों को राजनीति की स्वस्थ परंपरा के वाहक बनने के नाते असफल होना पड़ता है। महाभोज का समूचा विन्यास राजनीति में आए पुरुषों के प्रति स्त्री लेखन का विशिष्ट नजरिया दर्शाता है कि स्त्री होने के

 ISSN 2231-0584

अलावा वह बिना स्त्रीवादी मुखौटे के भी पुरुष के असल चेहरे को कितनी बारीकी और होश्यिारी से पकड़ने में सक्षम है। हकीकत यही है कि दा साहब , अन्ना साहब , सुकुल बाबू जैसे नेता मूल्य निष्ठ व्यक्तियों को गड़पकर बड़े आन बान शान और ठीठ बेहयाई से जीते हैं। इसी तरह के पात्र हैं सूर्यबाला के दीक्षांत उपन्यास के कर्मनिष्ठ, संवेदनशील, समझदार अध्यापक शर्माजी किन्तु उन्हें भी एक काइयां, कुंठित, अयोग्य और अपरिपक्व विभागाध्यक्ष की कुटिलताएं घेर लेतीं हैं और वे आत्महत्या के लिए विवश हो जाते हैं। सूर्यबाला के उपन्यास **'अग्निपंखी'** में बेरोजगार जयशंकर के जरिए युवा पीढ़ी की निराशा व आक्रोश को व्यक्त किया गया है। चंद्रकांता के उपन्यास **'अपने अपने कोणार्क'** की नायिका घर का पूरा भार अपने उपर ओढ़ लेती है तो कथा सतीसर में उन्होंने अभिशप्त कश्मीरी जनता की पीड़ा को स्वर दिया है । मैत्रेयी पुष्पा के **झूलानट** उपन्यास की दमदार नायिका स्त्री शक्ति का पर्याय बनकर अपने हक की लड़ाई खुद लड़ने का ठान लेती है तो इदन्नमम के पंचमसिंह गांव के मुखिया दादा और मुस्लिम पात्र चीफ काका का मानववादी रवैया एवं चाक में रंजीत के पिता सारंग के ससुर बाबा का पुलिस में कार्यरत अपने बेटे की काली करतूतों को जानकर बेटे को धिक्ककारते हुए पंचायत चुनाव में बेटे के खिलाफ बहू का साथ देते है ।

समकालीन स्त्री लेखन में वृद्धों को विषयवस्तु बनाकर लिखे उपन्यासों में **समय सरगम (कृष्णा सोबती) गिलिगडु (चित्रा मुदगल)** में पुरुष पात्रों की जिंदादिली, उम्मीद और प्रेम स्नेह से झरती आवाज को प्रभावी ढंग से उकरा गया है। ऐसे दीन हीन चरित्रों को पूरी संवेदन शीलता से उकेरा गया है जैसे महाभोज के शोषित पात्र बिसु के जरिए जिसकी संघर्ष की आग बिंदा में जलती है जिसे पुलिस अपने हथकंडों के बल पर बुझाने की कोशिश करती है मगर उसकी चीखों में शुमार हो जाती हैं दुनिया भर के शोषितों, दमितों, दलितों और संघर्षरत व्यक्तियेां की चीखें , शोषण , अत्याचार व अनाचार की आवाजें। संवेदना और संघर्ष की जमीन पर समानधर्मा पात्र पूरी आत्मीयता से मध्यवर्ग के पुरूषों का चित्रण करती है। 'यारों के यार' में कार्यालय की यांत्रिकता से गुजरते भवानी बाबू की जिंदगी एक मेज से इस कदर सिमट गयी है कि वे व्यक्ति न बनकर एक यंत्र बनकर रह जाते हैं, बेटे की मौत भी उन्हें इससे उबार नही पातीं। ऐसी पुरुष छवि की संरचना करती है कृष्णा सोबती के उपन्यास ' सूरजमुखी अंधेरे के ' जहां स्त्री के जीवन में आने वाला हर पुरुष के साथ रत्ती ने अनुभव को , उसकी प्रतिक्रिया को पूरी विश्वसनीयता के साथ उपन्यास में अलगाया गया है (– निर्मला जैन, पृ. 122)

उषा प्रियंवदा की चर्चित कहानी 'वापसी' के पुरुष पात्र गजाधर बाबू, मन्नू भंडारी की कहानी' नायक, खलनायक और विदूषक पर निर्मला जैन ने कितना सटीक लिखा है – 'पारिवारिक सामाजिक स्थितियेां, चरित्रों और समस्याओं पर लिखी तमाम कहानियां न तो महज शिकयती कहानियां हैं, न इनमें अतिरिक्त विद्रोह या साहसिकता की मुद्रा है, और न ही इनकी रचना पुरुष को खलनायक की स्थायी भूमिका में खड़ाकर लक्ष्यबेधन तेवर से की

 ISSN 2231-0584

गयी है । '(– निर्मला जैन , पृ. 36, कथासमय में तीन हमसफर)

'बंटता हुआ आदमी में' निरूपमा सेवती फिल्मी चकाचौंध तले शोषित पात्र की संत्रास, घुटन व अभाव की यातना को शब्द देती है। फिल्म एडीटर का सहायक पात्र पैसों के लिए बड़े लोगेां के सामने पैसेां के लिए जुबान नही खोल पाता, खंड खंड में बंटते पुरुष की बेबसी व अवसाद पूरी तल्लीनता से उभारती है लेखिका। स्त्री पुरुष संबंधों के खोखलेपन और स्वार्थ परता के आज के माहौल में मन्नू भंडारी का **आपका बंटी,** मृदुला गर्ग का **'उसके हिस्से की धूप'** , राजी सेठ का **' निष्कवच** , कमलकुमार का **यह खबर नही** , जैसी कृतियेां में संवेदन शून्य पढ़ी लिखी स्त्रियों की व्यथा कथाएं हैं जिसके पुरुष अपने साथी के प्रति किस कदर असंपृक्त , असम्बद्ध और स्वकेंद्रित हो उठे हैं , ऐसे प्रसंग आजकल खूब देखे जाते हैं। भूमंडलीकरण , बाजारवाद व उपभोक्तावाद के दौर में दरकते पारिवारिक संबंधों में शुमार यांत्रिकता की सच्ची तस्वीर उकेरी है ममता कालिया के उपन्यास ' दौड़ ' में जिसमें करियर की दौड़ में महत्वाकांक्षी बच्चे मां बाप के प्रति अपनी जिम्मेदारी भूलकर कितने आत्मकेंद्रित , अकेले , संवेदनशून्य व मतलबपरस्त हो चुके हैं।

नए समय में ' कलिकथा वाया वाईपास ' में अलका सरावगी ने कल्पना , स्मृति और अनुभव के बीच अंर्तयात्रा करते पात्र की अंतश्चेतना के दरवाजे शिल्प के अनूठेपन के साथ खोले हैं , तदुपरांत वे राष्ट्र , समाज , परिवार के भूत, भविष्य व वर्तमान के बारे में सोचते , मथते , आहत होते रहते। अपने से लगातार जूझते किशोर बाबू ने अपने मन में अमोलक की आत्मा को उतार लिया है जिनसे लगातार बतियाते रहते जिसके चलते उनका सामान्य व्यवहार परिवारीजनों को असामान्य लगने लगता। इसी क्रम में गीतांजलिश्री के उपन्यास ' हमारा शहर उस बरस' व तिरोहित उपन्यास में नए ढंग से पुरुष के चेहरे को पढ़ने की चेष्टा की गयी है मगर लवलीन की नायिका' स्वप्न ही रास्ता है' मुक्त तटस्थ भाव से स्त्री के स्वप्न व संघर्ष के साथ उसकी जेद्दोजेहद को उभारती है तो जया जादवानी के उपन्यास ' कुछ न कुछ छूट जाता है' की स्त्री की बेचैनी, तडप, संबंधों को नए तरीके से आधुनिक भाव बोध के साथ अंतर्जगत का आत्मसंघर्ष देखने लायक होता है जहां शिष्ट किस्म का संयम, अनुशासन की महीन रेखा और विद्रोह के तेवर का नयापन पुरुष में साथी की परिकल्पना को नया मोड़ दे जाता है , कुछ कुछ चीन्हा तो कुछ कुछ अचीन्हा सा ।

स्त्री लेखन में बहुतेरी आत्मकथाएं आयी हैं जिनमें पुरुषों के चरित्र स्खलन के बेशुमार किस्से दर्ज हैं। चंद्रकिरण सोनरिक्सा ने **पिंजड़े की मैना'** में स्त्री जीवन में फैले बहुस्तरीय यथार्थ और बहुकालिक हकीकतों को खोलकर रखा है । प्रभा खेतान की **अन्या से अनन्या** में स्त्री मुक्ति व स्त्री सशक्तीकरण के बीच की दीवारों पर उभरती दुविधा व अंतर्विरोधों को स्वर दिए गए हैं , वे लिखती हैं– ' जहां पुरुष वैयक्तीकरण के माध्यम से जीता है वहां स्त्री संबंधीकरण के माध्यम से जीती है '। अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य पृ. 187

 ISSN 2231-0584

अन्या से अनन्या में प्रेमिका वनाम पत्नी की सामाजिक , पारिवारिक स्थिति पर एक बड़ी हकीकत को पूरी दिलेरी व साहसिकता से बयान किया है तो **एक कहानी यह भी** में मन्नू भंडारी ने पति पत्नी के बीच पसरे अंतराल को पहचाना है। अपने पिता के बारे में मन्नू जी खुलकर लिखती हैं– ' एक ओर वे बेहद कोमल और संवेदन शील थे तो दूसरी ओर बेहद क्रोधी व अहंवादी । एक ही आदमी के कितने कितने रूप होते हैं , यह मैंने तभी जाना ('अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य पृ. 28)

'लगता नही है दिल मेरा, औरत औरत और औरत' में कृष्णा अग्निहोत्री ने प्रतिष्ठित पुरुषों के चेहरे पर चढे नकाब को नोंचते हुए उनकी असली तस्वीर सामने रखी है तो वही मैत्रेयी पुष्पा ने **कस्तूरी कुंडल बसै व गुड़ियां भीतर गुड़ियां** में दो पीढ़ियों के बीच पसरे स्त्री जीवन के वास्तविक ब्यौरों को पितृसत्तात्मक सत्ता की बारीक चालों , जकड़नों व विवशताओं को बेबाकी से उजागर किया है । इसी तरह कुसुम अंसल की ' जो कहा नही गया ' , रमणिका गुप्ता की हादसे ' , सुशीला टाकभौरे की **शिकंजे का दर्द** में पुरुष सत्तात्मक समाज में व्याप्त स्त्री उत्पीड़न के विविध संदर्भ उकेरे है । सुधा सिंह ने लिखा है – बाहरी दुनियां के साथ संपर्क का नाम है स्त्री आत्मकथा । यह स्त्री के सामाजिक स्पेस के निर्माण के गतिशील अंतर विषयवर्ती प्रकल्प है। फलतः इसमें साहित्य , इतिहास , समाजशास्त्र और सांस्कृतिक अध्ययन आदि अनुशासनों की खूबियां भी सहज ही मिल जाती है । ' नया पथ , जनवरी से मार्च पृ. 111

कहानियों में सूर्यबाला की निर्वासित , मन्नू भंडारी की तीसरा हिस्सा , मेहरून्निसा परवेज की ' टहनियों पर धूप , मृणाल पांडे की दोपहर में मौत , राजी सेठ की समांतर चलते हुए में रिश्तों के बीच पनपती दूरी और अलगाव को रेखांकित किया गया है । सच तो ये है कि पहले वे हर बात में पुरुषों की स्वीकृति की मुंहताज रहती थीं जिसके परिणाम स्वरूप उनके लेखन में पुरुष दृष्टि के मनोवैज्ञानिक, समाज शास्त्रीय एवं उसे अधीन बनाए रखे जाने की घुटन , छटपटाहट व उसके वजूद को रोंदे जाने के असंख्य किस्से दर्ज होते थे जिसके चलते उनके लेखन में अनकहा आक्रोश, आत्मपीड़न , विद्रोह व निषेध की तख्तियां लटकी रहती थीं । सच है कि पुरुष सत्ता व परिवार व्यवस्था के पारंपरिक दुहरे तिहरे दबावों के चलते स्त्री के हर समय पुरुष द्वारा उठाए सवालों के जबाव देने पड़ते थे। अनामिका ने लिखा है –' स्त्रियों की मुश्किल यह है कि उन्हें अपने अधिकारों के लिए एक महीन मनोवैज्ञानिक गांधीवादी जंग छेड़नी पड़ती है उनसे जिन्हें वे प्यार भी करती है पिता, भाई, पति, प्रेमी, बेटे और सहकर्मी सबसे। इनका प्रतिपक्ष इनके अपने ही होते हैं, अपने, जिन्हें 'फार ग्रांटेड' लेने की आदत पड़ चुकी हैं, क्योंकि अब तक के समाज ने इन्हें प्रशिक्षण ही सही नही दिया है। (मन मांझने की जरूरत)

पुरुष सत्ता के अहम, वर्चस्व, सत्ता एवं शक्ति से टकराती आज के स्त्री लेखन में विवाह और प्रेम की पुरानी अवधारणाएं पूरी तरह बदल चुकी है। नीलाक्षी सिंह की कहानी ' उस बरस के मौसम ' में अविवाहिता द्वारा बच्चे को गोद लेने का प्रसंग है तो मंजुल भगत

की ' बानो ' , मृदुला गर्ग की अदृश्य , चित्रा मुदगल की ' अभी भी ' , कमलकुमार की ' कैटलिस्ट ' की स्त्रियां बेचेहरा , व्यक्तित्व हीन , पुरुषों का प्रतिपक्ष रचती नजर आती है । रिश्तों में आयी दरार को अनेदखा पुरुष मानसिकता से आहत स्त्री मन की अभिव्यक्ति छोटे छोटे अनुभवों के जरिए कहानियों में दृष्टव्य है । आज की युवा पीढ़ी के सामने विवाह संस्था जैसी रूढ़ि , परंपरा का दबाव या मूल्यों के न रहने का असर स्त्री लेखन पर पड़ा है । **मधु कांकरिया'** और अंत में ईशु , चूहे को चूहा ही रहने दो , अर्चना वर्मा की नेपथ्य , अलका सरावगी की ' यह भी सच है ' , **गीतांजलि श्री** की ' प्राइवेट लाइफ ' **उर्मिला शिरीष** की ' रंगमंच , **अल्पना मिश्र** की ' इस जहां में हम ' मेरे हमदम मेरे दोस्त' जैसी कहानियां इस बात की गवाह है कि स्त्री समाज तेजी से बदलाव के दौर से गुजर रहा है जहां पुरुष उसका संगी , साथी , मित्र एवं आगे चलकर वह पुरुष पात्र उसका सही मायनों में उसके सपनों का सहयात्री बनकर सामने आता है ।

समकालीन स्त्री लेखन में आर्थिक रूप से आजाद स्त्री की छवि दम खम वाली कदृावर स्त्री की बन रही है जो स्वेच्छा से संबंधों को चुनने या छोड़ने का साहस रखती है। जयंती का उपन्यास (आसपास से गुजरते हुए) व कहानियों में ऐसे किरदार आये है जो अपनी मर्जी से अपने मन से ऐसे पुरुष का चुनाव करती है जिसके साथ वह अपनी सुविधा व सहूलियत के हिसाब से चहलकदम कर सके यानी पुरुष को निर्णेता व स्त्री को निर्णयाधीन बनना आज की स्त्री को मंजूर नही। जयंती दोटूक लहजे में लिखती हैं– ' मैं बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही हूं । चार साल तक लिव इन रही , मुझे लगा , मैं बंध सी गयी हूं । मुझे अपने आसपास बंधन नही चाहिए , घुटन सा लगता है । ' अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य , पृ. 155

संचार माध्यमों में दिखती खुली स्त्री छवि के असंख्य जीते जागते चित्र हम आए दिन अखबार या टीवी पर देखते रहते हैं। क्रमशः स्त्री लेखन के दायरे बढे तो स्त्री पुरुष समानता , स्वतंत्रता की लहर तेजी से उठने लगी । पुरुष अहं की पुष्टि करते यौन शुचिता जैसी जकड़नों को तोड़ती कहानियां दर्ज हैं आज के स्त्री लेखन में, जहां वे अपनी मर्जी से अकेले रहने वाले जीवन का चुनाव करती व दायित्व बोध के साथ एक नए किस्म के आत्मविश्वास से भरी पूरी स्त्री उपस्थित है लेखन में जैसा कि जयंती लिखती हैं– ' मैं अकेली रहने से नही डरती, मुझे अपने लिए ढेर सारी ब्रीदिंग स्पेस चाहिए । मैं अपने हिसाब से दिन को रात , रात को दिन बनाना चाहती हूं। रात को वोदका के 2 2 पैग पीने के बाद हम दोनों ने विवाह संस्था की धज्जियां उड़ायीं , पुरुषों को हिप्पोक्रेट कहा और शादी शुदा महिलाओं को आरामपरस्त। '' (अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य , पृ. 153)

आज के इस दौर में स्त्री पुरुष की भूमिका पूरक की हो चुकी है ऐसे में स्त्री अभिव्यक्ति के सरोकार भी नए व अनजान क्षितिजों की तरफ बढ़ने लगे है । कार्यालय में काम करती स्त्री अपने वजूद को महसूस करती है, आजादी की महक को सूंघने लगी है ,

 ISSN 2231-0584

जहां वह दोटूक फैसला लेने में सक्षम है, जिस तरह की जीवन शैली बन चुकी है , वहां किसी टाइप्ड आदमी के लिए जगह नही है सो लेखिका जयंती का आत्म विश्वासी लहजा चौंकाता नही बल्कि आश्वस्त करता है 'मैं एक ऐसी औरत हूं जिसके पास विकल्प हैं , जोचुनाव करती है, निर्णय लेती है और निर्णय चाहे जो हो, उसका जिम्मा लेती हूं– 'अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य , पृ. 88

आज के स्त्री लेखन में स्वाधीन स्त्री के विजन व सरोकार विस्तृत होते जा रहे हैं , अपने जैसी समान धर्मा स्त्रियों का समाज महानगरें से लेकर छोटे शहरों में भी फैलता जा रहा है। स्त्री पुरुष का संप्रेषण पारदर्शी होता जा रहा है जहां शुमार है सहभागिता का अनूठा सुख। कवयित्री कात्यायनी ने कितना सटीक लिखा है – ' नारीवादी लेखन को आज के विश्व परिवेश , पूंजी की नानाविध जटिल गतियें , उपभोक्ता संस्कृति के नये रूपों और इतिहास विकास के पूरे प्रवाह में अवस्थित करके समझना होगा और उस भावी समाज की संभावनाओं एवं रूपरेखा पर भी सोचना पड़ेगा जिसमें स्त्री एक संपूर्ण मनुष्य का समान दर्जा पा सकेगी । '– दुर्ग द्वार पर दस्तक पृ . 59

अपने मन मुताबिक साथी बने इस पुरूष के साथ स्वाधीन चेतना सम्पन्न स्त्रियों का जो सम्मिलित समाज बना है जो बेहद काम्य है, हमारा अभीष्ट भी वही है तो क्या ये मान लिया जाए कि परिवार व समाज की व्यवस्था आमूलचूल बदलाव की प्रक्रिया में है। सुधी समीक्षक रोहिणी अग्रवाल मानती हैं कि–' भय को चुनौती बनाकर स्त्री पुरुष की रूढ छवियों में अपेक्षित परिवर्तन क्येां नही ? भय की चुनौती बनाकर स्त्री और पुरुष के लिए अलग अलग छवियेां की जरूरत ही क्यों ? और छवि भी क्यों ? छवि का आरोपण ठोस अस्मिता को अपदस्थ करन के लिए वर्चस्ववादी व्यवस्था का षडयंत्र हुआ करता है तो फिर स्त्री और पुरुष को मनुष्य बनाने का आग्रह क्यों नही ? ' –स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प , पृ. 156

सच तो यह है कि चाहे जीवन हो या जीवन के समानांतर चलता लेखन, स्त्री ने पुरुष को विरोधी या शत्रु के रूप में कभी नही माना या चाहा अन्यथा विरोधी के साथ मैत्री संबंध कायम रखने पर इतना जोर क्येां दिया जाता? असल बात तो यह है कि बात चाहे कथा साहित्य की हो, या आलोचना जगत की (महादेवी वर्मा, निर्मला जैन, अर्चना वर्मा एवं रोहिणी अग्रवाल) समस्त लेखन जगत में पढे – सुने, देखे – महसूसे, जान पहचाने तथ्य इसी तरफ इशारा करते हैं कि यह ऐसी साझी लड़ाई है जिसे कोई भी पक्ष प्रतिपक्षनुमा दो पालों में बांटकर नही देखा जा सकता। हम एक दूसरे के शत्रु न कभी थे, न हैं, न होना चाहते हैं बल्कि हम एक ही यात्रा के सहयात्री है । दोनों के मधुर संबंधों से ही एक समरस समाज बन सकेगा वरना फिर दोनों के पास बचेगा वही अकेलापन जिसकी तरफ वरिष्ठ समीक्षक अर्चना वर्मा जी ने इशारा किया है – 'स्वाधीनता का चुनाव अंततः अकेलेपन का

 ISSN 2231-0584

चुनाव। कैरियर की सफलता जीवन में सार्थकता का स्रोत नही हो सकती । सार्थकता मानवीय संबंधों की उष्मा में ही हैं। संबंधों के पनपने की स्वाभाविक जमीन परिवार हैं। ' अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य की भूमिका में से ।

मौजूदा समय की सोच में भी यही निहित है कि स्त्री लेखन में निरूपित पुरुष दृष्टि में लोकतांत्रिकता की कोंपलें पनपें। आज की जागरुक आत्मनिर्भर स्त्री पुरुष के साथ दोस्ताना संबंध की पहल करते हुए स्वस्थ मानवीय प्रेम संबंध के रूप में स्वीकृति पाने के लिए अकुलाने लगी है। विश्वविख्यात स्त्रीवादी चिंतक सीमान द बोउआर ने लिखा है 'संबंधों की पारस्परिकता और अन्योन्याश्रिता से चाह , अधिकार , प्रेम और आमोद प्रमोद के अर्थ समाप्त नही हो जाएंगे और न ही समाप्त होंगे दो संवर्गो के बीच के शब्द देना , प्राप्त करना , मिलन होना बल्कि दासत्व जब समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का , तब व्यवस्था का यह सारा ढोंग समाप्त हो जाएगा । स्त्री पुरूष के बीच का विभेद वास्तव में एक महत्वपूर्ण नई सार्थकता को अभिव्यक्त करेगा । ' स्त्री उपेक्षिता – पृ . 346

सचमुच , स्त्री पुरूष की यह सहयात्रा संपूर्ण मानवता के भाव के साथ एकात्म होकर जब मनुष्यता के पक्ष को सकारात्मक अर्थ देगी , तभी एक समरस समाज का हमारा साझा सपना साकार होगा ।

संदर्भ–सूची

1– हिंदी कथा के तीन हमसफर – निर्मला जैन
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

2– महादेवी वर्मा – श्रृंखला की कड़ियां
लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

3– स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

4– हिंदी साहित्य का आधा इतिहास – सुमन राजे
ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली

5– अरविंद जैन – औरत होने की सजा
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

6– दुर्ग द्वार पर दस्तक – कात्यायनी
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ

7– स्त्री उपेक्षिता – सीमोन द वोबुआर, अनुवाद : प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

8– अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य – संपादक – राजेंद्र यादव, अर्चना वर्मा
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

ISSN 2231-0584

9– इस्पात में ढलती स्त्री–शशिकला राय
सामयिक प्रकाशन दिल्ली

10– अनामिका – मन मांझने की जरूरत
सामयिक प्रकाशन दिल्ली

11– स्त्री उपेक्षिता – सीमोन द बोबुआर
हिंद पॉकेट बुक्स प्रा.लि जीटी रोड शाहदरा दिल्ली

12– स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य – डॉ. के. एम.मालती
वाणी प्रकाशन दिल्ली

13– सूर्यबाला – अग्निपाखी
ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली

14– छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

15– कठगुलाब – मृदुला गर्ग
ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली

16– चित्रा मुदगल – आवां
सामयिक प्रकाशन दिल्ली

17– चित्रा मुदगल – गिलिगडु
सामयिक प्रकाशन दिल्ली

18– चंद्रकांता – अपने अपने कोणार्क
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

19– चंद्रकांता – कथा सतीसर
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

20– कमल कुमार' यह खबर नही
अखिल भारती प्रकाशन दिल्ली

21– ममता कालिया – दौड़
वाणी प्रकाशन दिल्ली

22– ममता कालिया
ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली

23– मन्नू भंडारी – महाभोज
राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

24– मैत्रैयी पुष्पा – चाक एवं झूला नट
राजकमल प्रकाशन दिल्ली

25– मैत्रैयी पुष्पा – इदन्नमम
किताबघर प्रकाशन दिल्ली

 ISSN 2231-0584

कोरोना में भारतीय परिदृश्य और स्त्री केन्द्रित हिन्दी दलित कविता

डॉ. रजत रानी मीनू
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, कमला नेहरू कॉलेज
मोबाइल : 9911043588
ईमेल : rajatranimeenu@gmail.com

'प्रस्तुत विषय पर शोध आलेख को मैं दो भागों में बांट कर लिखने का प्रयास कर रही हूं। एक कोरोना काल में भारतीय परिदृश्य दूसरा स्त्री केन्द्रित हिन्दी दलित कविता। दलित साहित्य देश भर के विश्वविद्यायलों में न्यूनाधिक पाठ्यक्रम का हिस्सा रहा है, तथा दलित विषयों पर शोध कार्य भी इधर दो–तीन दशकों में बड़ी संख्या में हुए हैं। कुछ विदेशी विश्वविद्यालयों में भी दलित साहित्य के विषयों पर शोध हुए हैं। मैं यहां अपने आलेख में पुनरावृतियों से बचते हुए पहली बार उन्हीं रचनाओं का शोध आलेख में उद्धृत करूंगी, जिनका अभी तक कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। शोध आलेख मौलिक रहे, मैंने इसका भी पूरा ध्यान रखा है।

कोरोना के कारण भारतीय परिदृश्य में क्या बदलाव हुए हैं? और कब से हुए हैं? उन बदलाव का साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है? खास कर स्त्री के संबंध में। यूं तो समाज में समय–समय पर बदलाव स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं, जैसे– खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, विचार इत्यादि के स्तर पर। उन सबका साहित्य पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता ही है क्योंकि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। आज न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया के लगभग सभी देशों में कोविद 19 महामारी के कारण सबकी दिनचर्या बदल गयी है। मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों के काम करने के तरीकों में सबसे बड़ा बदलाव यह आया है कि हम वर्क फ्रॉम होम के धीरे–धीरे अभ्यस्त हो रहे हैं या यह कहें कि हम कोरोना महामारी के भय से मजबूर हो कर अपनी जीवन शैली और कार्य पद्धति बदल रहे हैं। अपने घरों में बैठ कर इन्टरनेट के द्वारा एक दूसरे से जुड़ रहे हैं। विद्यार्थी पढ़ रहे हैं और शिक्षक पढ़ा रहे हैं। देश में ऑफिसों में ऑन लाइन सारे काम हो रहे हैं यानी कोरोना के काल में हमारी दिनचर्या पूरी तरह से बदल गई है।

बदलाव हमेशा सकारात्मक ही हो यह जरूरी नहीं है, और बदलाव सभी पर एक जैसा प्रभाव डालते हों यह भी आवश्यक नहीं होता है। कोरोना के दौर में लॉकडाउन के बाद सबसे नकारात्मक प्रभाव मजदूर वर्ग की जीविका पर पड़ा है। इस संकट की घड़ी में बहुत से मजदूरों के लिए भोजन, आश्रय और यातायात की समस्याएं कोरोना से भी अधिक भयावह बनी हैं। वे आवासहीन और बेरोजगार हुए हैं। इसी कारण देश के अनेक महानगरों से हजारों की संख्या में अपने छोटे–छोटे बच्चों, यहां तक कि गर्भवती पत्नियों को साथ

 ISSN 2231-0584

लेकर वे अपने गांव की ओर पैदल निकल पड़े थे। करीब दो माह शहरों से गांव की ओर मजदूरों का पलायन बहुत तेजी से हुआ था। कुछ मजदूर जुगाड़ गाड़ी बना कर निकले थे, तो कुछ पैदल ही भाग छूटे थे। एक 12 साल की दलित लड़की 'ज्योति' पासवान साइकिल चलाना जानती थी, अतः उसने जनधन खाते से 500 रूपये निकाल कर किसी तरह पुरानी साइकिल खरीदी और अपने बीमार पिता को साइकिल पर बैठा कर आठ दिनों में 1200 कि. मी. की यात्रा तय कर के अपने गांव सिंहबाड़ा, दरभंगा, बिहार पहुंची। दिल्ली में उसके पिता रिक्शा चलाते थे। ट्रक की टक्कर से उनको चोट लग गयी। ज्योति पिता की सहायता के लिए गांव से स्कूली पढाई छोड़ कर दिल्ली आई थी। यहां कोरोना महामारी के कारण काम बंद हो गया था। भूखों मरने पर गांव जाने की सोची। इस बेटी की बहादुरी के चर्चे सोशल मीडिया और बाद में मीडिया में छाये रहे। अमेरिका की मीडिया और ट्रंप की बेटी इंवाका ने भी नोटिस लिया। इसके अलावा न जाने कितने मजदूर अपने गांव तो पहुंचे मगर घर नहीं पहुंच सके। बहुत से मजदूरों ने भूख–प्यास से त्रस्त दम तोड़ दिया। इन मजदूरों की मौत के आंकड़े भी इक्ठ्ठे नहीं किए गये। इस महामारी ने मानों मनुष्य की संवेदना का कत्ल ही कर दिया है। एक बच्चा भूख से विक्षिप्त सड़क पर किसी मरे हुए जानवर का मांस खाता देखा गया। संवेदना को झकझोरने वाला वह बीभत्स चित्र तो ऐसा देखा गया जिसमें मजदूर इंसान के मृत शरीर को जानवर खाते हुए दिखाई दिए। वे पहले कोरोना महामारी से बचने के भय से और शहरों में कोई आर्थिक और आवास का ठिकाना न होने के वजह से जान बचाने के लिए गांव की ओर तमाम जोखिम उठाते हुए जत्थों में निकल पड़े थे। कुछ तो घर पहुंच भी नहीं पाए। रास्ते में दम तोड़ दिया। यह एक अलग तरह की त्रासदी है। गांव में अगर रोटी का जुगाड़ होता तो वे शहर की ओर पलायन नहीं करते। अभी भी वही स्थिति बनी हुई है। कुछ दिन गांव में काट कर मजदूरों का पुनः शहरों की ओर पलायन हो रहा है।

कोरोना महामारी में भारत का एक दृश्य स्पष्ट रूप से हमारे सामने दिखाई दे रहा है जिसमें लोग अमीर और गरीब मानों दो ध्रुवों में बंटे हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। सवाल उठता है कि ये गरीब लोग कौन हैं? कहां से आये हैं? निश्चित ही ये भारत के ही के नागरिक हैं। फिर ये इतने विवश क्यों हैं? ये मेहनतकश भी हैं फिर इनको श्रम का मेहनताना इतना कम क्यों मिलता है कि वे कोरोना महामारी के कॉल डाउन में आपातकाल में एक दो माह भी अपनी जमापूंजी से पेट नहीं भर सकते। क्या कारण हैं वे बेघर क्यों हैं? क्योंकि इन सवालों का दलित साहित्य से संबंध है और बदलते भारत से भी इनका संबंध है। सवाल है कि देश में अच्छे दिन और विकास के नारे खूब प्रचारित तो हुए मगर इनकी झोली में न अच्छे दिन आए और न इनका कोई विकास हुआ। यदि हुआ होता तो ये इस तरह गांव से शहर और शहर से गांव रोजी–रोटी के लिए भागे घूम नहीं रहे होते। सवाल यह भी है कि आखिर ऐसा क्यों है?

बृहद रूप से अतीत की तरफ मुड़ कर देखते हैं तो हमारे सामने भारतीय परिदृश्य

में सबसे बड़ा बदलाव आजाद भारत में दिखाई देता है। भारतीय संविधान में कमजोर वर्गो के हितों के संरक्षण के परिणाम स्वरूप उनको समान नागरिक अधिकार मिले हैं। अवसरों की समानता मिली है। विद्याअर्जन और अभिव्यक्ति के अवसर मिलने के कारण तथाकथित दलितों, आदिवासियों इत्यादि कमजोर वर्गो के जीवन में बहुत बड़ा बदलाव आया है। दलित रचनाकारों की अभिव्यकि उसी का प्रतिफलन है। वे स्त्रियों के बारे में किस तरह सोच रहे हैं। इस बिंदु पर मैंनें यहां संक्षेप में विचार रखने का विनम्र प्रयास किया है।

सामान्यतः यह मान कर चला जाता है कि दलित लेखक किसी न किसी प्रकार के संकट से गुजर कर ही आए हैं। उन्होंने अपने आप को व्यक्त भी किया है और उनकी अभिव्यक्ति के अनेक रूप भी सामने हैं, परन्तु उन सब पर बात करना संभव नहीं है और मैं केवल एक बिंदु चुन रही हूं और वह है कविता में उनका स्त्री विषयक दृष्टिकोण।

इस दृष्टिकोण को समझने के लिए मैं संक्षेप में उनकी रचनाओं से गुजरते हुए उनका वस्तुपरक मूल्यांकन करने का प्रयास करूंगी। मैं यह दावा नहीं करूंगी कि उनका मूल्यांकन पूरा हो जाएगा या पूरी तरह सही ही हो पाएगा। यह उन्हें समझने की एक विनम्र चेष्टा भर होगी। मैं सबसे पहले हिन्दी दलित साहित्य के शिखर रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता संग्रह 'सदियों का संताप' जैसा शीर्षक वैसा ही उनकी कविताओं का ताप है। उसके बाद 'बस्स बहुत हो चुका' और 'शब्द झूठ नहीं बोलते' इन कविता संग्रहों में निरंतर बदलते हुए भाव देखने को मिलते हैं। संग्रह में अनूभतिपरक कविताएं अधिक हैं। स्त्री पर केन्द्रित कविताओं में वे संवेदना के स्तर पर उनकी कविता में स्त्री मां, बहन कभी बेटी विभिन्न समस्याओं में चित्रित हुई हैं। उन कविताओं और कवि का बदलते हुए भारतीय परिदृश्य से संबंध जुड़ता है। उनकी 'रामेसरी' कविता का मैं पहले अनेक बार संदर्भ दे चुकी हूं इसलिए यहां उस कविता के भाव पक्ष पर बात करूंगी। कविता में रामेसरी नाम की एक भंगी जाति की स्त्री सुबह–सुबह धूल उड़ाती हुई सड़क पर झाड़ू बुहारती है। इस को हम आज के कोरोना महामारी के बदलते परिदृश्य में हमने देखा कि सफाई कर्मियों ने पूरी सेवाएं दी हैं जिसमें सफाई कर्मी स्त्रियां भी शामिल थीं। उन्हें सुरक्षा कवच तक नहीं दिए गये। उनके जीवन खतरे में बने रहें हैं। कुछ तो महामारी की शिकार भी हुए हैं। वाल्मीकि जी की कविता की 'रामेसरी' भी बिना किसी सुरक्षा कवच के आजाद भारत में झाड़ू लगाती है। उसके फेफड़े चिमनी की तरह धूल से संक्रमित हो जाते हैं। रामेसरी एक मात्र स्त्री भर नहीं है। उस जैसी काम करने वाली भारत में अनेक स्त्रियां हजारों वर्षों से अपने स्वास्थ को नजरंदाज करती हुई देश की सफाई के काम में जुटी हुई हैं। इस समाज ने उन्हें इसके बदले अस्पृश्यता, उपेक्षा, अवेहलना ही दी है। उनकी यह कविता वाल्मीकि जी के पहले कविता संग्रह 'सदियों के संपाप' में संकलित है। दलितों के जीवन में संदियों का संताप आज भी बना हुआ है। दलितों के गांव के गांव जला दिये जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'बिटिया' कविता की कुछ पंक्तियां इस संदर्भ में देखें–

 ISSN 2231-0584

''लगा जैसे एक भीड़ है
आसपास, बेदखल होती बदहवास
चारों ओर जलते घरों से उठता धुआं
जलते दरवाजे, खिड़कियां
फ्रिज, अलमारी
बिटिया का बस्ता
जिसे सहेज कर रखती थी करीने से
एक–एक चीज
पेंसिल, कटर और रबर
कॉपी, किताब
हेयर–पिन, फ्रेंडशिप बैंड
बस्ता नहीं एक दुनिया थी उसकी
.....
अजनबी घर में
जहां नहीं है उसका बस्ता
गोहाना की चिरायंध
फैली है हवा में
जहां आततायी भांज रहे हैं
लाठी, सरिये, गंडासे।''[1]

गोहाना आगजनी हत्याकांड सुर्खियों में रहा है। वह जातीय द्वेष की घटना संवेदनशील व्यक्तियों को आज भी झकझोर कर रख देती है। एक स्कूल जाने वाली बच्ची की संवेदना को कवि ने बहुत ही बारीकी से चित्रण किया है। दलितों की अस्मिताएं संकटकाल में कुचली जाती रही हैं। वाल्मीकि जी की उक्त कविता में पाकिस्तान और भारत के विभाजन की त्रासदी जैसी वेदना दिखाई दे रही है। अपने प्रवास को छोड़ना बहुत ही पीड़ा दायक होता है जब उनके घरों को उनके ही देश के लोग जला कर राख कर दे तब उनका दर्द अकथनीय हो जाता है। इस दर्द को इतनी गहराई से कवि वाल्मीकि के अलावा अन्य किसी ने महसूस नहीं किया।

दलितों के संकट एक जैसे नहीं हैं। वे उनके जीवन में निरंतर किसी न किसी रूप में बने रहते हैं। हर तरह के संकटकाल में स्त्रियां सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। जयप्रकाश कर्दम की 'अक्करमाशी' कविता की चुनिंदा पंक्तियां हमें इस ओर सोचने को विवश करती हैं, नमूनार्थ कुछ पंक्तियां देखें–

 ISSN 2231-0584

''मुझे ''अक्करमासी'' कह कर
मेरा उपहास मत उड़ाओ
मेरे खून को मत खौलाओ
अपनी मां के कुकर्मो के कारण
नहीं हूं मैं अक्करमासी
मैं उसकी विवशता का परिणाम हूं
पाटिल की औलाद होकर भी
बाप से बेनाम हूं।''[2]

मराठी के सुविख्यात रचनाकार शरणकुमार लिंबाले ने 'अक्करमासी' शीर्षक से आत्मकथा लिखी थी। यह आत्मकथा देश–विदेश की कई भाषाओं में अनुदित हुई थी, देश और विदेशों में इसकी खूब चर्चा हुई। कवि कर्दम की कविता उनके जीवन के उन्हीं पहलुओं को दर्शाती है जो लिंबाले जी ने अक्करमासी में लिखा था। दरअसल कवि ने इस कविता के द्वारा एक बहुत बड़ी समस्या को उजागर करने का प्रयास किया है। समाज में सामंती प्रथा के तहत स्त्रियों को एक वस्तु माना है। उनकी अस्मिता का कोई मूल्य नहीं है। दलित स्त्री की स्थिति तो और भी चिंताजनक है, क्योंकि उसका समाज कमजोर है। उस कारण उसके समाज की स्त्रियों को ये पाटिल जैसे अनेक वर्चस्व वाली जातियां उनकी कमजोरी का फायदा उठा कर उनकी स्त्रियों के साथ जोर जबरदस्ती करते रहते हैं। यह अनैतिक कार्य उनकी परंपरा और संस्कृति का हिस्सा भी बना हुआ है। संस्कृति पर बात करने वाले विद्वतजन भी कभी इस ओर चर्चा नहीं करते। यहां दलित स्त्री अपमानित तो हो ही रही है मगर सवर्ण स्त्री को भी कोई सम्मान नहीं मिल रहा है। वह पिता, पति, पुत्र और भाई के अनैतिक कार्यो का खुल कर विरोध भी नहीं कर पा रही है और अपनी विवशता पर छिप–छिप कर खून के आंसू पीती रहती है।

इधर कालीचरण स्नेही जी कविता के क्षेत्र में बहुत ही सुपरिचित नाम है। उनके अब तक पांच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यहां हम उनके सभी संग्रहों से कविताएं तो नहीं ले सकते क्योंकि हम विषय और शब्द सीमा के अनुशासन में बंधे हुए हैं। 'दोनों के हाथ झाड़ू'. कविता की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

''पुरूष ने अपने हिस्से की
गंदगी धकेल दी है–
औरत की तरफ।
घर–आंगन बुहारती है एक
और एक सड़कें।
अपने बच्चों का पाखाना उठाती है एक

 ISSN 2231-0584

और एक सारे मोहल्ले का।
अन्तर कोई नहीं है दोनों के काम में।
दोनों ही औरतें हैं–
झोपड़ी में भी
और महल में भी
दोनों के हाथ झाड़ू है।
सवाल रानी–मेहतरानी का नहीं–
सवाल है हमारी दोहरी मानसिकता का।
दोहरे बर्ताव का
औरत के शोषण का।''[3]

स्नेही जी की कविता जहां एक तरफ दलित स्त्री और सवर्ण स्त्री के कार्यो का बहुत ही सच्चाई के साथ बिंब हमारे सामने रखती है। दूसरी तरफ दोनों समाजों में स्त्रियों की स्थिति का बेबाकी से चित्रण करती है। हमारी सोच और दोहरे मानस पर सवाल खड़ा भी करती है उनकी उक्त कविता। स्त्री को केन्द्र में रख कर इस तरह के भाव दलित कविता में बहुत कम देखने को मिलते हैं। उसके प्रति संवेदना का भाव जागता है तो उसके साथ बलात्कार और गरीबी की घटनाओं को साहित्य में अधिक स्थान मिला है। यहां दोनों वर्गो की स्त्रियों की सामाजिक हैसियत का पता चलता है दूसरी ओर उनके प्रति पुरुषों की मानसिकता भी उजागर हुई है।

दलित स्त्रियों की परेशानियों का कोई अंत नहीं। दलित कवि संवेदनशील अधिक होता है। उसकी नजर चारों ओर जाती है। अपने घरों में काम करने वाली स्त्री की समस्या को कवि श्यौराज सिंह बेचैन की कविता शीर्षक 'रजनी' की कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं–

''इस छब्बीस
जनवरी के दिन
रजनी घर पर आई थी।
आंखों में था दर्द और
होठों पै व्यथा ले आयी थी।
''झुग्गी उठा कर आज मेरी
बिल्डर ने फिंकवा दी है
चार जगह फुटपाथ बुहारे
कहीं न कोई जगह दी है।
कितनी ठंडी हवा आज है–

 ISSN 2231-0584

उस पर बूंदा–बांदी है
बच्चे लेकर कहां रहूं मैं
मुझको क्या आजादी है?''[4]

रजनी नाम बहुत हैं। कवि श्यौराज सिंह बेचैन की कविता में आई रजनी दलित समाज की न लेखिका है न समाज कार्यकर्ता। यह इसलिए भी स्पष्ट करना जरूरी है कि दलित साहित्य में इधर तीन रजनी हैं, पर यह चौथी कवि की रजनी एक ऐसी स्त्री है जो आजादी के 70 साल के बाद भी बेघर है। उसका न कोई घर है न रोजगार की सुनिश्चिता है। कवि ने उसकी विवशता और वेदना को गणतंत्र दिवस से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि हमारे देश में रजनी कोई एक स्त्री नहीं है जो रोजगार की तलाश में गांव से शहरों की ओर आई है और यहां उनके निवास से जुड़ी बेसिक बड़ी समस्या है। उसके बाद उनके जीवन की दूसरी समस्याएं शुरू होती हैं। पानी और शौच से जुड़ी समस्याएं उनकी तरफ तो अभी गंभीरता से सोचा ही नहीं गया है। हम कवि की रजनी की समस्या को कोरोना महामारी के दौरान आई समस्या से जोड़ कर देख सकते हैं। इस दौरान जो मजदूर मिल–फैक्ट्ररियों, निर्माण से जुड़े और घरेलू सेविका इत्यादि कार्यो में जो लोग जुड़े थे और उनका निवास भी उसी जगह से जुड़ा था। कोरोना के कारण सब बंद हुआ तो इनके काम और रोजगार भी बंद हो गये। कोरोना ने उनके समस्या को आग में घी डालने को काम किया है। कवि की रजनी उन्हीं मजदूरों में से एक है।

दलित स्त्री की अनेक समस्याओं को दलित कवियों ने बहुत गंभीरता से लिया है। असंगघोष हिन्दी के सुविख्यात कवि रहे हैं। वे लंबे समय से कविताएं लिख रहे हैं। पेशे से प्रशासन में होने के बावजूद उनका कवि हृदय संवेदशील है। 'छप्पर फाड़ कर' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों से उनकी इस सहृदयता को समझा जा सकता है और दलित स्त्री की समस्याओं को भी, देखें–

''भूखी बच्ची की भोली आंखें
चेहरे पर घिर आई चिन्ता
गीली लकड़ी
बुझा चूल्हा
कैसे चढ़ती हांड़ी

मां के चेहरे पर बार–बार आ जातीं।''[5] गरीबी और एक मां की विवशता अनुभूतिपरक है। यह ऐसी समस्या है जिसे भुक्तभोगी ही समझ सकता है। दलित कवि दलित समाज या स्त्री की किसी समस्या को व्यक्त करता है तो जाहिर है वह समाज का

 ISSN 2231-0584

उसकी ओर ध्यान खींचना चाहता है। वह बताना चाहता है कि यह हमारे देश की एक समस्या यह भी है। राष्ट्र के विकास में इधर सुधार की आवश्यकता है।

हिन्दी दलित साहित्य के स्थापित साहित्यकारों के अलावा इधर एक नई पौध ने भी कलम चलानी शुरू कर दी हैं। विचार के स्तर पर कुछ अम्बेडकरवादी हैं तो कुछ मार्क्सवादी विचार से अपने विचारों को पका कर दलित साहित्य लेखन भी करने लगे हैं। इनमें आर.डी.आनन्द का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उन्होंने अब तक एक दर्जन से अधिक रचनाएं अनेक विधाओं में लिखी हैं। उनके यहां दलित स्त्री की संवेदना अलग तरह की दिखाई देती है। स्त्री मात्र की मुक्ति को विभिन्न रूपों में वे देखते हैं। कभी अपनी 'विद्या' कविता में अपनी दादी, मां की अशिक्षा का चित्रण करते हैं तो 'रेप' संस्कृति पर अलग ढंग से लिखा है। कुछ नमूने देखें–

''सभ्य संस्कृति/सुन्दर नारी/परिधानों में/सजी धजी/नित रूप सिंगार/
किया करती थी/घुग्घु और भेड़ियों में/वह कैसे भला/ जिया करती थी/
पति था उसका/जाने कैसा/रेप पर रेप/सहा करती थी/विक्षिप्त हो गयी/
जाने कब/बस नंगी रोड/फिरा करती थी।''[6]

यहां कवि आर.डी. आनन्द ने स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति और उसकी विवशता का चित्रण बहुत ही साफगोई से किया है। साथ ही उन्होंने प्रतीकात्मक ढंग से हमारी उस संस्कृति पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है जिसमें स्त्री की अस्मिता घर में भी सुरक्षित नहीं है। यह समाज का सच आज के बदलते भारतीय परिवेश में भी स्त्री चाहे सवर्ण हो या दलित सामाजिक स्तर पर दोनों को मात्र भोग्या समझने वालों की कमी नहीं है। दलित कविता में संवेदना के स्तर पर उन चित्रों के बिंब दिखाई देने लगे थे जो अब तक हिन्दी में इतनी गहरी संवेदना के साथ इन विषयों को उसी तरह अनदेखा किया जाता रहा है जैसे दलितों के जीवन को। 'नारी सम्मान' शीर्षक से कवि आनन्द की एक अन्य कविता के नमूने देखें–

''मैं नारी हूं/मुझे नहीं चाहिए/तुम मुझे देवी का दर्जा दो/मुझे नहीं कहना/
तुम मेरी आरती उतारो/मुझे नहीं चाहिए /मेरी फोटो पर/तुम माला
चढ़ाओ/मैं नहीं कहती/मेरे को देवी मान कर पूजो/.....मैं सिर्फ चाहती
हूं/मुझे मेरे बाबा साहब द्वारा दिए गये/संवैधानिक अधिकार दे दो।''[7]

आजादी के बाद भारत का परिदृश्य संविधान के लागू होने के साथ बदलता है। वहीं से नारी की सोच बदलती है। आर.डी. आनन्द की उक्त कविता में जो नवीन मूल्य दिखाई दे रहे हैं। ये आज की नारी की आवाज है जिसमें वह देवी बन कर परलोक की चिंता नहीं आज के जीवन को एक मनुष्य के रूप में पूरी तरह से जीना चाहती है। यह उसी तरह की अभिव्यक्ति है जैसे भारतेन्दु ने 'बालाबोधिनी' में स्त्री बन कर स्त्री को संबोधित

किया था। आज की स्त्री बाबा साहब द्वारा संविधान में दिए गये अधिकारों को पाने की बात करती है। उसकी यह आवाज देश की हर स्त्री की है, जो पहले जाग गई, उसे उसके संवैधानिक अधिकार पहले मिल गये, जिसका समाज सो रहा है या आजादी के बाद वर्चस्ववादियों के चंगुल में फंसा है। उस समाज की स्त्रियों के लिए संवैधानिक अधिकार कल्पनातीत बने हुए हैं।

प्रो. कृपाशंकर उपाध्याय जी के शब्दों में कहूं तो **''अस्मिता विमर्श के कारण हमारे परंपरागत साहित्य रामायण, महाभारत के वे उपेक्षित पात्र दलित, आदिवासी विमर्श के रूप में अब लेखक बन कर लिखने लगे हैं। यह भारत का बदलता हुआ परिदृश्य है।''**[8] उनकी बात का यहां समर्थन किया जा सकता है। अतीत के उपेक्षित जीवंत पात्र ही आज भारत का परिदृश्य बदला तो कुछ ने झाड़ू, कुदाली, खुरपी चलाने के साथ कलम पकड़ कर अपने अनुभवों पर आधारित साहित्य रचने लगे हैं। मुसाफिर बैठा युवा रचनाकारों से थोड़े आगे की पंक्ति में आते हैं। उनका एक कविता संग्रह है 'बीमार मानस का गेह' में वह 'गिरवी–दर–गिरवी' कविता में अपनी संवेदना और समाज के सच को इस प्रकार रखते हैं–

''जिस मां के कुपोशित स्तन में

न उतर सका ममता भर दूध भी

जिससे लगकर चुभक्का मारकर

दूध पी अघा सका न कभी उसका बच्चा

जो मां अपनी छाती के दूध के सिवा

अपने जिगर के टुकड़े को दे न सकी

किसी दूसरे पोशाहार का पूरक संबल

और बीत गया उसके लाल का अदूध ही

दूधपीता बचपन

उसकी जननी छाती का मन भर जुराए बिना ही।''[9]

 ISSN 2231-0584

मुसाफिर बैठा की यह कविता बहुत ही संवेदनशील है। इसे देख कर हमारा ध्यान आज के कोरोना महामारी के दौरान गांव की ओर पलायन कर रहे हजारों की संख्या में मजदूर वर्ग और उनकी स्त्रियों उनके बच्चों की ओर जाता है। आज मजदूरों की लगभग यही स्थिति देखी जा सकती है।

निष्कर्ष रूप में हम कवि श्यौराज सिंह बेचैन की निम्न पंक्ति के रूप में कह सकते हैं कि **''जुल्मों सितम की मारी, मारी कहां हो तुम, हिन्दोस्तां की नारी, नारी कहां हो तुम?''**[10]

नारी की सुरक्षा, उसकी अस्मिता, उसके अधिकारों के सवाल खड़े हैं। वह सामाजिक और घरेलू हिंसा की समस्याओं से घिरी है। आखिर कब सभी भारतीय स्त्रियों की समस्याओं का निदान होगा? कब उसे सम्मान जनक जीवन जीने के अवसर मिलेंगे? कब आजादी का स्वाद वह चख पाएगी? कब वह शिक्षित हो पाएगी? स्त्रियों खास कर दलित स्त्री से जुड़े हुए ऐसे अनेक सवाल हैं। हमें उन पर सोचना होगा, विचार करना होगा। उनकी समस्याओं के निदान पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जिससे एक सुन्दर और संपूर्ण विकसित राष्ट्र का सपना पूरा हो सके।

संदर्भ–सूची

1. गूंगा नहीं था मैं (कविता संग्रह)–जयप्रकाश कर्दम, प्रकाशक–अतिश प्रकाशन, जी–8 एरिया, हरिनगर, दिल्ली–110064, संस्करण–1997, पृ.–40

2. आरक्षण अपना अपना (कविता संग्रह)–कालीचरण स्नेही, नवभारत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण– 2007, पृ. 116

3. चमार की चाय (कविता संग्रह)–श्यौराज सिंह बेचैन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण–2017, पृ.–114

4. खामोश नहीं हूं– असंगघोश, शिल्पायन, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण–2011

5. स्याह रात का सूरज (कविता संग्रह)–आर.डी. आनन्द, बोधि प्रकाशन जयपुर, संस्करण–2018, पृ.–65

6. संस्कृतियों का आत्मबोध(कविता संग्रह)–आर.डी. आनन्द, बोधि प्रकाशन, नाला रोड 22 गोदाम, जयपुर, संस्करण–2018, पृ. 74

7. करूणा शंकर उपाध्याय, रामानुज कॉलेज द्वारा आयोजित संवर्द्धन कार्यक्रम उद्घाटन व्याख्यान में 22 मई 2020

8. बीमार मानस का गेह (कविता संग्रह)–मुसाफिर बैठा, रश्मि प्रकाशन, बी–3, बी.4 कृष्णा नगर, लखनऊ, संस्करण– 2018, पृ. 55

9. श्यौराज सिंह बेचैन, रंगीला टाइम्स, चन्दौसी, 22 मार्च, 1984, पृ. 4

10. ओमप्रकाश वाल्मीकि–शब्द झूठ नहीं बोलते (कविता संग्रह), अनामिका पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– 2012, पृ. 59–60

हिन्दी–भाषा की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

डॉ. तृप्ता
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
अदिति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9811545027
ईमेल : dr.triptasharma@yahoo.com

हिन्दी भाषा की चुनौतियों एवं संभावनाओं पर विचार व्यक्त करने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास के संक्षिप्त परिदृश्य को भी जान लें। वर्तमान हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार संपूर्ण भारत में फैला हुआ है। हिन्दी को व्यवहारिक प्रयोग की भाषा के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अंतर्गत उत्तरप्रदेश, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली और अंडमान–निकाबोर आदि क्षेत्रों के नाम शुमार हैं। इन सभी क्षेत्रों में हिन्दी पढ़ने, लिखने और बोलने वाली भाषा के रूप में प्रयुक्त की जाती है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि 'हिन्दी' शब्द की उत्पत्ति भारत में न होकर भारत के बाहर हुई है। वास्तव में भारत की पश्चिमी सीमा से दूर के लोगों ने हिन्दी को भारतीय नाम व अर्थ प्रदान किया था। सर्वप्रथम हमारे देश की सोने की चिड़िया जैसी समृद्धि से आकर्षित होकर ईरान, अफगानिस्तान से विदेशी व्यापारी और आक्रमणकर्त्ता सिन्ध क्षेत्र से भारत में आए थे। हिन्दी वस्तुतः फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'हिन्दी का' या 'हिंद' से संबंधित। ईरानी भाषा की भाषिक प्रवृत्ति के अनुसार वह लोग 'स' अक्षर को 'ह' बोलते थे, इसलिए कालांतर में सिन्ध को 'हिन्द' और सिन्धी को 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' के रूप में उच्चरित किया गया। भारत में प्रवेश करने वाले यह सभी विदेशी अपनी भाषा, खान–पान, रीति–रिवाज, पहनावा और संस्कृति को भी अपने साथ लाए। भारतीय संस्कृति ने विदेशियों के इन सभी तत्वों को ज्यों–का–त्यों अपने भीतर समाहित कर लिया। आज भी यह सभी विदेशी भाषिक विशेषताएँ हमारी विविधतापूर्ण संस्कृति का अभिन्न अंग बन चुकी हैं।

हिन्दी भाषा का उद्‌भवकाल सन् 1000 ई. से माना जाता है। अपने उद्‌भव के लगभग दो–तीन सौ वर्षों में ही हिन्दी के शब्दों का इन विदेशी आक्रमणकर्त्ताओं द्वारा तीव्र गति से प्रचार–प्रसार किया गया। यह तमाम हिन्दी शब्द हमारे पूरे देश में फैल गए। हम देशवासियों ने इन सभी शब्दों को उदारतापूर्वक अपनाकर मान्यता प्रदान कर दी। यही हिन्दी, हिन्दू–मुस्लिम, पूर्व–पश्चिम तथा उत्तर–दक्षिण को जोड़नेवाली कड़ी के रूप में आज तक विद्यमान है।

भारत के जिन क्षेत्रों को 'हिन्दी–क्षेत्र' कहा जाता है, वहाँ हिन्दी भाषा के जन्म से

 ISSN 2231-0584

पूर्व अपभ्रंश भाषाओं का साम्राज्य था। इसी अपभ्रंश भाषा में साहित्य–सृजन किया जाता था। हिन्दी की यात्रा को हम संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिन्दी के यात्रा–पड़ावों के रूप में जान सकते हैं। वर्तमान 'हिन्दी' शब्द सभी ऐतिहासिक, राजनैतिक, साहित्यिक और भाषिक–प्रभावों से परिपूर्ण है।

वस्तुतः अंग्रेजी राज के समय से ही खड़ी बोली हिन्दी का विस्तृत पैमाने पर विकास हो रहा था। आधुनिक काल के आरंभ से ही खड़ी बोली हिन्दी पल्लवित, पुष्पित और विकसित होने लगी थी। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात् भी खड़ी बोली हिन्दी अपने विकास के सभी मार्गों से गुजरकर एक नदी की बहती धारा के रूप में आज तक निरंतर प्रवाह्मान है। भारत के भाषिक और साहित्यिक सभी व्यवहार हिन्दी भाषा आधारित हैं।

हिन्दी के संदर्भ में महात्मा गाँधी जी ने भी 'हिंद स्वराज्य' में हिन्दी के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किए थे–''सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू–मुसलमानों के विचारों को ठीक से समझने के लिए बहुतेरे हिन्दुस्तानियों को दोनों लिपियाँ जाननी जरूरी हैं। ऐसा होने पर हम अपने आपस के व्यवहार में से अंग्रेजी को निकाल बाहर कर सकेंगे।''

इसी शृंखला में हिन्दी की भूमिका पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने भी कहा था–''देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है, देशभर के लोगों में हिन्दी के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन होना। अगर आज हिन्दी मान ली गई है तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण। वह किसी प्रांत–विशेष की भाषा नहीं, बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है।

गाँधीजी और नेताजी के हिन्दी भाषा की चुनौतियों और संभावनाओं विषयक विचारों के क्रम में गोपाल सिंह 'नेपाली' की प्रसिद्ध कविता 'हिन्दी है भारत की बोली' की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी हिन्दी भाषा की अस्मिता का महत्व दर्शाती है–

दो वर्तमान का सत्य सरल
सुंदर भविष्य के सपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो।

उपरोक्त पंक्तियों में 'नेपाली जी' का मानना है कि हिन्दी भारत की बोली है। हमारे वर्तमान का सत्य और सुंदर भविष्य के स्वप्न इसी भाषा से जुड़े हैं। कवि की मंशा है कि इसे सहज रूप से पनपने के अवसर हमें प्रदान करने चाहिए। नेपाली जी की कविता का भाव आज की हिन्दी भाषा का वर्तमान और भविष्य का चित्र उकेरता है। वास्तव में हिन्दी

 ISSN 2231-0584

भाषा एक समृद्ध शब्द–भंडार क्रिया, पदक्रम से युक्त भाषा है। ये तमाम विशेषताएँ इसे पूर्ण और स्वतंत्र भाषा का दर्जा प्रदान करती है।

आधुनिक काल के जनक 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र' जब 'हिन्दी नई चाल में ढली' उक्ति कहते हैं तो उनका आशय तत्कालीन समय में हिन्दी की व्यापकता को ही दर्शाता है। भारतेन्दु जी की यही सोच आज की हिन्दी पर भी लागू होती है। प्रसिद्ध वैयाकरण 'किशोरी दास वाजपेयी' ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी–अनुशासन' में क्रियापद अव्यय विभक्तियों तथा सर्वनाम को भाषा के चार प्रमुख स्तंभ माना है। इन चारों स्तंभों पर ही किसी भी भाषा का अस्तित्व निर्भर करता है। भाषा का जुड़ाव हमारी संस्कृति एवं अस्मिता से होता है। भाषा संप्रेषण का माध्यम होती है जिसके द्वारा हम अपने विचारों और भावों का आदान–प्रदान करते हैं। भाषा जब तक व्यवहारिक रूप प्राप्त नहीं करती, तब तक वह जीवन्त नहीं बनती। हिन्दी भाषा में संस्कृत, अरबी–फारसी, पुर्तगाली, डच, तुर्की, अंग्रेजी आदि तमाम भाषाओं के शब्दों की भरमार है। इन सभी भाषाओं के शब्द हमारी हिन्दी भाषा में घुल–मिल गए हैं, अतः आज हिन्दी भाषा से इनको अलग कर पाना अत्यंत कठिन कार्य है, इसीलिए भाषा को 'बहता नीर' कहा गया है, क्योंकि बहने अर्थात् अधिकाधिक व्यवहारिक प्रयोग से ही भाषा में समृद्धता आती है। आज आवश्यकता है इन भारतीय भाषाओं को आधुनिकीकृत बनाने की। भारतीय भाषाओं में समय, परिवेश परिस्थिति के कारण जो भी बदलाव आ रहे हैं, उन भाषा–परिवर्तनों को भी तहे–दिल से स्वीकारना होगा, तभी भारतीय भाषाएँ समृद्धता की ओर अग्रसर होंगी। भाषा को विकसित करने हेतु हमें कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को समझना होगा जिसमें सर्वप्रथम पश्चिमी भाषा अंग्रेजी के अंधानुकरण का मोह त्यागना होगा। आज इस धारणा को सिरे से खारिज करना होगा कि हमें अंग्रेजी माध्यम से ही रोजगार में सब कुछ प्राप्त होगा। हिन्दी भाषा को स्थापित करने हेतु हमें अंग्रेजी का वर्चस्व कम करना होगा। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम अंग्रेजी विरोधी बन जाएँ, अपितु हिन्दी के साथ तालमेल बिठाते हुए अंग्रेजी का प्रयोग करें, अंग्रेजी को हावी न होने दें। हमें अपनी हीन–भावना को दुरुस्त करना होगा। अंग्रेजी हमारी विवशता है, धीरे–धीरे इस उपनिवेशवादी प्रभाव से हम सबको मुक्त होना पड़ेगा। वैसे भी हिन्दी की शब्द व ज्ञान–क्षमता के समक्ष अंग्रेजी तुच्छ है, इसलिए अपनी भाषा को ही महत्व देना होगा। हमें अंग्रेजी को जबरन लादने की आवश्यकता नहीं है। हमारा युवा स्वप्न हिन्दी में देखता है और उसको बयाँ अंग्रेजी में करता है, उसे अपनी अभिव्यक्ति अपनी भाषा में ही करनी होगा। आज इंडिया, ओके, थैंक्स, प्लीज, सॉरी आदि चंद शब्दों के मकड़जाल में हम सब उलझे रहते हैं। इस उलझन को छोड़कर इन शब्दों के हिन्दी प्रयोगों को हमें अपनाना होगा। हर त्यौहार को 'हैप्पी' शब्द से नवाजना छोड़कर मंगलकामनाएँ, शुभकामनाओं का चलन सीखना होगा। संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी के साथ–साथ अन्य इक्कीस (21) भाषाओं के दर्जे को भी हमें स्वीकारना होगा। बहुभाषी देश होने के नाते सभी प्रांतीय भाषाएँ हिन्दी को समृद्ध बनाती है। शिक्षा में मातृभाषा को शुमार करने से भाषाएँ दीर्घायु होंगी और आज इन भाषाओं के मृत होने की जो समस्या उत्पन्न हो रही है, उससे भी हमें निजात

 ISSN 2231-0584

मिलेगी। एक भाषा के मरण का अभिप्राय है उस भाषा की जाति, संस्कृति, समुदाय सबका मरण। भाषा–मरण के बचाव हेतु हमें भाषा की व्यवहारिकता पर बल देना होगा, उसे सहेजना होगा। महज हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा, हिन्दी माह, विश्व हिन्दी दिवस, अंतर्राष्ट्रीय भाषा दिवस मनाने से भाषा केवल भाषणबाजी का ढोंग बनकर रह जाती है। मेरा मानना है कि हिन्दी के विकास की इन सभी बाधाओं को दूर कर हम राजभाषा हिन्दी की भाषायी वैज्ञानिकता और अन्य भारतीय भाषाओं और बोलियों का स्वभाविक मेल स्थापित कर सकते हैं।

आज हिन्दी भाषा का ग्राफ हम देखें तो इसमें नव–साहित्य का भरपूर मात्रा में सृजन हो रहा है। आजकल अन्य भाषाओं मसलन– मराठी, गढ़वाली आदि भाषाओं में भी कवि सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। वर्तमान में भाषा भौगोलिक से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रूपाकर लेती हुई अन्य अनुशासनों से भी जुड़ाव स्थापित कर रही है। भाषा का सर्वाधिक प्रयोग आज बाजार में हो रहा है। कम्युनिकेशन गुरु 'नैंसी ड्यूरेट' का भी मानना है कि भाषा का सबसे ज्यादा दोहन समाज में नहीं बाजार में होता है। वास्तव में यह बिल्कुल सही तथ्य है। सूचना क्रांति के दौर में भाषा एक उपकरण की तरह प्रयुक्त हो रही है। भाषा और संस्कृति को नवरूप में परिभाषित किया जा रहा है। रोजमर्रा की जिंदगी में 'भाषा–टैकनीक अपडेट हो रही है। सोशल मीडिया मंच पर भाषा 'यूजर–फ्रेंडली' बन रही है। ग्लोबलाइजेशन के दौर में हम सभी एक उपभोक्ता की शक्ल अख्तियार कर रहे हैं। हिन्दी–भाषा अब नए सरोकारों से जुड़कर नव–रूपाकार और नई संभावनाओं के द्वार खोल रही है। इंटरनेट पर नए वर्चुअल प्लेटफॉर्म हिन्दी में उपलब्ध हो रहे हैं। 'फेस–बुकिया' संस्कृति में गुणवतापूर्ण हिन्दी साहित्य को 'पेड–सब्सिक्रिप्शन' के रूप में भी पसंद किया जा रहा है। इंटरनेट पर यूट्यूब चैनल पर सामान्य–सा व्यक्ति या स्त्री अपने तरीके से अपनी सोच वाली विधा–अभिव्यक्ति की प्रस्तुति द्वारा एक बहुत बड़ा पाठक–वर्ग तैयार कर रहे हैं और बदले में लाखों लाइक, इमोजी और शेयर वाले तोहफे प्राप्त कर रहे हैं। इस मंच की प्रस्तुति द्वारा यह साबित हो रहा है कि हिन्दी वर्तमान समय की सभी आवश्यकताओं को सफलतापूर्वक पूरा करने में सक्षम है। नए–नए विकल्पों से लबरेज हिन्दी भाषा में अब व्यवसायिक और रोजगारोन्मुख अवसर आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं। आलम यह है कि वर्तमान परिदृश्य में पूरी दुनिया में लगभग अस्सी करोड़ लोग ऐसे हैं जो हिन्दी भाषा बोल तथा समझ सकते हैं और लगभग चालीस करोड़ मध्यवर्गीय लोग बाजार में उपभोक्ता के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहे हैं। लिहाजा हम मान सकते हैं कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक नव हिन्दी–समाज उभर रहा है जो कि नव–भाषा और संस्कृति से लबरेज है।

आधुनिकीकृत हिन्दी का जुड़ाव आज व्यक्ति के उदर–पोषण से है। अब भाषा कूप फल से निकलकर व्यापक रोजगार के अवसर प्रदान कर रही है। पुरानी हिन्दी का संबंध भाव और कल्पना आधारित था। आज की हिन्दी का संबंध नए माध्यमों, नए मंचों, नए

 ISSN 2231-0584

विकल्पों के जुड़ाव से है। दरअसल अगर गौर से देखा जाए तो हिन्दी भाषा में रोजगार संबंधी अनेक आयाम दिखलाई पड़ते हैं। 'भाषा अध्यापक' के रूप में हिन्दी शिक्षण की शुरुआत प्राइमरी, मिडिल और उच्च शिक्षा के विभिन्न अनुशासनों के तहत् की जा सकती है। भाषा–शिक्षण की अलग टैकनीक उपकरण और लैब, ए.वी. ऐड्स, उच्चारण, पठन–पाठन व लेखन आदि के द्वारा आजीविका अर्जन किया जा सकता है। बी.ए. बी.एड,, एम.ए. बी.एड, एम.एड., एम.फिल. पी.एच.डी., नेट परीक्षा पास उपाधि प्राप्त व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर उपरोक्त किसी भी स्तर पर सरकारी, निजी और विश्वविद्यालय के कॉलेजों में शिक्षण–कार्य कर सकता है। इसी शृंखला में विदेशी छात्र–छात्राओं को, जो विदेशों से भारत में हिन्दी सीखने हेतु आते हैं, उनको भी उनकी स्व–भाषा, अंग्रेजी भाषा, ए. वी. ऐड्स, पिक्टोरियल टैकनीक नए–नए शब्दों, छोटे–छोटे वाक्य प्रयोगों द्वारा हम धीरे–धीरे हिन्दी भाषा से रुबरू कराते हुए रोचक तरीके से भाषा–शिक्षा दे सकते हैं।

'भाषा–विज्ञान' कोर्स में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, इग्नू तथा अन्य मान्यता–प्राप्त संस्थानों द्वारा डिग्री, डिप्लोमा, सर्टिफिकेट प्राप्त कर भाषा–विज्ञान का शिक्षण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आजकल अपना कोचिंग सेंटर भी खोल सकते हैं और अच्छा खासा पैसा अर्जित कर सकते हैं। ऑनलाइन–शिक्षण भी किया जा सकता है। मीडिया में भी बहुत सारे व्यापक क्षेत्र हैं जहाँ दिल्ली विश्वविद्यालय, माखनलाल चतुर्वेदी विश्व विद्यालय, सागर विश्वविद्यालय, आई.आईएम.सी., इग्नू आदि से लघु कोर्स करके या शोध–उपाधि प्राप्त कर अपने चुनिंदा फील्ड में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। मसलन, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया में रिर्पोटर, समाचार लेखन, फीचर लेखन, सृजनात्मक लेखन, संवाद–लेखन, पटकथा–लेखन, विज्ञापन–लेखन, जिंगल–लेखन, धारावाहिक–लेखन, टेलीफिल्म–निर्माण, टेली–ड्रामा का निर्माण तथा अभिनय भी कर सकते हैं। बॉलीवुड में भी अपना भाग्य चमका सकते हैं।

दोनों माध्यमों में काउंसिलिंग, रेसिपी बुक लेखन, इंटीरियर डिजाइनिंग, ब्यूटीफिकेशन्स संबंधी लेखन एवं शो द्वारा भी अर्जन किया जा सकता है। साक्षात्कार–कौशल, वाद–विवाद कला, दूरदर्शन स्क्रिप्ट–लेखन, गायन, गीत–संगीत निर्माण, संगोष्ठी–संयोजन विभिन्न भाषाओं की शब्दावली–निर्माण, पुस्तक साज–सज्जा, प्रकाशन, पैकेजिंग आदि में रोजगार संबंधी अनेकों अवसरों का आज आगाज हो चुका है।

हिन्दी–साहित्य की विभिन्न–विधाओं में कथा–लेखन, नाटक, उपन्यास–लेखन के साथ–साथ समीक्षा–लेखक भी बन सकते हैं। आलोचना विज्ञान तथा समाज भाषा–विज्ञान का अध्यापन भी कर सकते हैं। कार्यालयी हिन्दी के तहत सरकारी तथा निजी बैंकों में हिन्दी ऑफिसर, हिन्दी अनुवादक के पद पर भी कार्य कर सकते हैं। हिन्दी–भाषा में रिर्पोट लेखक, प्रतिवेदन लेखक, प्रवासी लेखक के अवसर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। अनुवाद में कोश–निर्माण की दृष्टि से मेडिकल, इंजीनियरिंग, आर्किटेक्ट, ड्राफ़्टमैन, आयुर्वेद, फार्मेसी, विधि, गणित, खगोल–विज्ञान, मनोविज्ञान, पदार्थ–विज्ञान, नृविज्ञान,

 ISSN 2231-0584

मौसम–विज्ञान, युद्धशास्त्र, भौतिकी, रसायन, भूविज्ञान, जीवाश्म–विज्ञान, मानव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि–विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी, कृषि–विज्ञान, गृह–विज्ञान, व्यवसाय–पद्धति, शिल्प–उद्योग, औद्योगिक–निर्माण, भवन–निर्माण, रासायनिक शिल्प, सामान्य विज्ञान–ज्ञान के इन तमाम अनुशासनों में पारिभाषिक–शब्दावली और कोश–निर्माण कार्य किया जा सकता है। पुरा–रचनाओं, पांडुलिपियों पर शोधकार्य की संभावनाएँ भी विद्यमान हैं। खेल–विज्ञान भी इस संभावना से अछूता नहीं है। दरअसल उपरोक्त सभी संभावनाओं के अतिरिक्त आजकल कम्प्यूटर एनीमेशन, ग्रीटिंग–कार्ड निर्माण, पोस्टर–निर्माण, बैनर, होर्डिंग–निर्माण में अपनी रुचि व विषयानुकूल रोजगार के अवसरों को तलाशा जा सकता है।

बहरहाल, अभी भी अनेक ऐसे क्षेत्र छूट गए हैं जहाँ हिन्दी में प्रयोगमूलक, व्यवहारमूलक, उद्योगमूलक, व्यापारमूलक, व्यवसायमूलक, प्रशासनमूलक तथा रोजगारमूलक अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं। आवश्यकता है शिद्दत के साथ इन अवसरों की पड़ताल कर उन्हें पहचानने की। हम सभी को पूर्वाग्रहों को त्यागकर आत्मविश्वास से लबरेज हो हिन्दी को अपनाना है। वर्तमान हिन्दी–भाषा रोजगार–संभावनाओं के नए द्वार खोल रही है। हमें आगे बढ़कर उन द्वारों से निकलने वाले मार्गों पर चलकर अपने पंसदीदा, गुणवत्तापूर्ण व्यवसाय को अपनाना है।

संदर्भ–सूची

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. सुधीन्द्र कुमार
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – बच्चन सिंह
4. भाषा–अनुप्रयोग – प्रो. डॉ. पूरनचंद टंडन
5. हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' अखबार
6. हिन्दी दैनिक 'जनसत्ता' अखबार
7. भाषा संबंधी ऑनलाइन वेबीनार–सामग्री
8. भाषा संबंधी एफ.डी.वी. सामग्री

 ISSN 2231-0584

भारतेन्दु की भाषा–नीति

डॉ. श्रीनिवास त्यागी
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
गार्गी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)
मोबाइल : 9868044931
ईमेल : srinivastyagi@gmail.com

भाषा मनुष्य के मनोभावों,विचारों और चिंतन की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है,बिना भाषा के मानव समाज की कल्पना करना असंभव है।सभ्यता के विकास में मनुष्य के पास जो कुछ भी सर्वोत्तम उपलब्धियां हैं–उनमें से एक भाषा भी है। किसी राष्ट्र के लिए भाषा की महत्ता उसी प्रकार से है,जैसे शरीर के लिए प्राणवायु और आत्मा की। बिना भाषा के किसी राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।आज दुनिया में जितने भी सक्षम और सशक्त राष्ट्र हैं,उन सब की भाषा नीति एकदम स्पष्ट है।लेकिन हमारे देश के समक्ष भाषा नीति को लेकर आज भी समस्या बनी हुई है।भाषा नीति को लेकर आजादी से लेकर अब तक कोई स्पष्टता हमें राष्ट्रीय स्तर पर नहीं दिखाई देती है और देश के राजकाज की भाषा, प्रशासन की भाषा,सत्ता की भाषा,संसद तथा सर्वोच्च न्यायालय की भाषा आज भी अंग्रेजी बनी हुई है।

इससे दुखद एक स्वतंत्र राष्ट्र के लिए और क्या हो सकता है?हालांकि यह समस्या हमारे देश में हमेशा नहीं रही है।जैसाकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने एकदम स्पष्ट लिखा है कि "मैं आपको स्मरण कराना चाहता हूं कि हमारे इस देश ने हजारों वर्ष पहले से भाषा की समस्या हल कर ली थी।हिमालय से सेतुबंध तक सारे भारतवर्ष के धर्म,दर्शन,विज्ञान,चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है।यह भाषा संस्कृत थी।"1 यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें लंबे समय तक गुलामी के दौर से गुजरना पड़ा है,उससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह है कि आजादी के बाद भी राष्ट्र के स्तर पर हमारी भाषा नीति अंग्रेजी की गुलामी का शिकार है।डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने इस दुर्गति का वर्णन करते हुए लिखा है कि "गलत हिंदी अंग्रेज साहब बोलते थे अधिकतर अज्ञानबश,पर हमारे देश में उनके उत्तराधिकारी गलत हिंदी लिखते–बोलते हैं प्रायःजान–बूझकर।सही हिंदी लिखना–बोलना जैसे उनके लिए सामाजिक मर्यादा में नीचे उतरने का लक्षण है।"2

आज देश में हालत यह है कि "अंग्रेजी के समर्थकों पुरस्कर्ताओं–जिनमें बहुराष्ट्रीय कंपनियां शामिल हैं–का यत्न है कि अंग्रेजी हिंदी का एक क्रियोल अर्थात संकर रूप बने जो बाजार की भाषा के रूप में सारे देश में फैल जाए।इसके लिए तरह–तरह के प्रसार माध्यम

 ISSN 2231-0584

और विज्ञापन निमित्त बनें और इस तरह भारत तथा अन्य विकसित देश भी एक नए तरह के बाजार–उपनिवेश के अंतर्गत आ जाएं।"3 इतने बड़े भाषिक संकट के बावजूद भी देश की भाषिक नीति को लेकर अभी भी हमारे देश में कोई स्पष्टता नहीं है।भारतेंदु की भाषिक दृष्टि में हमें सजगता एवं स्पष्ट दिखाई पड़ती है जिसके फलस्वरूप ही आगे चलकर आजादी के आंदोलन में अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था।लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा आज तक नहीं हो पाया है,इसके कई कारण रहे हैं।उन कारणों का विवेचन करना यहां उचित नहीं है अपितु मेरी कोशिश यह है कि मैं भारतेंदु के भाषिक दृष्टिकोण को आपके समक्ष रखूं।

1857 में हुए प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारतेंदु लगभग सात साल के थे।प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन से पहले ही इस देश में अंग्रेजों ने बांटो और राज करो की कूटनीति का उपयोग करना शुरू कर दिया था।इसका उपयोग करके ही अंग्रेजों ने पूरे देश पर कब्जा कर लिया था।इस कूटनीति के फलस्वरुप हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र में उर्दू–हिंदी का विवाद खड़ा किया गया।इस विवाद ने हिंदी और उर्दू के समर्थकों को खेमों में बांट दिया,भाषा के नाम पर एक दूसरे को लड़ा कर देश की एकता और अखंडता को कमजोर करने का भरपूर प्रयास अंग्रेजों ने इस नीति के माध्यम से किया–जिसकी अंतिम परिणति हम देश में से एक नए देश के निर्माण में अर्थात पाकिस्तान के रूप में देखते हैं।

अंग्रेजों ने भाषा के व्यावहारिक विवाद को जान–बूझकर धर्म से जोड़कर भाषिक विवाद को धार्मिक अस्मिता एवं अस्तित्व का सवाल बना कर प्रस्तुत किया।कुतर्क दिया जाने लगा कि जो हिंदी की पक्षधरता में खड़ा है वह हिंदू है और जो उर्दू के लिए लड़ रहा है वह मुसलमान है।ऐसे माहौल में भारतेंदु ने हिंदी के पक्ष में अपने विचार प्रकट किए तो उन पर भी सांप्रदायिक होने के आरोप जान–बूझकर लगाए गए क्योंकि भारतेंदु के पूरे चिंतन और लेखन में कहीं भी हमें सांप्रदायिकता की बू नहीं आती है।अपितु भारतेंदु एक सच्चे राष्ट्रभक्त और राष्ट्र के लिए सोचने समझने और जीवन यापन करने वाले विचारक और साहित्यकार थे जो देश के हित को ध्यान में रखकर ही अपना मंतव्य और विचार व्यक्त करते हैं।इस हिंदी–उर्दू के विवाद को समझे बिना हम भारतेंदु की भाषा नीति को नहीं समझ सकते हैं।

1836 तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के राज–काज की भाषा फारसी ही थी,जो मुगल काल से चली आ रही थी।अंग्रेजों ने जान–बूझकर 1837 में संयुक्त और मध्य प्रांत में फारसी के स्थान पर उर्दू को थोप दिया।इसका विरोध और समर्थन करने वाले लोग आपस में लड़ने–झगड़ने लगे।सर सैयद अहमद उर्दू के पक्षधर थे दूसरी ओर राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद हिंदी के पक्ष में थे,लेकिन धीरे–धीरे आगे चलकर सितारेहिंद ने अरबी–फारसी के आमफहम शब्दों को अपनाने के साथ–साथ अपना रुख भी उर्दू की ओर कर लिया।सितारेहिंद यहां तक लिख देते हैं कि "उर्दू अब हमारी मातृभाषा होती जा रही है और यह पश्चिमोत्तर प्रांतों में कम या ज्यादा, अच्छी या बुरी,सब के द्वारा बोली जाती है।"4 जब

 ISSN 2231-0584

सितारेहिंद की सोच भाषा को लेकर स्पष्ट हुई तो उनकी इस उर्दूपरस्ती और सरकारपरस्ती का विरोध राजा लक्ष्मण सिंह ने खुलकर किया,जिससे उर्दू–हिंदी का विवाद और बढ़ गया।राजा लक्ष्मण सिंह कहते हैं कि "हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी–न्यारी हैं।हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहां के मुसलमान।"5 इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू–हिंदी के इस बढ़ते विवाद के दौर में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषा नीति में हिंदी की पक्षधरता निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भमिका निभाती है, इस कारण से ही कुछ विद्वान भारतेंदु को सांप्रदायिकता की सूली पर चढ़ाना चाहते हैं।

भारतेन्दु को सांप्रदायिक सिद्ध करने के लिए जो तर्क कुतर्क गढ़े गए हैं,उनका विवेचन करते हुए रूपा गुप्ता लिखती हैं कि "भारतेंदु एवं बंकिमचंद्र पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाने के लिए जो ठोस कारण उपलब्ध हैं,उनमें निम्न कारण प्रमुख हैं–1.भारतेंदु एवं बंकिमचंद्र द्वारा आक्रमणकारी मुसलमानों के अत्याचारों का उल्लेख 2.दोनों के यहां मुस्लिमों द्वारा हिंदू धर्म के विनाश के प्रयासों की निंदा जैसे–गो–भक्षण,बलपूर्वक धर्मांतरण की निंदा।3.भारतेंदु द्वारा उर्दू के स्थान पर हिंदी आंदोलन का समर्थन किया जाना 4. भारतेंदु द्वारा गो–रक्षा आंदोलन चलाया जाना।"6 ऊपर गिनाए गए सभी आरोप बेबुनियाद हैं क्योंकि भारतेंदु के समय तक देश में सांप्रदायिकता की भावना का उदय नहीं हुआ था।लेकिन अंग्रेज धीरे–धीरे फूट डालो और राज करो की नीति को 1857 के बाद शासन की हर नीति में लागू करने की कोशिश कर रहे थे।

इसी कारण से "1885 से 1905 तक कांग्रेस अपनी एक भी मांग मंजूर नहीं करा सकी, जबकि मुस्लिम लीग ने 1906 में वायसराय के समक्ष अपनी सांप्रदायिक मांग रखी ही थी कि उन्हें मान लिया गया।इसी तरह 1932 में अंग्रेजों ने जिसे 'कम्युनल अवार्ड' कहा जाता है,उसके माध्यम से उसकी तमाम मुख्य सांप्रदायिक मांगे मंजूर कर ली।द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मुस्लिम सांप्रदायिकतावादियों को पूरी छूट दी गई कि वे अपनी राजनीतिक जमीन मजबूत करें।"7 लेकिन हमारे देश में "सांप्रदायिकता 1939 के बाद और खास तौर से1945–47 के दौरान जनता के बीच अपनी जड़ें तभी जमा पाई,जब उसने यह या वह 'धर्म खतरे में है' का उत्तेजक नारा लगाना शुरू किया।"8 सच तो यह है कि भारतेंदु के समय में सांप्रदायिकता का सवाल ही नहीं था और न कभी भारतेंदु ने यह नारा लगाया कि हिंदू धर्म खतरे में है।भारतेंदु ने देशवासियों को खतरे में देखा,उन्हें पता था कि देश के अधिकांश लोग कोट कचहरी की भाषा को समझ ही नहीं पाते हैं।लेकिन भारतेंदु की भाषा नीति में हम देखते हैं कि वे दोनों प्रकार के विवादों से बचते हैं।भारतेन्दु सितारे हिंद की उर्दू परस्त भाषा और लक्ष्मण सिंह की तत्सम शब्दों से लदी संस्कृत प्रधान भाषा के बीच बुद्ध की तरह मध्यम मार्ग का अनुसरण कर भाषिक समन्वय दोनों अतिवादियों के बीच करते हैं।भारतेंदु एक ऐसी आदर्श भाषा को जन समुदाय के सामने रखते हैं,जिसमें प्रवाहशीलता हो,लचीलापन हो,जो सर्वजनग्राह्य और सर्वजन बोध्य हो।ऐसी भाषा भारतेंदु ने अपनाई जो वास्तव में देश की आवश्यकता की पूर्ति कर सके।लेकिन "फिर भी हम यह नहीं कह सकते हैं कि भारतेंदु का 'निज भाषा' के बारे में जो सपना था,वह साकार हुआ है।हमारे देश में राज–काज में

 ISSN 2231-0584

और शिक्षा में आज भी जिस प्रकार अंग्रेजी का बोलबाला है,उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि भारतेन्दु जैसा चाहते थे वैसा नहीं हुआ।"9 क्योंकि "भारतेन्दु की दृष्टि में निज भाषा केवल साहित्य का ही माध्यम नहीं थी।वह चाहते थे कि निज भाषा राज–काज की भाषा बने,शिल्पो के विवरण की भाषा बने,विज्ञान की भाषा बने।"10 भारतेंदुकालीन समाज के उच्च वर्ग की मानसिकता भी लगभग हमारे आज के उच्च वर्ग जैसी ही थी,जिसका सोचना था कि हिंदी अभी ज्ञान–विज्ञान की भाषा बनने में सक्षम नहीं है।दुखद पहलू यह है कि आजादी के लगभग 75 सालों बाद भी इस वर्ग की मानसिकता में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है।

भारतेंदु की भाषा नीति की महत्वपूर्ण बात यह है कि वे हिंदी भाषा के उत्थान और विकास को देश के विकास से जोड़कर देखते सोचते हैं,क्योंकि देश की अधिकांश जनता हिंदी भाषा को बोलती समझती तथा व्यवहार में लाती थी।भारतेंदु के लिए हिंदी भाषा की पक्षधरता जनता की भाषा की पक्षधरता का सवाल था,न कि उनकी सांप्रदायिक मानसिकता या सोच का दुष्परिणाम।"भारतेंदु हिंदी के पक्षधर थे,पर उन्हें उर्दू से नफरत नहीं थी।उन्होंने उर्दू में भी लिखा।पता चलता है कि वह उर्दू में 'कासिद' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालना चाहते थे।हिंदी–उर्दू की परस्पर स्थिति को भली–भांति समझते थे।"11 भारतेंदु दोनों भाषाओं के अंतर की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि "हिंदी और उर्दू में अंतर क्या है? हम बिना संकोच के उत्तर देते हैं कि भाषाओं में कुछ अंतर नहीं है,क्योंकि व्याकरण की विभक्तियों और नियम दोनों के एक हैं,पर इतना है कि हिंदी में जिसके लिए हिंदी शब्द नहीं मिलता,वहाँ संस्कृत शब्द काम में आते हैं और उर्दू में सहज हिंदी शब्द नहीं मिलते,वहां तो अवश्य ही अरबी और फारसी के शब्द लिखे जाते हैं,यही दोनों में अंतर है।"12

भारतेंदु ने अपने 'हिंदी भाषा' नामक लेख में भाषा के तीन रूपों की चर्चा करते हुए लिखा है कि "भाषाओं के तीन विभाग होते हैं यथा घर में बोलने की भाषा,कविता की भाषा और लिखने की भाषा।"13 इस भाषिक वर्गीकरण के बाद भारतेन्दु ने भाषा विवाद की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा झगड़ा है,कोई कहता है कि उर्दू शब्द मिलने चाहिए, कोई कहता है कि संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी–अपनी रूचि के अनुसार सब लिखते हैं और इसके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं रह सकती है।"14 भारतेंदु इस लेख में 12 प्रकार की भाषाओं के उदाहरण देते हैं जो इस प्रकार हैं–"1–जिसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं 2–जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं 3–जो शुद्ध हिंदी है 4–जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नाम नहीं है 5–जिसमें फारसी शब्द विशेष हैं 6–जिसमें अंग्रेजी शब्द हिंदी के ही मिल गए हैं 7–जिसमें पुरबियों की बोली या काशी की देश भाषा है 8–जो काशी के अर्ध–शिक्षित लोग बोलते हैं 9–दक्षिण के लोगों की हिंदी 10–बंगालियों की हिंदी 11–अंग्रेजों की हिंदी 12 रेलवे की भाषा।"15

इन बारह भाषाओं में से भारतेन्दु दो और तीन के पक्ष में हैं।वे लिखते हैं कि "हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वही लिखनी चाहिए,पर

यहां मुझसे कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूंगा कि नंबर दो और तीन लिखने योग्य है।"16 भारतेंदु ने अपनी गद्य रचनाओं में इन्हीं दोनों भाषा शैलियों के मिले–जुले रूप का उपयोग किया है।भारतेंदु के भाषिक योगदान का विवेचन करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक लिखा है कि भारतेंदु ने "गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता,मधुर और स्वच्छ रूप दिया।"17 जबकि इनके बरक्स "मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए थी,लल्लूलाल में ब्रजभाषापन और सदल मिश्र में पूर्वीपन था। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य विन्यास तक में घुसा था,राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था।भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।"18 भारतेंदु ने 'कालचक्र' में लिखा है कि हिंदी नए चाल में ढली–1873,इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक लिखा है कि"हिंदी फिर नए चाल(या कि नई चाल)में ढल रही है,पर इस बार वह हिंदी भाषा समाज के लिए उत्साह नहीं चिंता का विषय है।इस ढलाई का आधार वह रूप है जिसे भारतेंदु ने अपनी सूची में 11वे स्थान पर रखा था–'अंग्रेजी की हिंदी' अर्थात अंग्रेजी मुहाविरे में ढली हिंदी,जैसी भारतेंदु के समय अंग्रेज/एंग्लो–इंडियन अर्थात साहब लोग बोलते थे।"19 यह दुखद स्थिति निरंतर जारी है,जबकि भारतेंदु बलिया वाले भाषण में भारत की उन्नति का मूल मंत्र देते हुए कहते हैं कि "परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो,अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।"20

भारतेंदु की भाषा नीति का मूल्यांकन करते हुए डॉ.रामविलास शर्मा एकदम सही लिखते हैं कि "भारतेंदु की भाषा नीति अंग्रेजी राज्य की नीति के विरुद्ध ही न थी, वह पंडितों मौलवियों की नीति के विरुद्ध भी थी,जो जनसाधारण की भाषा को हिकारत की निगाह से देखते थे।"21 जनसाधारण की भाषा के प्रति अपनी पक्षधरता के कारण ही वे उर्दू का विरोध करते हुए लिखते हैं कि "Urdu is the language of the court] a few people are favourably impressed towards it---- this is the only country where the court language is a language which is neither the mother tongue of the ruler nor of the subject"22 (उर्दू को राजभाषा बनाए जाने के पक्ष में बहुत कम लोग हैं–भारत एकमात्र देश है जहां राजभाषा न मातृभाषा है और न ही शासक वर्ग की भाषा)इतना ही नहीं भारतेंदु सर सैयद अहमद के द्वारा हिंदी को गंवारू भाषा कहे जाने पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लिखते हैं कि–"I am sorry to learn that Honourable S Ahmed Khan says that the Urdu is the language of the gentry and Hindi that of the vulgar"23 (मुझे खेद है कि सम्माननीय सर सैयद अहमद खान ने उर्दू को एक सभ्य और हिंदी को गँवारू भाषा कहा है) भारतेंदु का यह विरोध एकदम स्वाभाविक है।

"भारतेंदु की भाषा नीति जहां साम्राज्य विरोधी और राष्ट्रीय थी,वहां वह पुरोहित मौलवी विरोधी और जनवादी भी थी।"24 उनकी भाषा नीति में जनसाधारण की आशाएं,आकांक्षाएं एवं अपेक्षाएं अभिव्यक्ति पाती हैं।उनकी भाषा–नीति पर सांप्रदायिकता की मोहर लगाना एकदम अतार्किक और अनुचित है।डॉ.नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो हम यह कह सकते हैं कि भारतेन्दु ने "उर्दू–हिंदी दोनों में लिखा जिसके लिए आजकल बहुत

भाईचारा लोग कहते हैं,वह पहला आदमी था जिसमें उर्दू और हिंदी दोनों को लेकर के झगड़ा नहीं था।उर्दू में लेख लिखे हैं 'खुशी' नाम का एक लेख जो है आप देखें तो पूरी की पूरी वह उस उर्दू में है,जिस उर्दू में प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ का भाषण लिखा था।"25 सच यह है कि भारतेंदु की भाषा नीति 'निज भाषा उन्नति अहै,सब उन्नति को मूल।बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।।'इस मूलमंत्र के साथ भारतेन्दु की उपस्थिति हिन्दी जगत में निज भाषा और साहित्य के प्रति एक नया भाव भर देती है।भारतेन्दु ने जनमानस को यह समझाने का प्रयास किया कि "सबसे पहले उन्हें अपनी भाषा के लिए लड़ना था।यह उस युग की राष्ट्रीय मांग थी और भाषा की यह लड़ाई देश को गुलाम बनाये रखने के लिए अंग्रेजी राज द्वारा चलाई जा रही साजिश के विरूद्ध लड़ाई का एक मोर्चा था।"26 हम कह सकते हैं कि "भाषा के प्रति भारतेन्दु का एक सचेत और निश्चित दृष्टिकोण था जो न केवल सामाजिक उद्देश्यों से प्रभावित था बल्कि उसके राजनीतिक निहितार्थ भी थे।"27 इसी भाषा नीति को अपनाकर आज भी राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।भारतेन्दु ने जो भाषा–नीति हमारे सामने रखी,उसको आजतक हम उपेक्षित करते आ रहे हैं और न जाने कब निज भाषा में उन्नति के उनके स्वप्न को हम साकार कर पाएंगे।आज सभी सवालों को राजनीति के चश्में से देखने के हम अभ्यस्त हो गए हैं और हमारे ज्यादातर राष्ट्रीय हित गौण हो गए हैं।उन्हीं में से एक सवाल देश की भाषा–नीति का है,जिसे हमने आज तक उपेक्षित छोड़ रखा है।

संदर्भ–सूची

1– भाषा साहित्य और देश–हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण–1998, पृष्ठ–9.

2– सम्मेलन पत्रिका (शोध–त्रैमासिक) भारतेंदु अंक–भाग 87,संख्या 2–4–संपादक विभूति मिश्र–हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,सन 2001,पृष्ठ–99

3– वही,पृष्ठ–99

4– राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद प्रतिनिधि संकलन–संपादक–वीर भारत तलवार,नेशनल बुक ट्रस्ट,प्रथम संस्करण 2004,पृष्ठ–22

5– हिंदी साहित्य का इतिहास–रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी–संवत 2056 वि., पृष्ठ–241

6– साहित्य और विचारधाराःभारतेंदु एवं बंकिमचंद्र–रूपा गुप्ता, यश पब्लिकेशंस–दिल्ली, प्रथम संस्करण–पृ–285

7– भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चंद्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2001, पृ.–329

8– वही, पृ.–332

9– भारतेंदु हरिश्चंद्र (प्रकाशन विभाग)–तृतीय संस्करण 1999, पृ.–43

10– वही, पृ.–43

11– वही, पृ.–44

12– कविवचन सुधा–6 सितंबर 1873

 ISSN 2231-0584

13– भारतेन्दु समग्र–संपादक–हेमंत शर्मा, पृ.–10 48
14– वही, पृ.–1050
15– भारतेंदु हरिश्चंद्र–प्रतिनिधि संकलन–संपादक कमला प्रसाद, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2014, पृ.– 145–147
16– भारतेन्दु समग्र–संपादक–हेमंत शर्मा, पृ.–1051
17– हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.–246
18– वही, पृ.–246
19– सम्मेलन पत्रिका(शोध–त्रैमासिक)भारतेंदु अंक–भाग 87, संख्या 2–4–पृ–98–99
20– भारतेंदु हरिश्चंद्र–प्रतिनिधि संकलन–संपादक कमला प्रसाद, पृ–108
21– भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं–रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन–1989, पृ–92
22– भारतेन्दु समग्र–संपादक–हेमंत शर्मा, पृ.– 1057
23– वही, पृ–1056
24– भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं–रामविलास शर्मा, पृ–92
25– सम्मेलन पत्रिका(शोध–त्रैमासिक)भारतेंदु अंक–भाग 87,संख्या 2–4–पृ–108
26– साहित्य चिंतन–डॉ.महेंद्र पाल शर्मा–संजय प्रकाशन–दिल्ली,प्र.सं–2003. पृष्ठ–3.
27– साहित्य चिंतन–डॉ.महेंद्र पाल शर्मा–संजय प्रकाशन–दिल्ली,प्र.सं–2003. पृष्ठ–1 .

 ISSN 2231-0584

विज्ञापन–उपभोक्ता संस्कृति और बदलता भारतीय परिदृश्य

डॉ.सुषमा सहरावत
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कमला नेहरु कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9891483516
ईमेल : sushma241@gmail-com

"साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाये,मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाये" वाली भारतीय संस्कृति अब गुज़रे ज़माने की बात लगती है क्योंकि भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में अधिकाधिक उपभोग की प्रवृति ने मनुष्य को अपने अधीन कर लिया है। परिणामतः उपभोग अब आवश्यकता से आगे बढ़कर 'शो–ऑफ' का पर्याय बन चुका है। चार्ली चौपलिन ने कहा था – सबसे दुखद चीज़ जिसकी मैं कल्पना कर सकता हूँ वह है विलासिता का आदि होना।"[1] आज उनकी कही बात कल्पना न रहकर सत्य सिद्ध हो रही है।आज उपभोक्तावादी संस्कृति मानव जीवन पर इस कदर हावी हो गई है कि वह दिग्भ्रमित होकर इसका गुलाम हो चला है।तीन–चार दशक पहले कौन सोच सकता था कि मानव जीवन में उपभोग इस तरह हावी हो जाएगा कि वह एक संस्कृति सरीखा विशाल रूप धारण कर लेगा। संस्कृति क्या है ? संस्कृति उन समस्त गुणों का समग्रता में नाम है जो हमारे सोचने,समझने तथा प्रत्येक आचार–विचार में अन्तर्निहित होता है।यह भी कि "संस्कृति कुछ ऐसी चीज़ का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अंतर्राष्ट्रीय है।"[2] इस दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि आज सब बदल गया है। आज मानव का प्रत्येक आचार–व्यवहार अर्थ केन्द्रित हो गया है,कम से कम समय में अधिकाधिक धनोपार्जन कर अधिकाधिक उपभोग करना ही उसका लक्ष्य हो गया है। "सर्वजन हिताय,सर्वजन सुखाय"की भारतीय संस्कृति की अवधारणा को इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने बदल डाला है। स्वार्थ की प्रबल होती इस भावना के फलस्वरूप 'परहित' पर 'स्वहित' की भावना का आधिपत्य हो गया है।सच तो यह है कि भूमंडलीकरण के दौर में उपभोक्ता संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय समाज को विविध स्तरों पर प्रभावित किया है। न केवल भौतिक स्तर पर अपितु आत्मिक व भावनात्मक स्तर पर भी इस कारण बदलाव लक्षित हो रहे हैं। भोगवादी लालसा इसका मूल केंद्र होने के कारण स्वार्थ इसकी धुरी बन गया है।आज 'उतने पाँव पसारिये,जितनी चादर होये' के स्थान पर 'अधिकाधिक उपभोग' तथा 'use and throw' की प्रवृति मानव मन में घर करती जा रही है। एक नवीन 'mall culture'विकसित हो गया है जिसकी चकाचौंध ने सबके मन में लालसा भर दी है।इसे यूं भी समझ सकते हैं कि स्नान द्वारा आतंरिक स्वच्छता के स्थान पर अब ड्राईक्लीन और स्प्रे की खुशबू पर अधिक भरोसा किया जाने लगा है। 'केवल प्रेम के

 ISSN 2231-0584

आधार पर ज़िन्दगी नहीं चलती'–इस कटु सत्य से इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने बड़ी बेरहमी से रु–ब–रु कराया है। अर्थ की महत्ता तो युगों –युगों से रही है किन्तु अर्थ का वर्चस्व जिस घनत्व एवं तीव्रता के साथ वर्त्तमान युग में प्रतिपादित हुआ है वैसा अभूतपूर्व है। आज के भोगवादी युग में उपभोग ही सुख का पर्याय बन चुका है। परिणामतः संबंधों में स्थायित्व का अभाव भी परिलक्षित हो रहा है क्योंकि धन है तो सुविधाएं हैं और सुविधाओं के उपभोग में ही खुशी व सुख देखने वाला आज का मानव रिश्ते–नातों को भी नफा–नुकसान की तुला पर तोलने लगा है। फायदा है तो रिश्ते का औचित्य है अन्यथा रिश्ते की कोई अहमियत नहीं रह गई है आज,और इसके बीज बालपन से ही अनजाने ही पड़ने लग जाते हैं।

मीडिया और विज्ञापनों ने उपभोक्ता संस्कृति को बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा की है। मीडिया के माध्यम से ही विज्ञापनदाता अपने उत्पादों को देश–दुनिया में हर जगह विभिन्न उपभोक्ताओं तक सहजता से पंहुचा पाता है। विज्ञापन द्वारा प्रचार सदियों से किया जाता रहा है,बस उसका रूप वह नहीं था जो आज है। विज्ञापन उपभोक्ताओं के लिए सहायक होते हैं,बशर्ते वह भ्रामक जानकारी न दें,जैसा कि आज प्रायः किया जा रहा है। आज उपभोक्ताओं की कमज़ोर मानसिकता को परख उसी तरह की अपील वाला विज्ञापन तैयार किया जाता है जो उपभोक्ता की नब्ज़ तक पहुँच उसे वह उत्पाद खरीदने के लिए बाध्य कर दे।कई बार तो ऐसे विज्ञापन बनाये जाते हैं कि अनावश्यक वस्तु भी अति आवश्यक लगने लगती है और न चाहते हुए भी उपभोक्ता उसे खरीद लेता है।यही अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों द्वारा पल्लवित–पुष्पित बाज़ारवाद है जिसकी गिरफ्त में आकर मध्य वर्ग और निम्न वर्ग सबसे अधिक पिस रहा है।देखा जाए तो "विज्ञापनकर्ता 'अदृश्य हमलावर' हैं।अपने विज्ञापनों के माध्यम से वे संभावित उपभोक्ता को इस प्रकार भ्रमित करते हैं कि वह अनावश्यक वस्तु को खरीदने के लिए भी उत्साहित हो जाता है।इस प्रकार ये उपभोक्ता के स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति और संयम के साथ खिलवाड़ करते हैं।"[3] विज्ञापन आज एक तंत्र बन चुका है जिसके मायाजाल में हर वर्ग का व्यक्ति फंसता चला जाता है। सभी अपनी हैसियत से आगे बढ़कर उपभोग करने को लालायित रहने लगे हैं क्योंकि विज्ञापनों की लुभावनी दुनिया ने उनके चहुँ ओर एक ऐसे स्वप्न लोक का निर्माण कर दिया है जिसकी भूल–भुलैया से बाहर निकलना संभव नहीं।आजकल तो क्रय–विक्रय के लिए ऑनलाइन बाज़ार हाज़िर हैं। Amazon, Myntra, Snapdeal, Flipcart आदि अनेकों साइट्स है जो उपभोक्ताओं को ऑनलाइन सेवाएं उपलब्ध करा रही हैं।असल में, विज्ञापन सपनों के सौदागर हैं। वे हमें सपने दिखाते हैं, बेचते हैं और हम उन अधूरे सपनों को हर कीमत पर खरीद लेना चाहते है। तात्पर्य यह कि "विज्ञापन अपने सन्देश के माध्यम से उत्पाद या वस्तु के प्रति ऐसी तीव्र इच्छा उत्पन्न कर देता है कि उपभोक्ता उसे प्राप्त करने के लिए येन –केन अधिक से अधिक धन कमाने की होड़ में लग जाता है। अधिक सुविधासंपन्न बनकर वस्तुओं का लाभ प्राप्त करने की मनोदशा भी इस उपभोकतावादी संस्कृति की ही देन है।"[4] अब तो विभिन्न धारावाहिकों आदि में भी महंगे ब्रांड्स को खरीदने

की ओर उपभोक्ताओ को आकर्षित किया जाने लगा है।खास वर्ग के लिए खास किस्म के वस्त्रों–आभूषणों या अन्य वस्तुओं का प्रचार–प्रसार अप्रत्यक्ष रूप से इस तरह किया जाता है कि फिर उसी ख़ास वस्तु की मांग उपभोक्ताओं में बढ़ कर बिक्री के पुराने सब रिकॉर्ड तोड़ने लगती है। परिणाम 'Neighbor's envy, owner's pride' जैसे विज्ञापनों के माध्यम से न केवल लोक दिखावे की प्रवृति को बढ़ावा मिलता है बल्कि इर्ष्या–द्वेष जैसे मनोविकारों का भी उपभोक्ताओं के मन में समावेश होता है।भारतीय संस्कृति शालीनता, मर्यादा और संयम की संस्कृति रही है किन्तु कृत्रिमता,दिखावे और फैशनपरस्ती की होड़ से पूर्ण उपभोक्तावादी संस्कृति जन–मानस की समझ को विनाश की ओर धकेल रही है।कभी लड्डू या खीर खाकर जन्मोत्सव मनाने वाले अपने देश में आज केक के बिना जन्मदिन की कल्पना नहीं की जा सकती। आज जन्मदिन के साथ केक का चित्र स्वाभाविक तौर पर दिमाग में उतर आता है। दीवाली हो, क्रिसमस हो, ईद हो या कोई अन्य कोई पर्व–त्यौहार, आज सभी का बाजारीकरण हो चुका है।क्रिसमस है तो सांता क्लॉज की ड्रेस,उसकी टोपी, घंटी,ट्री होनी ही चाहिए। वैलेंटाइन पर हर तरफ लाल–गुलाबी रंग के दिल दिख जायेंगे और लाल गुलाब तो देना ही है प्रेमी –प्रेमिका को,चाहे जितना महँगा खरीदना पड़े।करवा चौथ हो, अक्षय तृतीया या धनतेरस, पहले ये सभी पर्व सादगी से मना लिए जाते थे किन्तु जबसे बाज़ारवाद हावी हुआ है इन पर्वों की सादगी भी विलुप्त हो गई है।चांदी–सोने–हीरों की चमक के आगे भारतीय संस्कृति की सादगी फीकी पड़ रही है।दीवाली,होली, ईद जैसे बड़े त्योहारों पर ही नहीं,अब तोगणतंत्र दिवस,स्वतंत्रता दिवस ,पाश्चात्य नव वर्ष इत्यादि पर भी मल्टीनेशनल कंपनियां उत्पादों पर लोक–लुभावने ऑफर फेंकती हैं और जैसे –जैसे वह अवसर नज़दीक आता जाता है,उनके ऑफर बढ़ते जाते हैं और अंततः उपभोक्ता सोचने को विवश हो जाता है कि अब नहीं लिया तो फिर कब लेगा? बस उपभोक्ता की इसी मानसिकता को ये कंपनियां भुनाकर अपना मनचाहा कारोबार फैला रही हैं और उपभोक्ता को पता भी नहीं कि वह अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा खुशी –खुशी व्यर्थ ही लुटाये चला जा रहा है।एक आम आदमी को अब अपने पर्व–त्यौहार ठीक ढंग से मनाने के लिए बड़ी जद्दोज़हद करनी पड़ती है क्योंकि महंगाई आसमान छू रही होती है किन्तु उसकी ख्वाहिशों से भरी आंखे भी चमकना चाहती हैं।मॉल कल्चर की चकाचौंध उसके मन में भी एक ऐसी लालसा पैदा करती है कि वह भी बड़े–बड़े ब्रांड्स खरीदने को लालायित हो उठता है।हम यदि गौर करें तो पायेंगे कि बदलते भारतीय परिदृश्य में तो मानव–जन्म ही बदल गया है।बच्चा भी अब मानों भौतिक उत्पाद जैसा बन गया है, कीमत अदा कीजिये और ले जाइये मन मुताबिक संतान! निसंतान दम्पतियों के लिए वरदान मानी जाने वाली तकनीकें –आई वी ऍफ़, सरोगेसी–अबव्यापार का तंत्र बनती जा रही हैं। लम्बा, गोरा, मोटा, पतला, सांवला, नीली–काली–भूरी–हरी जैसी चाहें वैसी आँखों वाला बच्चा लीजिये, बस भरी–भरकम कीमत देने के लिए धन होना चाहिए आपके पास। यद्यपि निसंदेह ये तकनीकें वरदान हैं किन्तु ये सेंटर उपभोक्ताओं की जेबें काटने के लिए जो विज्ञापन लगाते हैं,उन पर गौर करने से स्पष्ट पता चलेगा कि उनकी आड़ में कैसे ये अपना चक्रव्यूह रचते हैं।

ISSN 2231-0584

भूमंडलीकरण के दौर में व्यावसायिकता और उपभोग की बढ़ती हुई प्रवृति से भारतीय समाज और संस्कृति दोनों प्रभावित हुए हैं। मल्टीनेशनल कंपनियां ये भली–भांति जानती हैं कि बच्चे उनका सर्वाधिक बड़ा उपभोक्ता वर्ग हैं और इसीलिए खिलौने–वस्त्रों से लेकर भोज्य–पदार्थों तक समस्त चीज़ों को बच्चों की दृष्टि से मनभावन बनाकार ये अपने विज्ञापन प्रस्तुत करती हैं। आज बच्चा होश संभालते ही स्वयं को विविध ब्रैंड के उत्पादों से घिरा हुआ पाता है। चाहे खिलौने हों अथवा कपड़े हर संपन्न अभिभावक अपने बच्चे के लिए ब्रैंड की मांग रखता है और चाहता है कि उसका बच्चा Johnson n Johnson, mothercare या firstcry से ख़रीदे कपड़े पहने, hamleys, funskooltoys से खेले। बड़ा होने पर बच्चा भी ब्रैंडेड वस्तुओं का प्रयोग करने में गर्व का अनुभव करने लगता है और फिर स्कूल बैग हो या टिफिन–वॉटर बॉटल या ज्योमैट्रि बॉक्स, सब कुछ उसे डिज्नी, डोरेमोन, निंजाहथौड़ी, छोटा भीम, बार्बी, पेपा पिग, शिनचौन, फ्रोज़न आदि के ही कार्टून वाले चाहिए होते है ,भले ही कितने भी महेंगे क्यों न हों।खाने–पीने की दृष्टि यदि देखें तो भी पायेंगे कि बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद ने बच्चों को किस कदर मोटापे की ओर धकेल दिया है।पौष्टिक आहार की अपेक्षा अब बच्चे जंक फूड अधिक पसंद करने लगे है जो उनकी सेहत के लिए बिलकुल भी अच्छा नहीं है।भारतीय खान–पान की संस्कृति तो दूध–दही–छाछ–लस्सी इत्यादि की रही है पर आज देखते हैं कि बच्चे पिज़्ज़ा–बर्गर–चाउमीन–कोल्ड ड्रिंक सरीखे जंक फूड के दास बन गए हैं। ये मीडिया और विज्ञापनजनित उपभोक्तावाद का ही दुष्प्रभाव है कि साधारण सस्ते टिकाऊ जूतों के स्थान पर आज उपभोक्ता Nike, Adidas, Puma या LeeCooper का चयन करता है,भले ही उसकी कीमत दस गुना अधिक क्यों न हो। कारण स्पष्ट है,लोक–दिखावे के ज़माने में आज उपभोक्ता की मानसिकता 'शो–ऑफ' द्वारा अपना स्टेटस दिखाने की हो गई है। ज़रा सी आमदनी बढ़ते ही आम उपभोक्ता भी पहले के मुकाबले और आगे का महँगा ब्रैंड खरीदना चाहता है। पहले SamsungTV देखता था, अब sony चाहिए, पहले LG का AC था पर अब Hitachi चाहिए। पहले छोटी कॉम्पैक्ट मारूति कार ही बढ़िया लगती थी पर अब Audi, BMW का ज़माना है तो वही लेंगे, भले ही लोन लेना पड़े या किश्त चुकानी पड़ें। ख्वाहिशें पूरी न हो पाने या स्टेटस बरकरार न रख पाने की स्थिति में इसकी भरपाई महत्वाकांक्षी उपभोक्ता 'शॉर्ट–कट' तरीके अपनाकर करने से भी नही हिचकिचाते।आये दिन ऐसी खबरें समाचार–पत्रों में पढने को मिल जाती हैं जिनमें चैन–स्नैचिंग या चोरी–चकारी करने वाला कोई पढ़ा–लिखा युवा होता है,जो किसी मजबूरी के तहत नहीं बल्कि अपने लिविंग स्टेंडर्ड के लिए ऐसे अपराध करता है।ग्लोबलाइजेशनके वर्त्तमान समय में विदेशी कंपनियों की फेसबुक,व्हाट्सअप,इन्स्टाग्राम जैसी सेवाओं के बढ़ते प्रभाव ने समस्त वैश्विक परिदृश्य को बदल डाला है।मनुष्य की दिनचर्या अब व्हाट्सअप से शुरू होती है और फेसबुक पर खत्म! फलस्वरूप पारिवारिक रिश्तों–संबंधों के बीच की ऊष्मा गायब होती जा रही है। एक–दूसरे के साथ जो समय व्यतीत किया जाना चाहिए वह अब सोशल साइट्स को दिया जा रहा है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि सोशल साइट्स ने दुनिया को विचारों के आदान–प्रदान तथा मित्रता का एक

मंच उपलब्ध कराया है परन्तु आज इसका प्रयोग अतिवादिता की सीमा तक पहुँच गया है।एक ही परिवार के सदस्य एक साथ एक कमरे में बैठे होते हुए भी अजनबी हो चले हैं क्योंकि आपसी बातचीत का स्थान अब सोशल साइट्स ले चुकी हैं।आउटडोर गेम्स तो अब बच्चों के लिए मानों बीते ज़माने की बात हो चली है। बॉल की जगह 'माउस' ने ले ली है और रैकेट की 'प्लेस्टेशन' ने! और तो और इंडोर गेम्स भी,जो हम सब सदस्य खाली समय में आपस में मिलकर खेलते थे, वह भी अब कंप्यूटर या मोबाइल पर खेले जाने लगे है! कल्पना करके देखिये कि कितना अजीब दृश्य होता होगा! एक ही परिवार के 4–5 सदस्य साथ बैठे हैं, पास ही कहीं लूडो, शतरंज या कैरम के खेलों के बोर्ड भी रखे हुए है किन्तु खेल रहे हैं सभी अपने–अपने मोबाइल से! ज़रा सोचिये कि कितनी खोखली और अजनबी दुनिया का निर्माण हमने अपने आस–पास कर डाला है और लगातार आज भी कर रहे हैं!

आज के भोगवादी युग में ग्लैमर युवाओं के सिर चढ़कर बोल रहा है। इन्स्टा (Insta), टिक–टॉक (Tik-Tok), लाइक (स्पाम), ब्यूटी प्लस (Beauty Plus) जैसे एप्स की सेवाओं ने इस प्रवृति को और बढ़ावा दिया है। एक से बढ़कर एक एप्स बाज़ार में नित्य प्रति आ रहे हैं जिससे मनचाहा त्वचा– रंग, मनचाही कद–काठी, मनचाहे बाल, मनचाही आँखे ही नहीं मनचाही उम्र की तस्वीर व विडियो बनाए जा सकते हैं। यद्यपि आज मनोरंजन के क्षेत्र में निजी चैनलों की बाढ़–सी आ गई है तथा प्रत्येक चैनल को देखने का अलग भुगतान करना होता है तथापि प्रत्येक चैनल का अपना एक ख़ास दर्शक वर्ग होता है जो खुशी–खुशी मुँह मांगे दामों पर उसी चैनल पर अपना वही पसंदीदा धारावाहिक देखना पसंद करता है। ध्यान देने योग्य "दिलचस्प बात यह है कि इन माध्यमों का संचालन और नियंत्रण भी उन्हीं बाजारवादी शक्तियों के हाथों में है जो दर्शक को एक उपभोक्ता के रूप में देखते हैं। इन्हें देखने के लिए लोगों को अतिरिक्त व्यय भी करना पड़ता है। इसके बावजूद शहरी मध्य वर्ग में इन चैनलों के प्रति आकर्षण और असर बढ़ा है।" यही नहीं, इन्टरनेट पर आज अनकों ऐसी आपत्तिजनक साइट्स हैं जो एक क्लिक करते ही सहजता से उपलब्ध हैं। इन दिनों नेटफ्लिक्स (Netflix) और अमेज़न प्राइम विडियो (Amazon Prime Video) जैसी सेवाएँ भी विदेशी कंपनियां भारतीय उपभोक्ताओं को परोस रही हैं। Set Top Box से अलग इन सेवाओं हेतु भुगतान कीजिये और देखिये uncensored web series का ऐसा सिलसिला जिसमें हिंसा, गालियों और अश्लीलता की बेहिसाब भरमार आपको परोसी जाएगी। ऐसी सेवाओं का उपभोग न सिर्फ युवाओं के लिए अपितु समस्त भारतीय समाज के लिए घातक है। दिनोंदिन बढ़ते अपराधों–दुष्कर्मों का एक प्रमुख कारण यह भी है। कुंठा, आक्रोश, संयमहीनता, हिंसा, इर्ष्या इत्यादि अवगुणों और मनोविकारों का मानव–मन पर आधिपत्य होता जा रहा है। कहने का आशय यह है कि एक नकली आभासी दुनिया में जीने के हम आदि हो चले हैं और यह वाकई खतरनाक है, बहुत खतरनाक!यह हमें अपनी मूल जड़ों से कब उखाड़ फेंकेगा, पता भी नहीं चलेगा और हम बस देखते ही रह जायेंगे।

 ISSN 2231-0584

लिस्ट बहुत लम्बी है दोस्तों, मेरे कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि आज उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्प्रभाव अनगिनत हैं और इस पर अंकुश लगाए जाने की बहुत आवश्यकता है।यदि अब भी हमने इसे गंभीरता से नहीं लिया तो पश्चाताप के सिवा कुछ न बचेगा। वक्त रहते हमें अपने बच्चों को उपभोक्तावाद की अतिशयता से बचाना होगा और इसके दुष्परिणामों से सावधान करना होगा। मनीषियों ने कहा भी है कि 'अति हर चीज़ की बुरी होती है', इस बात को अपने आचरण में लाते हुए व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग में लाने की आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची

1. मेरी आत्मकथा–चार्ली चौप्लिन, अनु. सूरज प्रकाश
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, तृतीय संस्करण, प्रस्तावना, जवाहरलाल नेहरु
3. भाषा, साहित्य और संस्कृति, डॉ. मुकेश अग्रवाल, पृष्ठ 478.
4. भारतीय मीडियाः अन्तरंग पहचान.संपा. डॉ. स्मिता मिश्र, पृष्ठ 14.

 ISSN 2231-0584

डॉ.सत्यव्रत शास्त्री और उनका 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' महाकाव्य

हेमलता रानी
संस्कृत शोधच्छात्रा
संस्कृत विभाग, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली

काव्यव्रतं काव्यपरं वरेण्यं काव्यस्य योनिं प्रथितं सुकाव्ये।
काव्यात्मकं काव्यमयं समस्तं सत्यव्रतं काव्यगुरूं भजामः।।1।।
विद्या विवादाय धनं मदाय स्थानं सदा शोषणकारणाय।
सत्यव्रते तद् विपरीतमेतत् काव्याय दानाय सतां हिताय।।2।।
यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापाकोद्भवं केवलं
यस्यास्ति व्रतमात्रपालनविधौ बुद्धिर्दृढा निर्मला।
सत्ये यस्य रूचिर्विशेषमहिमासारे स्थिता सर्वथा
तं विद्याविनयेन शान्तिसहितं सत्यव्रतं मन्महे।।3।।

प्रोफेसर सत्यव्रत शास्त्री आधुनिक संस्कृत साहित्य के शिरोमणि कहे जाने वाले कवियों में अग्रगण्य। बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपके पिता चारूदेव शास्त्री एक महान् वैयाकरण थे, जो संस्कृत जगत् में अभिनव पाणिनि कहलाते थे। अतः संस्कृत शास्त्री जी को विरासत में ही प्राप्त हुई थी। शास्त्री जी एक कवि एवं साहित्यकार तो थे ही, साथ ही एक योग्य शिक्षक, महान् चिन्तक, समालोचक तथा एक कुशल प्रशासक के रूप में भी सर्वत्र विश्वविख्यात हैं। शास्त्री जी का जन्म 29 सितम्बर, 1930 ई0 में पश्चिम पाकिस्तान लाहौर में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिताश्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

शास्त्री जी ने अनेक साहित्य ग्रन्थों पर अपने लेखनी चलाई है; यथा–महाकाव्य –श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, रामकीर्तिमहाकाव्यम्, इन्दिरागान्धिचरितम्, बृहत्तरं भारतम् आदि खण्डकाव्य– श्रीगुरूगोविन्दसिंहचरितम्, थाईदेशविलासम्, शर्मण्यदेशःसुतरां विभाति, षड्ऋतुवर्णनम्,

Discovery of Sanskrit Treasures(seven parts) Human values, Essays on Indology.

The Ramayan : Lingusitic Study.

The Concept of Time and Space in Indian Thought.

A Vedic Grammar for Students आदि का हिन्दी अनुवाद, चरन् वै मधु

 ISSN 2231-0584

विन्दति तथा पत्रकाव्यादि की रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्धशाली करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इसके अतिरिक्त डॉ. शास्त्री के सौ से भी अधिक शोध–पत्र विविध शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित है। शास्त्री जी को उनके साहित्यिक योगदान के लिए सन् 1968 में साहित्य अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के कई वर्षों तक आचार्य एवं अध्यक्ष के पद को तथा एकाधिक विश्वविद्यालय कुलपति के पद को भी सुशोभित किया।

डॉ शास्त्री के महाकाव्यों[1] में 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' महाकाव्य स्वयं में ही बोधि की ओर ले जाता है क्योंकि इसमें बोधिसत्त्व के उदात्त कर्मों की कथा को 14 सर्गों में निबद्द महाकाव्य के रूप में निबद्ध किया गया है। 'बोधिसत्त्व' दो शब्दों से बना है। प्रथम ''बोधि'' अर्थात् बुद्धत्व या ज्ञान और दूसरा ''सत्त्व'' का अर्थ है प्राणा। अतः बुद्धत्व (ज्ञान) की प्राप्ति के लिए श्रम करने वाला प्राणी ही बोधिसत्त्व[2] कहलाता है। माना जाता है कि महात्मा– बुद्ध, बुद्ध बनने से पहले बोधि प्राप्ति हेतु श्रम करते रहे। अतः श्रमावस्था (प्रयत्नावस्था) में बोधि बोधिसत्त्व थे किन्तु शाक्यमुनि के रूप में जब बुद्ध को बोधि की प्राप्ति हो गयी तो वे

---

[1]महाकाव्य सर्वप्रथम लक्षण आचार्य भामह (400ई0) ने प्रदान किया है।
सर्गबन्धां भिनंयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे।
अनिबद्धं च काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते।।
सर्गबन्धो महाकाव्यं महतो च महच्चयत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयै च यत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।।
चतुर्वर्गाभिधानेपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैः च सकलैः पृथक्।।
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षविधित्सया।।
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेश्यते।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ।।
भामह, काव्यालंकार (वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1981) 1/18–23

[2]जातक विमर्श, डॉ सुरेन्द्र सिंह, पृष्ठ– 74

 ISSN 2231-0584

बोधिसत्त्व न रहकर 'बुद्ध' बन गये। प्रकृत महाकाव्य का नायक बोधिसत्त्व है क्योंकि यहां भगवान् बुद्ध(बोधिसत्त्व) के पूर्वजन्म के अवदानों को ही काव्य के रूप में दिखाया गया है। उक्त महाकाव्य में भिन्न–भिन्न कथाओं के माध्यम से बोधिसत्त्व के जीवन दर्शन को दर्शाया गया है। यहाँ बोधिसत्त्व को राजा[4], व्यापारी[5], भिक्षु, कृषक[6] तथा शिक्षक[7] के रूप में वर्णित किया गया है।

श्रीबोधिसत्त्वचरितम् महाकाव्य की सर्ग योजनाः

प्रथम सर्ग में वर्णित कथा दो वैश्य व्यापारियों से सम्बन्धित है। यह मूल रूप से जातक के प्रथम खण्ड में कही गई "अपणक जातक" से ली गई।[8] द्वितीय सर्ग में वर्णित कथा श्रीकुमार और कौशलेश मलिक की कथा जातक के द्वितीय खण्ड में उक्त कथा "रजोबाद जातक" से उद्धृत है। तृतीय सर्ग व चतुर्थ सर्ग की कथावस्तु मूल जातक में वर्णित "महाशील जातक" से गृहीत है।[9] पंचम् सर्ग में स्त्री के चरित्र का मूल भी जातक में वर्णित "उच्छगजातक" है।[10] काव्य के सप्तम, अष्टम और नवम सर्ग इन तीन सर्गों में एक ही कथा एक रूप में चलती है जिसका नाम "उन्मदयन्ती" कथा है। जो जातक के पंचम खण्ड से सम्बन्धित है। जातक और आर्यशूर कृत जातकमाला में वर्णित कथावस्तु में कोई अन्तर नहीं है। ये दोनों कथाएं ही उक्त सर्ग के कथानक का स्रोत है।[11] दशम और एकादश दोनो सर्गों में वर्णित कथा किन्नरयुगल और राजा भल्लाटिय से सम्बन्धित है। "भल्लाटिय जातक" इस नाम से जातक के प्रथम खण्ड[12] में कही गई है। द्वादश सर्ग में वर्णित कृशक तथा उसके परिवार की कथा का मूल स्त्रोत जातक तृतीय खण्ड में विद्यमान "उरग जातक" के नाम से वर्णित है।[13] त्रयोदश सर्ग में अकृतज्ञ मित्र की कथा जातक के द्वितीय खण्ड में

---

[3]शास्तेति नाम्ना प्रथितो महात्मा
बुद्धः प्रबुद्धो जनताहिताय।
प्राग्जन्मवृतान्तकथास्तदीया
गीर्वाणवाण्या समुझीरयामि ।। श्री0 बो0 स0 च0 1/1

[4]श्रीबोधिसत्त्वचरितम्,तृतीय, चतुर्थ एवं नवम सर्ग

[5]वही, प्रथम एवं अष्टम– सर्ग

[6]वही द्वादश सर्ग,

[7]वही चतुर्दश सर्ग

[8]जातक (प्र0 ख0) अनु0 भदन्त आनन्द कौसल्यायन, अपण्णक वर्ग, क0स0 पृ0 176.184

[9]वही प्र0 ख0 आसिंस वर्ग, क0 सं0 51, पृ0 387–393.

[10]वही, इत्थि वर्ग, क.सं. 67 पृ. 443–444

[11]जा. मा. आर्यशूर , क. स. पृ.173–187

[12]जातक पंचम खं. मणिकुण्डल वर्ग क. सं. 354

[13]वही तृतीय खं. क.सं. 354 पृ. 324–29

ISSN 2231-0584

"असम्पदान जातक" के नाम से वर्णित है।[14] चतुर्दश सर्ग में पापक नाम के शिश्य की कथावस्तु का मूल भी जातक प्रथम खण्ड में से लिया गया है और वहाँ यह कथा "नामसिद्धि जातक" के नाम से प्राप्त होती है।[15] अतः इस प्रकार श्रीबोधिसत्त्वचरितम् महाकाव्य के सभी सर्गों में गृहीत विभिन्न पात्रों की कथा मूलतः जातकों में वर्णित होने से जातक कथाएं ही इस महाकाव्य के मूल स्त्रोत माने जा सकते है।

इन सभी सर्गों के मूल कथानकों का मूल स्रोत भगवान् बुद्ध(बोधिसत्त्व) से सम्बन्धित जातक कथाऐं हैं।

पूर्व मान्यताओं के अनुसार महाकाव्य एक सर्गबद्ध पद्य रचना होती है और जिसमें प्रसिद्ध एक ऐतिहासिक नायक के सम्पूर्ण जन्म अथवा एक वंश के भिन्न नायकों के जीवन चरित का वर्णित करना कहा गया था।[16] इस परिधि से हट कर 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' एक भिन्न व नवीन रूप में स्वयं को प्रकट करता है क्योंकि इसके नायक एकात्मा में होते हुए भी, एकाधिक व्यक्ति हैं। इस काव्य में चित्रित अनेक चरित्रों को कवि ने एक अभिन्न आत्मा को अनेक जन्मों व अनेक शरीरों में उपस्थित बोधिसत्त्व की आत्मा आत्मा माना है।

'बोधिसत्त्वचरित' महाकाव्य में बोधिसत्त्व के चरित को साधारण चरित्र वाले दूसरे अन्य पात्र के समक्ष रखकर और फिर गुण, उदारता, विवेक, शौर्य, इत्यादि गुणों से ऊपर उठकर चित्रित किया गया है। एक ओर साधारण गुण वाले पात्र और दूसरी ओर उदात्त गुणवान बोधिसत्त्व है। इन दो विरोधी बातों से बोधिसत्त्व का चरित्र बड़ा प्रभावी बन पड़ा है। पालि जातकों तथा संस्कृत जातकों में भगवान् बुद्ध के अनेक जन्मों की कथाऐं विद्यमान हैं।[17]

कवि ने जिस किसी जातक से कथा को ग्रहण किया उनमें कतिपय सर्गों के कथानकों को छोडकर अन्य सभी सर्गों के कथानक को बिना किसी परिवर्तन एवं परिवर्धन के जातक कथाओं से ग्रहण किया है। केवल कुछ सर्गों के कथानक में मूलजातक कथा से अल्प परिवर्तन किया है। काव्य के प्रथम सर्ग में बोधिसत्त्व का जन्म किसी वैश्या के घर में दिखाया गया है[18] किन्तु जातक में बोधिसत्त्व का जन्म सत्यवाह नामक बंजारे के घर में

---

[14]वही, असम्पदान वर्ग क.सं. 131 पृ. सं. 566–568

[15]वही, प्रं.खं. लित्त वर्ग क. सं. 97. पृ. 367–573

[16]साहित्यदर्पण 6, 315–325

[17]जातकमाला, आर्यसूर, 1.34 कथाएं पृ0 1–482

[18]श्रीबोधिसत्त्वचरितम् –एक आलोचनात्मक अध्ययन ,डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार गुप्त. पृ0 (xiv)

ISSN 2231-0584

बताया गया है।[19] इसमें दूसरे व्यापारी का :वर्णन है। वैश्य के रूप में किया गया है[20] साथ ही उसे मूर्ख बताते हुए कहा गया है कि बोधिसत्त्व ने अपनी बुद्धि से अच्छा व्यापार किया तथा मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता से सब कुछ नष्ट कर दिया।[21] तृतीय चतुर्थ सर्ग की कथावस्तु जातक प्रथम खण्ड में 'महासीलव' नाम से वर्णित है जो श्रीबोधिसत्त्वचरितम् की कथावस्तु के ही सदृश है[22] किन्तु यहीं कथा जातक (तृ.खं.) में 'सेप्यजातक' नाम से वर्णित है।[23]

उक्त कथा श्रीबोधिसत्त्वचरितम के कथानक से कुछ भिन्न है। इसमें कौशल के राजा को चोर राजा कहकर पुकारा गया है जो काशी नरेश के राज्य पर आधिपत्य कर उसे तथा उसके मन्त्री गणों को शमशान में न गड़वा कर कारागार में बन्दी बना लेता है। राजा शीलवान् कारागार में भी चोर राजा कौशल के राजा के प्रति मैत्रीभाव रखता है। फलतः कौशल ईश के अंगों में भयंकर खुजली होती है और उसे स्वप्न आता है कि तुमने एक सदाचारी निर्दोष राजा को कैद किया हुआ है। उसका ही यह परिणाम है उसे छोड़ दो। कौशल का राजा काशी नरेश को छोड़ देता है, उससे क्षमा याचना करता है और उसका राज्य उसे सौंपकर चला जाता है।

उक्त महाकाव्य रस आदि पर विचार किया जाए तो यहा वीर रस (धर्मवीर) तथा श्रृंगार रस की छटा दृष्टिगत होती है।

श्रृंगार रसः–

महाकाव्य में उन्मदन्ती के सौन्दर्य और महाराज शिवि की उसके प्रति कामभावना में श्रृंगार रस की सिद्धि परिलक्षित होती है।

गण्डच्छविन्यक्कृतपुण्डरीका लाक्षोक्षिता चंचलचंचरीका।
लतेव सा कन्दलितोदबिन्दुस्तनी कदोपैश्यति निन्दितेन्दुः।।
कदा प्रियां प्राणसमां मनोज्ञामालिङ्ग्य दोभ्याँ नवनीतमृद्वीम्।
कथाः प्रकुर्वन् रमणीयरूपास्तृप्तो भविष्याम्धरामृतेन।।[24]

---

[19]श्रीबोधिसत्त्वो भगवान् महात्मा वै यस्य कस्याापि गृहे प्रजज्ञे।। श्री0 बो0स0च0 1.5

[20]तदैव कश्चिद् वणिगात्मजो न्यो यानैः भातैः प चभिरेतुमैच्छत्–श्री0बो0स0च0, 1.10

[21]जातक, प्र.सं.क.स. पृ0176–184

[22]वही 51, पृ0387–931

[23]वही, तृतीय खं. अव्यन्तर वर्ग, क.सं. 282

[24]वही, 8/70–71

ISSN 2231-0584

हे प्रिया! तुम्हारें कपोलों की शोभा से कमल का तिरस्कार करने वाली, महावर लगाये, चंचल भौंरी के समान अपनी शोभा से इन्द्र कान्ति को विनिन्दित करने वाली, कन्दलाकर को प्राप्त जलबिन्दु स्तनों वाली, लता समान वह उन्मदन्ती कब मुझे प्राप्त होगी? कब मैं नवनीत के समान कोमलांगी, प्राण के समान प्रिया उन्मदन्ती की भुजाओं में आलिंगन कर रोचक बातचीत करता हुआ उसके अधर रूपी अमृत से तृप्ति प्राप्त करूँगा।

रस की दृष्टि से अत्र उन्मदन्ती महाराज शिवि की रति आलम्बन विभाव है। सेनापति की पत्नी उन्मदन्ती के प्रति महाराज शिवि की यह रति आचार्यों की दृष्टि से शृंगाराभास का उत्तम दृष्टान्त है।

अन्यत्र छठे सग[25] में भी किसी रूपवती नारी और भिक्षु नर के प्रसंग में शृंगार रस का उदाहरण प्राप्त होता है।

मैं नगर की सुन्दरियों में ललामभूता, मेरे मन को आकर्षित करने वाली उस युवती(रमणी) के साथ देर तक आलिंगन करके रमण करूंगा और उसके अंग स्पर्शजनित सुख का अनुभव करूंगा।

वीर रस (धर्मवीर) :–

बोधिसत्त्वचरितम् में वीर रस का उत्तम प्रयोग किया गया है। इसकी कथाएँ दया, तप, क्षमा, त्याग इत्यादि से पूर्ण है जिसमें धर्मवीर रस की सफल अभिव्यक्ति होती है। अपनी आधी सम्पति देने वाले बोधिसत्त्व का चरित धर्मवीर रस का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है।[26] धनहीन, असहाय, धन की अभिलाषा को व्यक्त करने वाले, मेरे समीप

---

[25]शिरोमणिं तां पुरसुन्दरीणां
चिराय रामां स्वमनो भिरामाम्।
गाढं परिष्वज्य रमेय भूय–
रूतदंगसंस्पर्शसुखं लभेय।। 6/14, श्रीबोधिसत्त्वचरितम्

[26]च्युतधनमसहायं सूचितार्थाभिलाषं
कथमुपनतमेनं हन्त कुर्यां निराशनम्।
इति झटिति वितीर्याशीतिकोट्यर्धमर्थं
मुदिमतहमकार्शं सभ्यमिभ्यं समर्थम्।।
न खलु वसु तदेवायच्छमस्मै स्वमर्धं
स्वमितरदपि सर्वं साम्यदामस्तगर्धम्।

 ISSN 2231-0584

आये हुए मित्र को मैं कैसे निराश करता ? अतः मैंने चालीस करोड़ मुद्रायें देकर इसे प्रसन्न, जनों के मध्य आदरणीय, धनी एवं समर्थ बना दिया। मैंने इसे केवल अपना आधा नहीं दिया अपितु लोभ छोडकर अन्य सभी वस्तुओं का भी भाग दे दिया। मुझ पर निर्भर मेरा मित्र खाली हाथ न लौट जाए, मेरे हृदय में इस प्रकार का आत्महित का विचार (आनन्द) उठता रहा।

निष्कर्षः–

कवि सत्यव्रत शास्त्री की यह कृति सम्पूर्ण मानव जीवन की एक आदर्श कसौटी श्रीबोधिसत्त्वचरितम् महाकाव्य की कथा मानव को स्नेह, दया आदि का उपदेश देती है। प्रत्येक कथा जीवन की डोर की तरह लगती है।

अतः भगवान् सुगतो यदा बोधमलभत्तदा सौ बुद्ध रूपेण प्रथितो बभूव। पर चायं बोधस्तेनैकस्मिन्नेव जन्मनि नासादितः। नैकेषु जन्मसु जनोपकारिकृत्यानि विदधता तेन बोधः प्राप्तः। पूर्वजन्मसु स पालिभाषोपनिबद्धे जातकवाङ्मये बोधिसत्वरूपेण वर्णितः। भगवतो बुद्धस्य बोद्धित्वरूपेण यत् सच्चारित्र्यं प्रदर्शितं तस्यैव साङ्गोपागं विवरणमस्मिन्काव्ये सुगुम्फितम्। पालिभाषोपनिबद्धा जातककथाः श्रीमता आर्यशूरेण प्रथमतया संस्कृतभाषायां गद्यरूपेण सुलभायिता आसन्। पद्यरूपेण ताः खलु डॉ. सत्यव्रतेनैव संस्कृतगिरायां समुपालम्भिताः। बोधिसत्त्वस्य जीवनं कदाचिन्नृपरूपेण, कदाचिद् व्यापारि–कृषक–भिक्षु–आचार्यादिरूपैः प्रस्तूय बौद्धधर्मस्य कतिपयसिद्धान्ता अत्र व्याख्याताः। तथा हि, आचार्यरूपेण श्रीबोधिसत्त्वः पापक–नामकं स्वशिष्यं प्रत्युपदिशति–

नाम्नो नास्ति महत्त्वमत्र भुवने
कर्मैव मुख्यं मतम्।
किं नाम्ना, यदि सद्गुणास्त्वयि परां
शोभां स्फुटं बिभ्रति।।

मयि निहितमनस्को बान्धवो मा वृथा गात्
मतिरियदिमर्थेवात्मनीना मुदाभात्।। श्रीबोधिसत्त्वचरितम् 13/82.

ISSN 2231-0584

संचार एवं संचार–माध्यमों की भाषा

डॉ0 ललित चंद्र जोशी
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,
सोबन सिंह जीना परिसर,अल्मोड़ा।
मोबाइल : 9410725493 व 8941913131
ईमेल : joshilalit.joshi@gmail.com

भाषा मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाए रखने में बड़ी भूमिका निभाती है। आपसी संपर्क एवं विचारों का आदान–प्रदान करने के लिए भाषा उतनी ही आवश्यक है, जितना जीवित रहने के लिए प्राण–वायु। प्रातः नींद खुलने से लेकर सोने तक मनुष्य न जाने कितने प्रकार के शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग करता होगा। घर से लेकर पड़ोस, रास्ते में, दफ्तर में, समाज में, मित्रों के साथ अपरिचितों से भी, यहां तक कि कभी–कभी स्वयं से बातचीत करने के लिए भी उसे शब्दों की आवश्यकता पड़ती है, यही भाषा है।' हमने देखा है कि साहित्य के माध्यम से अपने विचारों को संचारित किया जा रहा है। आज के युग में संचार की स्थिति बदली है। संचार क्रान्ति के इस युग में संचार के माध्यम हमारे जीवन के लिए इतने अपरिहार्य हो चुके हैं कि उनके अभाव में जीवन जीने की कल्पना भी नहीं कर सकते। आज मनुष्य संचार के युग में जी रहा है और संचार का यह सिलसिला मनुष्य के अस्तित्व काल से चला आ रहा है। आज जनसंचार हमारे जीवन में बेहद महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है और इसके माध्यम से ज्ञान और जानकारी को बेहद विस्तार मिला है। मनुष्य की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति में सबसे अधिक समर्थ अक्षर भाषा ही होती है, वही मानव के आन्तरिक तथा बाह्य जीवन के परिष्कार का आधार है, क्योंकि बौद्धिक क्रिया तथा मनोरागों की अभिव्यक्ति तथा उनके परस्पर सम्बन्धों में संग्रथित करने में भाषा एक स्निग्ध किन्तु अटूट सूत्र का कार्य करती है।

संचार के माध्यम से ही समाज की विभिन्न संस्थाएं सफलतापूर्वक अपने कार्यों को संपादित कर पाती हैं। यह अनवरत् चलने वाली एक प्रक्रिया है। संचार पर विराम जीवन की प्रक्रिया का ठप हो जाना है। यदि हम कुछ समय के लिए किसी से बात करना बंद कर दें तो उससे संपर्क टूट जाता है और हमें एक कमी–सी महसूस होती है। 'संचार' के जरिए ही हममें एक समुदाय में रहने और समाज का हिस्सा बनने की भावना को बल मिलता है। संचार से विमर्श और सहमति का, विवेक, रचनाशीलता, शांति और सद्भावना को बल मिलता है। मनोरंजन हेतु, सूचना संप्रेषण, विचार–विमर्श करने के लिए, शिक्षा देने, निर्देश देने, सांस्कृतिक प्रोत्साहन देने, प्रभाव डालने के लिए 'संचार' आवश्यक है। जब संचार का संबंध किसी प्राणी से न होकर मनुष्य से होता है, तो वह मानव का 'संचार' कहा जाता है।

 ISSN 2231-0584

हर किसी जीव में संचार प्रारम्भ से विद्यमान रहा है। गाय का रंभाना, चिड़ियों का चहचहाना, मेंढक का टरटराना, कुत्ते का भौंकना आदि संचार है। एक दूसरे से बात करना 'संचार' है और मन–ही–मन में कुछ चिंतन–मनन करना भी 'संचार' है। 'संचार' माध्यमों के माध्यम से हम अपनी बात को एक दूसरे के मध्य संचार करते हैं। ''संचार संस्कृत की चर् धातु से बना है जिसका अर्थ है चलना। सम् उपसर्ग और आ प्रत्यय के लगने से इसका अर्थ हो जाता है सम्यक ढंग से चलना।' 'संचार' का सामान्य अर्थ है–किसी सूचना या जानकारी का दूसरों तक पहुँचाना। लेकिन आज 'संचार' एक तकनीकी बन चुका है जो अंग्रेजी के 'कम्युनिकेशन' 'communication' का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द का प्रयोग 'किसी बात को आगे बढ़ाना, चलाना या फैलाना के अर्थ में किया जाता है। जब हम 'संचार' शब्द का प्रयोग 'कम्युनिकेशन' के विशिष्ट अर्थ में करते हैं तब यह एक पारिभाषिक शब्द बन जाता है।''

'संचार' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कम्युनिकेशन' शब्द का अनुवाद है जो लैटिन भाषा के 'कम्युनिकस' से बना है जिसका अर्थ है सामान्य भागीदारी युक्त सूचना एवं उसका संप्रेषण। संचार का अर्थ किसी बात को आगे बढ़ाना है। संचार उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें वक्ता एवं श्रोता के मध्य सूचना का संप्रेषण होता है। इस प्रकार संचार विचारों के आदान–प्रदान से संबद्ध है। कोई सूचना, विचार या भाव दूसरों तक पहुँचाना ही मोटे तौर पर 'संचार' या 'कम्युनिकेशन' कहलाता है। जिसका अर्थ है–समुदाय (Community) और मनुष्य का एक–दूसरे के साथ व्यवहार, भाईचारा, मैत्रीभाव, साझेदारी, सहभागिता और न्यायपरायणता। यानी, मनुष्यों का परस्पर व्यवहार, सम्पर्क, आदान–प्रदान, बरताव। किसी वस्तु या विषय के लिए साझेदारी ही संचार है। संचार एक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक व्यवस्था के द्वारा सूचना, निर्णय और निर्देश दिए जाते हैं और यह एक मार्ग है जिसमें ज्ञान, विचारों और दृष्टिकोणों को विर्निर्मित और परिवर्तित किया जाता है। संचार में प्रेषण और ग्रहण महत्वपूर्ण है। संचार के लिए एकाधिक व्यक्तियों के मध्य भावों, विचारों आदि का संप्रेषण अनिवार्य है। एकतरफा संप्रेषण वास्तविक, अर्थों में संचार नहीं माना जा सकता। अर्थपूर्ण संदेश सिर्फ सूचना देने का काम नहीं करता, वरन् वह ग्रहणकर्ता में प्रतिक्रिया भी उत्पन्न करता है। संचार की प्रक्रिया में माध्यम का पर्याप्त महत्व है। जब यह वृहद पैमाने पर हो तो वह संचार से जनसंचार का रूप ग्रहण कर लेती है। भारतीय लोकतंत्र की गाथा किसी से कम नहीं है। यहाँ 'चौथा स्तंभ' कहे जाने वाले मीडिया ने लोकतंत्र को सफल बनाने में अपना अहम योगदान दिया है। हमारी बातें, सूचना, समाचार किसी अन्य तक पहुँचना ही संचार है और जिस माध्यम से हम उस सूचना का प्रसार कर रहे हैं वह तकनीक के द्वारा ही संभव हो पाया है जिसे हम जनसंचार माध्यम के नाम से जानते हैं।सूचना के

 ISSN 2231-0584

स्रोत और सूचना के उन्मुक्त प्रवाह का दारोमदार बड़ी हद तक जनसंचार माध्यमों पर है। प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जनसंचार के सशक्त माध्यम हैं।

भाषा और समाज का संबंध काफी पुराना है। ''भाषा किसी भी प्राणी के मनोभावों को व्यक्त करने का सशक्त और प्रभावी माध्यम है। इससे उसकी एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति होती है। भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग है। इससे व्यक्ति का ज्ञान और इच्छा प्रकट होती है। भाषा के माध्यम से व्यक्ति एक–दूसरे के साथ, परिवार तथा समाज के साथ संबंध जोड़ता है। शब्द ही मनुष्य के शत्रु एवं मित्रों की संख्या निर्धारित करते हैं। इसे तोलकर बोलने वाला प्रतिष्ठा और प्रेम का पात्र बन जाता है और अनुपयुक्त–अभद्र भाषा का इस्तेमाल करने वाले की प्रतिष्ठा धूल–धूसरित हो जाती है। शब्द, संकेत, चिह्न और भाव–भंगिमाएं भी सभी भाषा के माध्यम अथवा प्रकार हैं।''

सूचना तकनीक के इस युग में जिन भाषाओं ने तकनीक के साथ सामंजस्य–संतुलन बना लिया, वे परिवर्तनशील हैं, उन्हें बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हुई और जो भाषाएं परिवर्तनशील नहीं हैं, उनका अस्तित्व समाप्त होने की ओर है। अर्थात् किसी भाषा को जीवित रहने के लिए उसमें परिवर्तनशीलता और तकनीक के साथ सामंजस्य बिठाने का गुण होना चाहिए। अंग्रेजी इसका सुंदरतम उदाहरण हो सकता है। यही स्थिति हिंदी की भी है। इसने भी पर्याप्त सीमा तक स्वयं को परिवर्तनशीलता की राह पर अग्रसर किया है। इसने फारसी, अरबी, पंजाबी के अनेक शब्दों को ग्रहण कर अपना प्राचीन स्वरूप बदला है। सूचना तकनीक के साथ इसने सामंजस्य बिठाया है। यह सूचना माध्यमों की भाषा बनकर जनसंचार माध्यमों द्वारा चर्तुमुखीं विकास की तरफ उन्मुख है। हिंदी में अनेक भाषाओं के शब्दों की संख्या बढ़ने के कारण इसका सरलीकरण हुआ है। अंग्रेजी के अनेक शब्दों को ग्रहण किए जाने के कारण कुछ विद्वान इसे हिंग्लिश नाम दे रहे हैं तो अरबी, फारसी, पंजाबी, अंग्रेजी शब्दों की संख्या बढ़ने के कारण कुछ विद्वान इसे 'खिचड़ी' भाषा कह रहे हैं। विद्वान इसे नई हिंदी, मिश्रित भाषा और खिचड़ी भाषा की संज्ञा दे रहे हैं।''

भाषा में स्वर, अर्थ रूप, भाव तथा बोध का ऐसा समन्वय रहता है जो मानवीय अभिव्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि तक विस्तार देने में समर्थ है। भाषा के बिना अभिव्यक्ति सम्यक् रूपेण नहीं हो सकती। जनसंचार के परिप्रेक्ष्य में यदि कहें तो जनसंचार में एक या एकाधिक व्यक्तियों द्वारा या किसी माध्यम द्वारा किसी सन्दर्भ में संदेश प्रेषित किया जाता है और श्रोता उस संदेश को ग्रहण करता है, उससे प्रभावित होता है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। जनसंचार के लिए माध्यमों की भूमिका अपरिहार्य है। यह कह सकते हैं कि

 ISSN 2231-0584

जनसंचार और उसके माध्यम एक के बिना अधूरे हैं, अपर्याप्त हैं। जनसंचार और उसके वाहक माध्यम में अंगांगिभाव है। हम समाचार–पत्र पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं, दूरदर्शन देखते हैं। कम्प्यूटर में अपने भाव और विचार, अपने लेख टाइप करते हैं, अपनी कलात्मकता को आकार देते हैं, ई–मेल द्वारा अपने संदेश भेजते हैं, ब्लॉग द्वारा अपने विचारों को परस्पर बाँटते हैं, ट्विटर, फेसबुक द्वारा अपने विचारों को पूरे विश्व में पहुँचाते हैं–यानी सन्देश को पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों तक सम्प्रेषित करने के लिए विभिन्न स्रोत मौजूद हैं और इन माध्यमों की महत्ता के विषय में हम अच्छी तरह से परिचित हैं। यहाँ तक मार्शल मैक्लुहान का तो सूत्रवाक्य ही है कि 'माध्यम ही संदेश है'। फिर भी मुख्य तो संदेश ही है और संदेश और भाषा एक दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि संचार को व्यवस्था देने वाला पहला माध्यम भाषा ही है। प्रेस हो या मुद्रित शब्द, रेडियो हो या चलचित्र या दूरदर्शन–जनसंचार का प्रत्येक माध्यम भाषा से जुड़ा है। जनसंचार की भाषा के मुख्य दो रूप हैं–मुद्रित और श्रव्य। मुद्रित भाषा के लिए साक्षर होना आवश्यक है, श्रव्य के लिए नहीं। आपको यह तो ज्ञात ही है कि भाषा के मुद्रित रूप के विकसित होने के पहले से भाषा के श्रव्य रूप का अस्तित्व है। हमारी वैदिक परम्परा श्रुत परम्परा ही है। सहस्रों पद, भजन–गेय परम्परा से ही संरक्षित हुए हैं। शब्द के अलावा ध्वनियों, संकेतों, अभिनयादि के द्वारा भी भाव समझ सकते हैं, मौन की भी एक भाषा होती है। पुस्तकों, सन्दर्भग्रन्थों, पत्रिकाओं, समाचारपत्रों में मुद्रित शब्द का ही सारा खेल है, तो आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि में भाषा का श्रव्य–दृश्य रूप प्रयुक्त होता है। संक्षेप में जनसंचार के मुख्य घटक–समाचार–पत्र, रेडियो, दूरदर्शन तथा चलचित्र–भाषा के विविध रूपों का व्यवहार करते हैं। क्योंकि भाषा ही वह संचार व्यवस्था है जिसमें मानव के सारे क्रियाकलाप आ जाते हैं। संचार माध्यमों–चाहे वह प्रेस हो या इलेक्ट्रॉनिक माध्यम–उनके विकास की कल्पना भाषा के बिना नहीं की जा सकती है। जनसंचार माध्यमों के विकास के साथ–साथ भाषा का विकास और भाषा के विकास के साथ संचार माध्यमों का विकास होता चलता है। भाषिक प्रयोगों में समय और संसाधनों के अनुरूप परिवर्तन होते जाते हैं। आज नये भाषिक प्रयोग, नई शैलियाँ, नये अर्थ भाषाकोश में जुड़ रहे हैं। द्विभाषिकता या बहुभाषिक ज्ञान की महत्ता अब अच्छी तरह समझ में आने लगी है। अनुवाद का तो महत्व इस बात से ही सिद्ध हो जाता है कि आज अनुवाद को एक विज्ञान के रूप में देखा जाता है। तकनीकी विकास ने 'यूनीकोड' द्वारा भाषा की अपरिहार्यता को सिद्ध किया है। हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में–असमी, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया,पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिन्धी, तमिल, तेलगु, उर्दू– ये 22 भाषाएँ शामिल हैं। हमारे बहुभाषी राष्ट्र में अनेक सरकारी और गैरसरकारी संस्थान भाषाओं के प्रचार–प्रसार में जुटे हैं। यहाँ एक सार्वदेशिक प्रचार भाषा के रूप में हिन्दी को प्रचारित–प्रसारित किया जाता रहा है। सभी भारतीय भाषाओं के समानान्तर अंग्रेजी भाषा का भी

 ISSN 2231-0584

प्रचार–प्रसार भारत में निरन्तर हो रहा है। किसी भी समाज में भाषा के विविध रूपों की एक सीमा होती है और इसका निर्धारण और नियन्त्रण समाज द्वारा होता है। भारत में औद्योगीकरण के प्रभाव से अंग्रेजी के प्रयोग का आधिक्य होने लगा है तो वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का भी प्रभाव बढ़ा है।

भाषा पहला विकसित माध्यम है जिसने संचार को आसान किया है। जनसंचार में एक या एकाधिक व्यक्तियों द्वारा या किसी माध्यम द्वारा किसी सन्दर्भ में संदेश प्रेषित किया जाता है और श्रोता उस संदेश को ग्रहण करता है, उससे प्रभावित होता है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। जनसंचार के लिए माध्यमों की भूमिका अपरिहार्य है। यह कह सकते हैं कि जनसंचार और उसके माध्यम एक के बिना अधूरे हैं, अपर्याप्त हैं। जनसंचार और उसके वाहक माध्यम में अंगांगिभाव है। हम समाचार पत्र पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं, दूरदर्शन देखते हैं। कम्प्यूटर में अपने भाव और विचार, अपने लेख टाइप करते हैं, अपनी कलात्मकता को आकार देते हैं, ई–मेल द्वारा अपने संदेश भेजते हैं, ब्लॉग द्वारा अपने विचारों को परस्पर बाँटते हैं, ट्विटर, फेसबुक द्वारा अपने विचारों को पूरे विश्व में पहुँचाते हैं–यानी सन्देश को पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों तक सम्प्रेषित करने के लिए विभिन्न स्रोत मौजूद हैं और इन माध्यमों की महत्ता के विषय में हम अच्छी तरह से परिचित हैं। मार्शल मैक्लुहान का तो सूत्रवाक्य ही है कि 'माध्यम ही संदेश है'। फिर भी मुख्य तो संदेश ही है और संदेश और भाषा एक–दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि संचार को व्यवस्था देने वाला पहला माध्यम भाषा ही है। प्रेस हो या मुद्रित शब्द, रेडियो हो या चलचित्र या दूरदर्शन– जनसंचार का प्रत्येक माध्यम भाषा से जुड़ा है। जनसंचार की भाषा के मुख्य दो रूप हैं– मुद्रित और श्रव्य। मुद्रित भाषा के लिए साक्षर होना आवश्यक है श्रव्य के लिए नहीं। भाषा के मुद्रित रूप के विकसित होने के पहले से भाषा के श्रव्य रूप का अस्तित्व है।

भाषा में महत्वपूर्ण होते हैं–ध्वनि प्रतीक। तरह–तरह की ध्वनियों की प्रतीकों के रूप में इस्तेमाल करके 'भाषा' बनती है। ध्वनि–प्रतीक से बनते हैं। वर्ण या अक्षर, अक्षरों से बनते हैं शब्द और शब्दों के समूह से वाक्य। इस तरह शब्दों से बनी सार्थक इकाई का नाम वाक्य है। एक वाक्य पूर्ण क्रिया की ओर संकेत करता है। कोई भी भाषा मनुष्य के अनुभव जगत की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक भावना, क्रिया तथा विचार को वहन करने की क्षमता रखती है। भाषा का आविष्कार ही इसलिए हुआ है कि वह यह काम कर सके। जैसे–जैसे मनुष्य का व्यवहार–क्षेत्र व्यापक होता चला गया, भाषा की संचार–क्षमता भी उसी के अनुसार बढ़ती गई।''

जनमाध्यमों में भाषा के प्रयोग का स्तर बदलता रहता है। इसलिए हमें उनमें भाषा को अलग तरह से लिखने–पढ़ने और बोलने की जरूरत होती है। जैसे–जैसे मीडिया माध्यमों में बदलाव हो रहा है, वैसे वैसे जनसंचार की भाषा का स्वरूप निरंतर बदल रहा है। समाचार पत्रों, आकाशवाणी, टेलीविजन आदि में प्रतिस्पर्धा के कारण भाषा निरंतर बदल रही है। हमें प्रतिदिन उनकी भाषा–संरचना और शब्द प्रयोग में कोई न कोई गंभीर त्रुटि अवश्य मिल जाएगी। कई बार सहप्रयोग के स्तर पर भी असंगति सुनने को मिल जाती है। टेलीविजन के प्रसार के कारण यह सही है कि हिन्दी को एक नया प्रसार क्षेत्र मिल रहा है। वह व्यापक समाज तक पहुंच रही है। लेकिन उसमें विकार भी आ रहे हैं।'' भाषा प्रयुक्ति में ज्यादातर अंग्रेजी व आंचलिक शब्दों का प्रयोग रहता है। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण नये–नये तरीके सामने आ रहे हैं।

आज हिंदी भाषा के साथ–साथ तरह–तरह के अनुप्रयोग किए जा रहे हैं। अखबार की बात कहें तो उसकी भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे आम आदमी आसानी से समझ सके। समाचार–पत्रों में हिंदी के अलावा अंगेजी के भी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है,जिससे पढ़ने–समझने में आसानी रहे। आज भाषा में मिला–जुला रूप हमें दिखाई पड़ता है। पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञापनों की भाषा में खिचड़ी हमें प्राप्त होती है। हिंगलिश में बहुत सारे विज्ञापन अंगेजी भाषा में छपते हैं। हिंदी भाषा का अर्थ का अनर्थ हो जाना आज समस्या बन रही है, लेकिन फिर भी अखबार हो या टेलीविजन वहां तमाम तरह के प्रयोग हो रहे हैं। आज विज्ञापन अधिकतर हिंदी भाषा में छपते हैं। टेंडर, सरकारी सूचना हिंदी में ही प्रकाशित होती हैं। विज्ञापनों की भाषा का स्वरूप निरंतर बदल रहा है। उनमें हिंदी की भाषा का स्वरूप भी बिगड़ रहा है।

मुद्रण माध्यम की भाषा–हर कोई अपने पत्र–पत्रिकाओं की बाजार में उपस्थिति दर्ज कराने के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहा है। ऐसे में धन कमाने की लालसा ने जन्म लिया है। इससे मूल तत्व बिगड़ रहे हैं। अखबार की हिंदी सरल, स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण द्वयर्थकता से मुक्त, भाव व विचार की अभिव्यक्ति में सक्षम व रोचक होती है। उसकी भाषा को अल्प–शिक्षित व्यक्ति भी समझ लेता है और सुविज्ञ भी उसे पढ़ने में संकोच नहीं करता है। समाचारों की भाषा सरल व सुबोध होनी चाहिए। इसके लिए तद्भव शब्दावली के साथ सरल तत्सम तथा प्रचलित अरबी–फारसी–अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अभिव्यक्ति ही समाचार को महनीय बनाती है। समाचारों में तकनीकी शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो, तभी किया जाना चाहिए। समाचारों में सरल एवं

 ISSN 2231-0584

छोटे–वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। एक ही प्रकार के शब्दों अथवा वाक्यखंडों का बार–बार प्रयोग वर्जित है।

रेडियो की भाषा– रेडियो श्रव्य माध्यम है। रेडियो निरक्षरों की आवाज है। निरक्षर, युवा, बालक और प्रौढ़ सभी वर्ग के लोग उसे सुनते हैं। इसलिए भाषा अशिक्षितों को ध्यान में रखकर गढ़ी जानी चाहिए। भाषा इतनी सरल हो कि जो कोई उसे सुने वह समझ पाये। भाषा सरल, सुगम, स्पष्ट होनी चाहिए। हर कार्यक्रम में इसका ध्यान रखा जाना चाहए। वैसे प्रसारण में निम्न बातों का ध्यान दिया जाना चाहिए–बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। शब्द सरल, सुगम व स्पष्ट हों। वाक्य छोटे एवं रोचक हों। श्रोताओं की मानसिक स्थिति को ध्यान में रख कर वाक्य रचे जायें। प्रत्येक वाक्य ऐसा हो कि वह पूर्ण हो। श्रोताओं के विचारों को बढ़ाने वाली भाषा हो। रीति–नीतियों का पालन किया जाए।

आकाशवाणी की भाषा–देश की नब्बे प्रतिशत आबादी आकाशवाणी के माध्यम से ज्ञान, सूचनाएं और समाचार प्राप्त कर रही हैं, अपना मनोरंजन कर रही है। प्रत्येक सूचनातंत्र के समान आकाशवाणी पर भी विज्ञापनों की खूब भरमार है, परंतु सूचना,च समाचार, मनोरंजन वार्तालाप आदि की भाषा कुछ–न–कुछ भिन्ल्नता लिए भी होती हैं रेडियों की भाषा में सरलता, स्पष्टता, परिशुद्धता तथा उपयुक्त शब्द चयन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शब्दों जैसे भाजपा, सपा आदि का प्रयोग होता है। वाक्य छोटे तथा सारगर्भित होते हैं। क्रियाओं में प्रायः वर्तमान काल का प्रयोग किया जाता है। भाषा में ताजगी एवं नवीनता होनी चाहिए। यदि रेडियो पर विज्ञापन की बात आती है तो रेडियो पर विज्ञापनों की भाषा में नााटकीयता, रोचकता, विश्वसनीयता और सहजता अनिवार्य गुण है। रेडियो पर विज्ञापन की भाषा में निम्न विशेशताएं होती हैं–खिचड़ी भाषा, अरबी–फारसी का प्रयोग, इसमें आकर्षक और श्रुतिमधुर शब्दों का चुनाव किया जाता है। स्वच्छंदता, परम्परामुक्ति, प्रयोजनपरकता, जीवंतता, नाटकीयता इस भाषा की अतिरिक्त विशेषता है। वर्तमान में देखा जाए तो भाषा बदली है। हमारे पुराने गाने यदि सुने जाये ंतो उनमें मधुरता है। आज के हिंदी गानों में फूहड़ता, अश्लीलता अधिक है। उनमें हिंदी और इंग्लिश का ऐसा भद्दा प्रयोग किया गया है कि अर्थ का अनर्थ दिखाई पड़ता है। हालांकि हिंदी का प्रसार–प्रचार तीव्रता के साथ हुआ है।

टेलीविजन की भाषा– दूरदर्शन आज के समय में महत्वपूर्ण जनसंचार माध्यम है। दूरदर्शन ने आज शहरी जीवन में घुसपैठ कर ली है। चैनलों के माध्यम से हर प्रकार की सामग्री दर्शकों के सामने परोसी जा रही है, चाहे वह समाचार का क्षेत्र हो, ज्ञान का,

 ISSN 2231-0584

मनोरंजन का, वार्ता का और चाहे खेलों का, और विज्ञापन तो इन सबका अनिवार्य अंग ही है। टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले समाचारों की भाषा के दो रूपों के अभिदर्शन होते है–पहला, इस दृश्य–श्रव्य माध्यम के समाचारों की भाषा के सामान्य सिद्धान्त और दूसरा कुछ निजी चैनलों के भाषा–प्रयोग संबंधी अपने सिद्धान्त। सामान्य सिद्धान्तों के संदर्भ में कह सकते हैं कि इनकी भाषा, सहज, सरल और सर्वग्राही होनी चाहिए। दूरदर्शन सरकारी नियंत्रण में होने की वजह से भाषा मानक उसमें देखा जाता है। सैटेलाइट चैनलों में कुछ चैनलों में अंगेजी शब्द बहुत प्रयोग में आते हैं। लेकिन फिर भी भाषा पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। ''लोक व्यवहार की भाषा किसी भी समाज के विकास की द्योतक होती है। आम जनता की आवाज को जनता की भाषा में सहज रूप में सामने लाया जा सकता है। भारत जैसे राष्ट्र में जहां हर चार कोस पर वाणी में परिवर्तन हो जाता है, वहां भी लोक व्यवहार की भाषा के कारण उसकी संस्कृति और परंपरा जीवंत है। एक समय ऐसा था जब इंग्लैंड में अभिजात्य वर्ग की भाषा फ्रैंच थी, लेकिन उसका साहित्य लैटिन भाषा में लिखा जाता था। अंग्रेजी ग्रामीण और निचले तबके के लोगों की भाषा समझी जाती थी, जिससे लोक व्यवहार के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली इस भाषा में अपने इतिहास और संस्कृति को बचाए रखा।''

दूरदर्शन का लक्ष्य सभी वर्गों के दर्शकों तक समाचार पहुंचाना है, अतः भाषा ऐसी होनी चाहिए कि सभी उसे पूरी तरह समझ सकें। अतः इसमें तत्सम शब्दावली अथवा अंग्रेजी शब्दों के अधिक प्रयोग के प्रति मोह रखते हुए सभी प्रकार के प्रचलित शब्दों के प्रयोग की चेष्टा करनी चाहिए। टेलीविजन के समाचारों में सिर्फ 'वाचक' ही नहीं बोलता, चित्र भी बोलते है, अतः भाषा और चित्र में सामंजस्य बैठाना भी आवश्यक है। चित्रात्मकता दूरदर्शन का प्राणतत्व है। एक चित्र हजार शब्दों के बराबर होता है। चित्र समाचार के आभूषण तो होते ही हैं, साथ ही दर्शकों के मानस को मथने वाले भी होते हैं। दूरदर्शन के चित्र स्वतः बोलते हैं, दर्शकों को भाव विह्वल भी कर देते हैं। स्वागत समारोह, दुर्घटना, बाढ़, राजनीतिक रैली आदि के चित्रों में इस तथ्य को स्पष्टता के साथ लक्षित किया जाता है। टी0वी0 के समाचारों की भाषा में शब्दों के संक्षिप्त रूप व पर्यायवाची शब्द यदि प्रसिद्ध हैं तो उनका उपयोग किया जाए, अन्यथा एक बार संगठन, संस्था आदि का पूरा नाम देने के पश्चात् ही उसके संक्षिप्त रूप का प्रयोग उचित रहताा है। प्रश्नवाचक वाक्यों का कम से कम प्रयोग किया जाना चाहिए। भाषा में द्विअर्थी वाक्यों अथवा शब्दों का प्रयोग वर्जित है। विदेशी भाषाओं के अप्रचलित या अल्प प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी इसमें अपेक्षित नहीं होता। तकनीकी शब्दों का प्रयोग अत्यावश्यक होने पर ही करना चाहिए। हमारे बहुभाषी राष्ट्र में अनेक सरकारी और गैरसरकारी संस्थान भाषाओं के प्रचार–प्रसार में जुटे हैं। यहाँ एक सार्वदेशिक प्रचार भाषा के रूप में हिन्दी को प्रचारित– प्रसारित किया जाता रहा है। हिन्दी के सन्दर्भ में बात करते हुए हमें यह भी ध्यान रखना है कि सभी भारतीय भाषाओं के

 ISSN 2231-0584

समानान्तर अंग्रेजी भाषा का भी प्रचार–प्रसार भारत में निरन्तर हो रहा है। किसी भी समाज में भाषा के विविध रूपों की एक सीमा होती है और इसका निर्धारण और नियन्त्रण समाज द्वारा होता है। भारत में औद्योगीकरण के प्रभाव से अंग्रेजी के प्रयोग का आधिक्य होने लगा है तो वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का भी प्रभाव बढ़ा है।

आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में वाचिक, आंगिक, सात्विक और आहार्य अनुभावों की चर्चा की है। अनुभाव वे भाव हैं जो अनुभव के आधार पर निर्धारित होते हैं। किसी नाटक में अभिनय करने वाले अभिनेता जो हाव–भाव रंगमंच पर दिखाते हैं, वे अनुभाव हैं। इन हाव–भावों के प्रदर्शन के लिए अभिनेता पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करते हैं। वे रचनाकार द्वारा लिखे गये संवादों को दोहराते हैं–यह वाचिक अभिनय द्वारा होता है, डायरेक्टर के निर्देश से वे हाव–भाव प्रदर्शित करते हैं, यह आंगिक अनुभाव है; वे रंगमंच पर निर्धारित वेशभूषा में आते हैं, यह आहार्य अनुभाव है और इन सबके साथ वे अपने अन्दर मूल पात्र से एकाकार होकर उसके सुख–दुख, आँसू–हँसी, मूर्च्छा आदि आदि भावों का अभिनय करते हैं, यह सात्विक भाव हैं। आचार्य भरतमुनि का कहना है कि अभिनेता जितना अभिनय में कुशल होगा, नाटक उतना ही सफल और दर्शकों को प्रभावित करने वाला होगा। एक श्रेष्ठ संचार करने वाले को भी अभिनय कुशल होना चाहिए, तभी वह सम्यक् संचार कर पाएगा। समय, स्थान, परिस्थिति, श्रोता की स्थिति यह सब सम्प्रेषित अभिव्यक्ति को पहुँचाने में एक घटक का काम करते हैं। मतलब यह कि आप क्या सम्प्रेषित कर रहे हैं, इसकी अपेक्षा कैसे सम्प्रेषित कर रहे हैं, ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। (How you communicate is often more important than what you communicate)

जनसंचार माध्यमों की भाषा के लिए आवश्यक बिन्दु–जनसंचार माध्यमों की भाषा को लेकर कई बार बात उठी है। जनसंचार हेतु भाषा का अहम् रोल है–जनसंचार में यदि संचार किया जाना है तो भाषा को सरल और सरस होना पड़ेगा। सरल, सहज भाषा ही लोगों तक आसानी से पहुंच पायेगी। श्रोता या पाठक के लिए बोधगम्य हो जाती है। सरल और सहज भाषा में लिखे या बोले गये स्वर पाठकों या श्रोताओं को अच्छे लगने लगते हैं। पाठक रूचि लेता है। भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जो लोक में प्रचलित हों। प्रिंट मीडिया में कई तरह की विधाएं हैं। जिनके लिए अलग–अलग तरह से लेखन किया जाता है। भाषा में शब्दों के चयन पर विशेषतः ध्यान दिया जाता है। विचारों और भावों के संप्रेषण के समय भाषा स्वयं ही अपने शब्दों को खोज लेती है। हर वर्ग तक पहुंचने वाली भाषा का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। यदि भाषा में कठिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो पाठक, दर्शक या श्रोता को संदेश नहीं प्राप्त होगा। जो सूचनाएं मीडिया जनता तक पहुंचाना चाहता है, वह नहीं पहुंच पायेगा। यदि रेडियो के लिए लिखा जा रहा है तो उसके

 ISSN 2231-0584

लिए काफी ध्यान रखना पड़ता है। बोलचाल की भाषा का उसमें प्रयोग किया जाना चाहए। बोलचाल की भाषा श्रोताओं के मन–मस्तिष्क में वह शब्द बैठ जाते हैं। कुछ ऐसे शब्द जो अखबार में तो छप सकते हैं पर उनका प्रयोग रेडियो में नहीं हो सकता है। कठिन और जल्दी से समझ में न आने वाले शब्दों के प्रयोग से रेडियो की भाषा को जटिल बना देने से जो श्रोताओं के लिए काफी घातक साबित होगा और ऐसे कार्यक्रमों को श्रोता नहीं सुनेगा। यदि टी0वी0 के लिए लिखा जा रहा है तो दर्शकों के मनोनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। महिला, बच्चे, किसान, पढ़े–लिखे सभी के मनोविज्ञान को समझ कर लिखना चाहिए, चित्रों को दिखाया जाना चाहिए, दृश्यों के अनुरूप भाषा को पिरोया जाना चाहिए। जनसंचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है। उच्चारण, वर्तनी, लिपि आदि की सतर्कता बरतनी आवश्यक हो जाती है। मीडिया में प्रयोग की जाने वाली भाषा की वर्तनी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वर्तनी की त्रुटियों के होने से पाठक का मोहभंग हो सकता है, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। कई बार विद्वानों को वर्तनी को लेकर भ्रम हो जाता है, ऐसे में पटकथा लेखक एवं स्तंभी लेखक को शब्दकोश का सहारा लेना चाहिए। मीडिया में भाषा की गलतियां पाठक को असमंजस में डाल सकती है। इससे समाचार पत्र की गरिमा को नुकसान पहुंच सकता है। लिपि को भी लेखकों को ध्यान में रखना चाहिए। रेडियो और टी0 वी0 के कार्यक्रमों के लेखन के लिए लिपि के मानक तय किए जाने चाहिए। मानकीकृत रूप को मीडिया या जनसंचार माध्यमों में अपनाया जाना चाहए। व्याकरण की अशुद्धियों को दूर कर लिखा जाना चाहिए। कोष्ठक, उपविराम, पूर्णविराम, अल्पविराम, अर्द्धविराम, प्रश्नवाचक, विस्मयादिबोधक, निर्देशक आदि चिन्हों का सही प्रयोग किया जाना चाहए। टी0वी0 के प्रस्तुतकर्ता को इनका खासा ज्ञान होना चाहिए। इसके न होने पर एंकर द्वारा बोली जाने वाली भाषा दर्शकों को नही भाएगी।

जनसंचार की भाषा में दृश्यात्मकता होनी चाहिए। पाठक अखबार पढ़ रहा है या फिर वह रेडियो के माध्यम से कोई कहानी सुन रहा है तो उसके मन मस्तिष्क में ऐसे दृश्य उपस्थिति हो जाएं, जिससे स्टोरी अपने आप स्पष्ट हो जाए। ऐसी स्थिति पैदा करने का पूरा दारोमदार लेखक पर होता है। वह शब्दों का चयन करते हुए यह अनुमान लगाता है कि यह जनता को प्रभावित कर पायेंगे या नहीं डॉक्यूमेंट्री, कमेंट्री, उद्घोषणा आदि के समय लेखक की भाषा अलग होनी चाहए।

निष्कर्ष

भाषा का प्रयोग मीडिया में उद्योग की भांति हो रहा है। व्यवसायिक प्रतिष्ठानों, जनसंचार माध्यमों और प्रयोजनमूलक दृष्टि से हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। अब टेलीविजन,

 ISSN 2231-0584

कम्प्यूटर टेलीफोन और इंटरनेट सभी में भाषा का प्रयोग बढ़ रहा है। साहित्य की भाषा ने अपना रूप विकसित किया है। सोशल मीडिया ने भी अपनी भाषा में नवीन प्रयोग किए हैं। हिंदी भाषा प्रमुखता से जनसंचार माध्यमों की भाषा बनी है। सोशल साइट हो या फिर मुद्रण व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया–इन सभी में उसकी उपस्थिति सराहनीय कही जा सकती है। तकनीकी अवदान के कारण भाषा भी तेजी से विकसित हो रही है। इससे भाषा और शैली भी प्रभावित हुई हैं।

संदर्भ–सूची

[1]संचार के सिद्धान्त, कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, 2013, पृ0 24

[2]शर्मा, रामकिशोर, सम्मेलन पत्रिका, हिंदी और जनसंचार (डॉ0 वीरेन्द्र सिंह), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, जुलाई–दिसम्बर 2018, पृ0 86

[3]हरिमोहन, आधुनिक संचार और हिंदी, पृ0 141

[4]महादेवी साहित्य समग्र,3, पृ. 74

[5]हरिमोहन, आधुनिक जन–संचार और हिंदी, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली,2006, पृ0सं0 68

[6]वही, पृ0स 80

[7]जोशी, शिव प्रसाद व जोशी, शालिनी, संचार के सिद्धांत, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड, सितम्बर, 2011एपृ0 53–54

महात्मा गाँधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी

डॉ. मीना, गार्गी कॉलेज
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9910102571
ईमेल : meenahindi101@gmail.com

गाँधी के लिए भाषा का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। स्वभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर गांधी जी के वक्तव्य हमें उनके अफ्रीका से स्वदेश लौटने के समय से ही मिलने लगते हैं । 1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो आते ही उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया और महसूस किया कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो देश के ज्यादातर हिस्सों में बोली और समझी जाती है। उन्होंने देखा कि यह देश बहुभाषी देश हैं और हिन्दी में ही ऐसी विशेषता है जो देश को जोड़ने का काम कर सकती है। इसलिए 1906 में 'इंडियन ओपिनियन' नामक अपनी पत्रिका में हिंदी भाषा के महत्व को उजागर करते हुए उन्होंने हिंदी भाषा को मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा कहा। 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने संसदीय प्रणाली, अराजकता, आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, मशीन, युवा शक्ति, नारी मुक्ति के साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी पर भी अपने विचारों को रखा।[1]

उन्होंने 'हिन्द स्वराज' के रचना काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक लगभग 40 वर्षों तक निरंतर अपने भाषणों , लेखों , पत्रों में देश की भाषा के हल के लिए उसे एक राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में देखा। उनका मानना था कि स्वराज्य देश के करोड़ों भूखे , अनपढ़ , दलितों के लिए है तो फिर उनकी जन–सामान्य भाषा हिन्दी राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं बन सकती।[2]

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी गाँधी भारत के सम्पर्क में थे । वे 1915 में स्वदेश लौटे तो उनके व्यक्तित्व–कृतित्व के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। अब वे हमें एक राष्ट्रीय चिन्तक के रूप में दिखाई देते हैं। वे एक बैरिस्टर, पत्रकार, लेखक, नेता, लोकनायक के साथ ही भाषा चिन्तक भी थे। गाँधी की आरंभिक शिक्षा गुजराती, संस्कृत तथा अग्रेजी भाषा में हुई और बैरिस्टरी उन्होंने अग्रेजी भाषा में की। गाँधी ने अपनी पुस्तक हिन्द : स्वराज में लिखा कि मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा हमारी गुलामी की बुनियाद रखी। उन्होंने अपनी सत्ता को चलाने के लिए हर हथकंडा अपनाया। यहाँ तक कि हमें अंधविश्वासी बनाया। हिंदुस्तान के कुछ लोगों ने मैकाले के जाल में फंस कर अंग्रेजी भाषा की शिक्षा ली और स्थिति ऐसी हो गई कि सारा देश अग्रेजी भाषा का

 ISSN 2231-0584

गुलाम बन गया। धीरे धीरे अग्रेजी भाषा ही सर्वेसर्वा हो गई। उसकी अहमियत हर भारतीय के दिल में घर कर गई। अंग्रेजी भाषा ही राष्ट्रभाषा, मातृभाषा, ज्ञान की भाषा कही जाने लगी।[3]

गाँधी का अंग्रेजी भाषा के प्रति जो विरोध था उसे वे कई रूपों में देखते हैं–

1 अंग्रेजी भाषा ने देशी भाषाओं को अपदस्थ कर दिया।

2 अंग्रेजी भाषा ने हमें नपुंसक बनाया , कायर बनाया ।

3 अपने घर में ही अजनबी बनाया।

4 हमें अपना गुलाम बनाया और अपने ही घर, परिवार, समाज से दूर कर दिया।

हरिजन के 1947 के अंक में वे इस बात पर बार–बार जोर देते हैं कि इस अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे दिमागों को कंगाल बना दिया है, कमज़ोर कर दिया है और हमें साहसी नागरिकता के लिए कभी तैयार नहीं किया।

गाँधी जी देश में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव को देखकर चिंतित थे। वे यंग इंडिया में लिखते हैं बहुत से मामलों में, शिक्षा का एक ही अर्थ लगाया जाता है – अंग्रेजी का ज्ञान। वे मेरी नजर में यही हमारी गुलामी और निम्नता का चिह्न है। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि भारतीय भाषाएँ कुचल दी जाएँ और उनको पोषण न मिले। (यंग इंडिया, 1921)

उन्होंने स्वीकार किया है कि अपने देश में गर मुझे इंसाफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करना पड़े। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल नहीं सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए। यह कुछ कम दंभ है ? यह गुलामी की हद नहीं तो क्या है ? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी। '' (हिन्द स्वराज)

चित्रा जी ने ''गाँधीजी की भाषा नीति और भाषा चिंतन'' नामक अपने लेख में लिखा कि एक बार गाँधी जी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय गये। वहाँ उन्होंने 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' अंग्रेजी में लिखा देखा जिसने तीन चौथाई जगह घेर रखी थी और यही नाम हिन्दी में भी लिखा था पर बहुत ही छोटे अक्षरों में जो कि पढ़ा भी नहीं जा रहा था। इसे अंग्रेजी साम्राज्य का सबूत मानते हुए गाँधीजी ने अपने भाषण में कहा, अंग्रेजों को हम गालियाँ देते थे कि उन्होंने हिंदुस्तान को गुलाम बना रखा है लेकिन अंग्रेजों के तो हम खुद

 ISSN 2231-0584

गुलाम बन गये हैं। आज कोई यह कहता है कि मैं अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोल लेता हूँ तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है ?

गांधी जी ने स्पष्ट कहा कि वे अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी नहीं बल्कि वे उसके अंध – पूजा के विरोधी थे कारण इस अंग्रेजी ने सबको अपना गुलाम बना लिया। अतः उसका आधिपत्य खत्म करना होगा। अपनी भाषा का सम्मान करना होगा, उसका प्रयोग करना होगा। किसी का महल देखकर अपनी झोंपड़ी में आग नहीं लगानी चाहिए। कहने का भाव यह है कि हमें अपनी मातृभाषा को छोड़कर अंग्रेजी के पीछे नहीं भागना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार, अंग्रेजी आज इसलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यावसायिक एवं राजनीतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेजी यह सोच कर पढ़ते हैं कि उन्हें अच्छी नौकरी मिलेगी। लड़कियों को अंग्रेजी इसलिए पढ़ाई जाती है कि इससे उनकी शादी में सहूलियत होगी। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अपनी मातृभाषा हमारी माँ है। आज हम अंग्रेजी के साम्राज्य से निकल रहे हैं अतः हमें अंग्रेजी के जाल में से भी निकालना होगा। देश की जन सामान्य की भाषा अंग्रेजी नहीं है। हमें अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार करना होगा और हिन्दी भाषा को ही राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा बनाना होगा।[4]

विदेशी भाषा को सीखने में जो श्रम, जो समय ज़ाया होता है , वही समय अपनी भाषा को देना चाहिए। उन्होंने 2 सितंबर , 1921 के नवजीवन में लिखा था, अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़के और लड़कियों की शिक्षा बंद करा दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त कर दूँ । ''

गाँधी जी अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व को मानने से इनकार करते हुए कहते थे, ''यदि विदेशी भाषाएँ और संस्कृतियाँ मेरे घर को सुगंधित करें , तो मैं विदेशी समीर के लिए अपनी चट्टानें खोल दूंगा। किन्तु वे यदि तूफान बनकर मेरे घर को उखाड़ना चाहें तो मैं चट्टान की तरह खड़ा हो जाऊँगा।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका विरोध अंग्रेजी की गुलामी से था, वह गुलामी जो भारतीय भाषाओं को बर्बाद करने पर आमादा थी। भारत का भाषा संकट अंग्रेजी राज की देन है, इस राजनीति को गाँधी अच्छी तरह समझते थे।

उन्होंने हिन्द स्वराज में लिखा कि सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए। हिन्दू मुसलमानों के सम्बंध ठीक रहें, इसलिए हिन्दुस्तानियों को इन दोनों लिपियों का ज्ञान होना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल सकेंगें। अगर हम उनकी भाषा –नीति को गहराई से देखें तो उसमें अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार है और भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान दिलाने का संकल्प भी है। गाँधी की मातृभाषा गुजराती थी

और हिन्द स्वराज भी उन्होंने गुजराती भाषा में ही लिखा था। अंग्रेजी भाषा से उन्होंने बैरिस्टरी की। किन्तु भारत में स्थायी रूप से आने के बाद हिन्दी भाषाओं के शिक्षण, प्रचार तथा उनके विकास के लिए प्रयासरत और समर्पित रहे।

अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में मातृ–भाषा को लेकर उनका कहना था कि मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार माँ का दूध शिशु के विकास के लिए। उन के मन में सभी भारतीय भाषाओं के प्रति विशिष्ट सम्मान की भावना थी। वे अधिक से अधिक भाषाओं को सीखना उचित समझते थे। वे प्रत्येक भाषा के ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते थे लेकिन इसके बावजूद भी वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी मातृभाषा के रूप में हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे।[5]

वे बार–बार इस बात पर भी जोर देते रहे कि शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा न होकर मातृभाषा ही होनी चाहिए। जिस प्रकार माँ के दूध से बच्चे के शरीर का निर्माण होता है, उसी प्रकार मातृभाषा के माध्यम से उनके मन और बुद्धि का विकास होता है। शिक्षा का कोई दूसरा माध्यम कैसे हो सकता है ? यही तो प्रकृति का विधान है। (श्री मन्नारायण द्वारा ऑन एजुकेशन में उद्धृत)

उनका मानना था कि हमें सभी भाषाओं का सम्मान करना चाहिए। वे किसी भी भाषा के विरोधी नहीं थे। ''भारत के युवक और युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएं खूब पढ़े मगर मैं यह हरगिज नहीं चाहूँगा कि कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाये अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए ऊंचे से ऊँचा चिंतन नहीं कर सकता।''[6]

मातृभाषा का पक्ष लेते हुए उन्होंने कहा था–बच्चे विदेशी भाषा को सीखकर अपनी क्षमता और योग्यता का सही विकास नही कर पाते। जो लोग मातृभाषा को नही अपनाते, छोड़ देते हैं। ऐसा कर वे मातृभाषा का अपमान करते है, वह स्वदेशी कहलाने के लायक नही। महात्मागांधी ने बुद्धिजीवियों को विदेशी भाषा का परित्याग कर मातृभाषा में ही शिक्षा देने का आग्रह किया था। यद्यपि उनकी अधिकांश शिक्षा अंग्रेजी भाषा में हुई थी और विदेश से थी। खैर उन्होंने आर्य समाज की प्रशंसा की क्योंकि वहाँ गुरूकुलों में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया था। वे उन हिंदुस्तानियों से बड़े व्यथित रहते थे जो मातृभाषा का अनादर करते थे , उसकी उपेक्षा करते थे और अपनी मातृ भाषा का प्रयोग नही करते थे और अगर करते भी थे तो अपने को लज्जित महसूस करते थे। गाँधी जी ने यह स्पष्ट किया कि मेरी मातृभाषा चाहे कैसी भी क्यों न हो, चाहे उसमें कितनी भी कमियाँ क्यों न हो मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जैसे कि एक बच्चा अपनी माँ से चिपटा रहता है।[7]

महात्मा गाँधी हिन्दी को एक सीमित क्षेत्र की भाषा बनाए रखने के पक्ष में नहीं थे। वे इसे पूरे देश की भाषा और राष्ट्र को जोड़ने वाली भाषा के रूप में विकसित करने के पक्ष में थे। इसलिए उन्होंने इसे 'राष्ट्रभाषा' की संज्ञा दी थी । गाँधी जी ने लोगों को हिन्दी भाषा सीखने के लिए प्रेरित किया। हिन्दी प्रचारक, हिन्दी प्रचार– संस्थाएं बनायीं लोगों को हिन्दी तथा मातृभाषा में पत्र लिखने के लिए भी प्रेरित किया। गाँधी जी के नेतृत्व में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना, बड़ी संस्थाओं के कार्य क्षेत्र में उसका व्यापक विस्तार और फिर शिक्षा के क्षेत्र में भी सुव्यवस्थित करने के लिए वे हमेशा मार्गदर्शक बने। इस तरह उन्होंने देश को हिन्दीमय बना दिया। उनकी भाषा नीति का काफी विरोध भी हुआ परंतु काफी विरोधों, आपत्तियों, आलोचनाओं के बाद भी उनके हौसलें नहीं टूटे बल्कि समय के साथ और मजबूत होते गये और वे निरंतर चलते रहे।

राष्ट्रभाषा के प्रचार के दौरान एक बार गाँधीजी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूँगा हो जाता है। अतः भारत की भी एक राष्ट्रभाषा होना अनिवार्य है ताकि भारत अपनी बात बोल सके। उन्होंने भारतवर्ष के इस गूँगेपन को दूर करने के लिए भारत के अधिकतम राज्यों में बोली एवं समझी जाने वाली हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित एवं स्थापित किया। क्योंकि यही भाषा आपसी सहयोग, साहचर्य एवं प्रेम की भाषा है।[8]

गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्थापित करने में अग्रणी भूमिका निभायी। भारत आने के बाद 1917 में जब उन्होंने अपनी पहली सत्याग्रह यात्रा चंपारण से आरंभ की तो इसी दौरान 3 जून को उन्होंने एक परिपत्र निकाला था जिसमें हिन्दी की महत्ता के संदर्भ में लिखा था – ''हिन्दी जल्दी से जल्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले , यह ईश्वरीय संकेत जान पड़ता है। हिन्दी शिक्षित वर्गों के बीच समान माध्यम ही नहीं बल्कि जनसाधारण के हृदय तक पहुँचने का द्वार बन सकती है। इस दिशा में कोई देसी भाषा इसकी समानता नहीं कर सकती, अंग्रेजी तो कदापि नहीं कर सकती।''[9]

शिक्षा के क्षेत्र में भी राष्ट्रभाषा हिन्दी को बढ़ावा देते हुए महात्मा गाँधी ने अपने एक भाषण में कहा था –''हमारे देश में कई ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं,जो जल्दबाजी में अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में अपना मत व्यक्त कर देते हैं। अदालती भाषा के रूप में अंग्रेजी का वर्तमान दर्जा हमारे लिए कोई गौरव की बात नहीं है और न ही वह एक सच्ची जनतान्त्रिक भावना के विकास में सहायक ही है। करोड़ों आदमी कुछ सौ आधिकारियों की सुविधा के लिए एक विदेशी भाषा सीखें, यह पहले दर्जे की हिमाकत है। देश की केन्द्रीय सरकार को मजबूत करने के लिए एक सर्व सामान्य माध्यम की आवश्यकता प्रमाणित करने हेतु बहुधा हमारे विगत इतिहास से उदाहरण पेश किया जाता है। एक सामान्य माध्यम की आवश्यकता पर किसी को आपत्ति नहीं। परंतु वह माध्यम अंग्रेजी हो नहीं सकती।''[10]

गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के नामकरण में इतनी बार संशोधन एवं परिवर्तन किया कि हिन्दी –उर्दू दोनों ही क्षेत्रों में संदेह उत्पन्न हो गया। गाँधी ने स्वयं हिन्दी के लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी , हिन्दी –हिन्दुस्तानी , हिन्दुस्तानी , हिन्दी और उर्दू , उर्दू और हिन्दी , हिन्दी या हिन्दुस्तानी या उर्दू आदि के द्वारा हिन्दी को नये–नये नाम दिए जिसके कारण हिन्दी तथा उर्दू दोनों ही क्षेत्रों में गाँधी के साथ मतभेद उत्पन्न हुए। गाँधी मानते हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं के बीच जो खाई है तथा देश की विभिन्न भाषाओं में जो परस्पर दूरियाँ हैं, उन्हें समाप्त करना जरूरी है । इस खाई को पाटने वाला छोटा किन्तु कारगर सेतु है हिन्दी।

गाँधी ने स्वयं को अपनी मातृभाषा गुजराती की सीमाओं से बाहर निकालकर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ आत्मिक सम्बंध स्थापित किया। उन्होंने हिन्दी प्रचार तथा हिंदी शिक्षण का महाअभियान चलाया। देश के दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर एवं पश्चिम क्षेत्रों में, विशेष रूप से दक्षिण भारत में हिन्दी – प्रचार का जैसा आंदोलन गाँधी ने प्रारंभ किया तथा लाखों लोगों को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया, हिन्दी परिवार के लिए लाखों रूपये एकत्र करके अपने द्वारा स्थापित हिन्दी प्रचार संस्थाओं को दिये , हजारों हिन्दी प्रचारक एवं शिक्षक तैयार किए तथा अपने प्रियजनों , मित्रों , साथियों , बंधुओं तथा देश के नागरिकों को पत्र लिखे तथा मान – पात्रों को तैयार करने में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाओं का उपयोग करने का दबाव जैसा गाँधी ने डाला , वैसा उदाहरण देश में तो क्या विदेश में भी मिलना असंभव है।[11]

भारत को सुदृढ़ बनाने के लिए गाँधी जी ने जितना कार्य किया , उसमें से एक प्रमुख कार्य है हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना। भाषा के साथ – साथ भाषा की लिपि भी सर्वसामान्य लिपि होनी चाहिए। गाँधी ने अपनी भाषा नीति के अन्तर्गत लिपि के प्रश्न पर भी विचार किया। वे मानते थे कि देवनागरी लिपि विश्व की लिपियों में सर्वाधिक वैज्ञानिक और आदर्श लिपि है। गाँधी देश के लिए एक सर्व सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी लिपि का ही प्रस्ताव करते हैं। लिपि को लेकर उनका कहना था– ''स्वाभाविक है कि एक विशाल जनसमाज हिंदुस्तानी को देवनागरी लिपि में लिखेगा, लेकिन मुसलमान लोग एक अर्से तक या शायद हमेशा इसे उर्दू लिपि में ही लिखना चाहेंगे। हिंदुस्तानी उत्तर भारत के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है और देवनागरी अथवा उर्दू लिपि में लिखी जाती है। लेकिन मुझे यह उम्मीद है कि जब धार्मिक भेदभाव खत्म हो जाएगा और धार्मिक मेलजोल पुख्ता हो जाएगा तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक सौहार्द्र की भावना स्थापित हो जाएगी , तब दुनिया की सब लिपियों से अधिक वैज्ञानिक देवनागरी लिपि को उसका उचित गौरव अवश्य प्राप्त होगा , अर्थात् इसे सारे भारत में सर्वत्र अपना लिया जाएगा।''[12]

कहने की आवश्यकता नहीं कि जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं, जिस पर महात्मा गाँधी ने चिंतन न किया हो । फिर चाहे वो रामराज्य की बात हो, अहिंसा की बात हो, सत्याग्रह, स्वभाषा और स्वराज्य की बात हो – ये सभी गांधी चिंतन के प्रमुख बिंदु रहे हैं। उन्होंने प्रत्येक पहलू पर विचार के साथ समय–समय पर अपनी सुविचारित और सारगर्भित सम्मतियां भी दी ।गाँधी के भाषा संबंधी विचारों, कार्यों, उनके सम्पूर्ण दर्शन, उनके संघर्ष को कर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने एक राष्ट्रीय भाषा–नीति का स्वरूप प्रस्तुत किया। बहुभाषी देश के सम्मुख भाषा का एक भारतीय मॉडल प्रस्तुत किया। गाँधी ने कहा था कि मेरे मन में गुजराती होने की अपेक्षा भारत होने की ही प्रबल भावना है। गाँधी ने विदेशी भाषा के दंभ को, उसकी शक्ति के गढ़ को तोड़ा। हिन्दी की श्रेष्ठता को साबित कर उसे प्रतिष्ठित किया और उसे राष्ट्रभाषा , सर्वसामान्य भाषा, संपर्क भाषा , एकता –अखण्डता की भाषा, विश्व की भाषा, वैज्ञानिक एवं पूर्ण भाषा के रूप में देश के सम्मुख रखा।[13]

आज हिंदी भाषा कंप्यूटर, सिनेमा में, बाज़ार में, व्यापार में, विज्ञापनों में, अनुवाद तथा पत्रिकारिता में अपना एक अलग जगह बना चुकी है। यही कारण है कि उसकी पठनीय और लोक स्वीकृति दिन – प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अपने कईं आयामों को उद्घाटित करने वाली हिंदी भाषा वर्तमान स्वरूप देखते गांधी जी का सपना, उनकी सोच सब साकार होते दिखाई दे रहे है। अनेक रोज़गार संबंधी विभिन्न और बेहतरीन आयाम खुल चुके हैं और खुल रहे हैं। अपनी भाषा में असीम उन्नति करनी चाहिए, क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा में प्राप्त होगा। जिसमें अच्छे अच्छे विद्वान जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा।

संदर्भ–सूची

1 सहृदय, विशेषांक गाँधी चिंतन हिन्दी भाषा और साहित्य (नव उन्नयन), राष्ट्रीय आंदोलन हिन्दी और गाँधी, डॉ सविता सिहं, पृ – 111

2 गगनांचल, सितंबर– दिसंबर, 2019 , गाँधी का भाषा –चिंतन : हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ , डॉ कमल किशोर गोयनका , पृ – 31

3 वही , पृ – 32

4. गगनांचल , सितंबर– दिसंबर , 2019 , गाँधी का भाषा –चिंतन : हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ , डॉ कमल किशोर गोयनका , पृ – 32

5 हिन्दीकुंज.कॉम, गाँधी के प्रयासों से लेकर अब तक हिन्दी की राष्ट्रभाषा बनाने की अनुतरित आशा , डॉ शुभ्रता मिश्रा , वास्को –द – गामा, गोवा , 2016

6 aanch-org हिन्दी भाषा के प्रबल पक्षधर महात्मा गाँधी – कुमार कृष्णन , 2 अगस्त , 2017

7 गगनांचल , सितंबर– दिसंबर , 2019 , गाँधी का भाषा –चिंतन : हिन्दी और अन्य भारतीय

भाषाएँ, डॉ कमल किशोर गोयनका , पृ – 33
8 हिन्दीकुंज.कॉम, गाँधी के प्रयासों से लेकर अब तक हिन्दी की राष्ट्रभाषा बनाने की अनुतरित आशा, डॉ शुभ्रता मिश्रा , वास्को –द – गामा, गोवा, 2016
9 bharatdiscovery.org राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति सत्याग्रह – महात्मा गाँधी
10 सहृदय, विशेषांक गाँधी चिंतन हिन्दी भाषा और साहित्य (नव उन्नयन), राष्ट्रभाषा की अवधारणा और गाँधी, डॉ हरदीप कौर, पृ – 134
11 गगनांचल , सितंबर– दिसंबर, 2019, गाँधी का भाषा –चिंतन : हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ, डॉ कमल किशोर गोयनका , पृ – 34–35
12 राष्ट्रभाषा हिन्दी पर महात्मा गाँधी के विचार, सम्पूर्ण गाँधी वाड्मय से उद्धृत, पृ – 6
13 गगनांचल, सितंबर– दिसंबर, 2019, गाँधी का भाषा –चिंतन : हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाएँ , डॉ कमल किशोर गोयनका, पृ – 37

भक्तिकाल की सार्थकता

डॉ. राजमोहिनी सागर
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
हंसराज महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
मोबाइल : 9810888913
ईमेल : rajmohini.hrc@gmail.com

भारत अध्यात्मप्रधान देश है। ऋषि–मुनि, ज्ञानी–भक्त, योगी–तपस्वी, सिद्ध–नाथ, सन्त–महात्मा, पीर–पैगम्बर आदि अध्यात्मिक चिन्तकों के कारण अध्यात्म के क्षेत्र में भारत विश्व गुरु के गौरवमय पद पर सुशोभित रहा है। भारत का न केवल प्रत्येक जन प्रत्युत् प्रत्येक कण–कण आध्यात्मिक चेतना से अनुप्राणित है।

भक्ति का सम्बन्ध है– भक्त और भगवान से, जबकि भक्तिकाल साहित्येतिहास का विषय है। 'भक्ति का स्वरूप' नामक पुस्तक में डा. श्री राम लिखते हैं कि "मानव चेतना के तीन भाग हैं– ज्ञान, भावना और संकल्प। ज्ञान आदर्श के सत्य स्वरूप को जानना चाहता है, भावना उसके सुन्दर स्वरूप को अनुभव करती है और संकल्प उसके शुभ स्वरूप की प्राप्ति की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। आदर्श की ओर प्रत्यन करने वाला मानव वही हो सकता है, जो सत्य का चिन्तन करता है, सुन्दर की भावना करता है और उत्तम कर्म करता है। एक चीनी कहावत के अनुसार यदि मनुष्य को वर्ष भर का प्रारब्ध करना है तो उसे अन्न की कृषि करनी चाहिए, दश वर्षों का प्रारब्ध करना है, तो फलदायक वृक्ष आरोपित करने चाहिए और यदि सदैव के लिए प्रयत्न करना है तो अपने भीतर महापुरुष की सृष्टि करनी चाहिए। यह महापुरुषत्व सत्य, शुभ और सुन्दर की पराकाष्ठा प्रभु की संगति से ही सम्भव है।" इस प्रकार प्रभु की संगति का नाम भक्ति है और भक्ति की प्राप्ति के द्वारा भक्त प्रत्येक युग में समादृत ही नहीं होता, अपितु समाज भी मनसा, वाचा, कर्मणा भक्ति पद्धति का अनुशीलन कर इसे प्रत्येक युग में सार्थक बनाता है।

वैदिक वाड्.मय की ज्ञान–कर्म व उपासना की त्रिपथगा पुराणकाल व सूत्र काल में प्रवाहित होने के अनन्तर मध्यकाल में वैष्णव धर्म के जिस भक्ति–महार्णव में पर्यवसित हुई, वह न केवल वैष्णव धर्म के इतिहास में प्रत्युत् मध्ययुगीन भारत के इतिहास में भी निसन्देह एक असामान्य घटना थी। लोक जीवन की सुदृढ़ आधार भूमि पर प्रतिष्ठित यह भक्ति आन्दोलन वास्तविक रूप में जन आन्दोलन अथवा लोक आन्दोलन ही था। लोक जीवन

 ISSN 2231-0584

रूपी विस्तृत व अनन्त महोदधि का इससे बड़ा मन्थन शायद ही कभी हुआ होगा। इष्ट के प्रति पूज्य बुद्धिभाव या श्रद्धाभाव के अतिरिक्त इन कवियों की भावभूमि लौकिक होने के कारण इनका साहित्य जनसामान्य के अधिक निकट था।

भक्ति आन्दोलन में कृष्ण उपासना का चरम उत्कर्ष ब्रजमण्डल के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित मतों द्वारा ही हुआ है, जिन्होंने किसी न किसी रूप में भक्ति–तरु का सिंचन कर उसे पल्लवित पुष्पित कर लोक–जीवन के लिए–अनुकूल बना दिया। इन्होंने वृन्दावन को अपनी केन्द्रभूमि इसलिए बनाया, क्योंकि वह उनके इष्ट की लीला–स्थली थी। इन कृष्णभक्त कवियों ने अपने इष्ट को बैकुण्ठ से उतारकर जनजीवन में देखने का प्रयत्न किया और इसके साथ ही उस समय संस्कृत के प्रति पर्याप्त सम्मान का भाव होते हुए भी इन्होंने ब्रज की क्षेत्रीय जन भाषा को ही ग्रहण किया। परिणामस्वरूप इनके काव्य में जहाँ परिणाम की दृष्टि से जन भाषा का प्रयोग पर्याप्त रूप में हुआ, वहीं प्रभाव की दृष्टि से उनकी अनुभूति व अभिव्यक्ति को प्रगाढ़ता एवं उत्कृष्टता प्राप्त हुई, जिससे भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य की अमर निधि बन सका। जन भाषा के समुचित प्रयोग से यह साहित्य जनसामान्य के लिए सर्वथा व ग्राह्य बन सका है। लोक भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी भक्ति काव्य आज अत्यन्त सार्थक है।

भक्ति और उसकी रसानुभूति की प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व इसका सैद्धान्तिक पक्ष विचारणीय है। सामान्यतः भक्ति के दो प्रकार हैं– गौणी भक्ति तथा परा भक्ति। गौणी भक्ति के भी दो उपभेद हैं– वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति को मर्यादा भक्ति के नाम से भी जाना जाता है, जबकि रागानुगा भक्ति में भक्त अपूर्व प्रेमभाव की अनुभूति कर आनन्द लाभ करता है। रागानुगा भक्ति के भी रूपगोस्वामी ने दो उपभेद किए हैं (क) काम रूपा (ख) सम्बन्ध रूपा।

रूपगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ 'हरिभक्तिरसामृतसिन्धु' में भक्ति रस का विवेचन करते हुए भक्ति प्रकार की भाँति भक्ति–रस भी मुख्यतः द्विविध माना है– (क) मुख्य भक्ति रस और (ख) गौण भक्ति रस। मुख्य भक्ति रस पाँच प्रकार का है। शान्त, प्रीति, प्रेम, वत्सल– और मधुर। प्रीति और प्रेम भावों को उन्होंने क्रमशः दास्य एवं सख्य भावों के अन्तर्गत वर्णित किया है। गौण भक्ति रस के अन्तर्गत इन्होंने सात भेद माना हैं। ये हैं– हास्य, अद्‌भुत, वीर, करुण, रौद्र., भयानक और वीभत्स।

काव्य रस एवं भक्ति रस में पार्थक्य प्रकट करते हुए डॉ. विजयेन्द्र स्नातक 'राधावल्लभ सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य' में लिखते हैं कि "काव्यानन्द ब्रह्मास्वाद सहोदर हैं, जबकि यह साक्षात् ब्रह्मानन्द रूप है। भक्ति रस को स्वीकार करने वाले भक्तों के मत में भक्ति काव्य का चरम उद्‌देश्य दिव्य प्रेम के मार्ग से रसिक भक्तों को भवबन्धन से मुक्त कर उसे एक ऐसे आनन्द लोक में ले जाना है, जहाँ सांसारिक मायावी प्रपंच के बन्धन टूट जाते हैं। भक्त के मन में राधा–कृष्ण रति का अपार पारावार लहराने लगता है यद्यपि

 ISSN 2231-0584

इसमें संदेह नहीं कि भक्त को जिस भक्ति रस की अनुभूति होती है, वह काव्यानन्द से सर्वथा विलक्षण ब्रहमानन्द की भावभूमि पर प्रतिष्ठित है, भक्त कवि जब इस अनुभूति को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं तो उस समय उनके अन्तः करण में भक्ति–रसानुभूति सामाजिक की भाँति काव्यानन्द के सर्वथा अनुकूल ही होती है। हृदय में विराजने वाली गोस्वामी तुलसीदास विरचित कवितावली के परिप्रेक्ष्य में रस–बानगी इस प्रकार देखी जा सकती है–

दुलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, बेद सुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।।
राम को रूप निहारति जानकी कंचन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।17।।

प्रस्तुत छन्द में सीता जी की राम चन्द्र जी के प्रति अनन्य तन्मयता एवं आसक्ति की चरम स्थिति व्यक्त हुई है। प्रिय के प्रतिबिम्ब को देखकर सम्मोहित हुई सीता जी पांसा फेंकने की सुध खो बैठीं अथवा इस भय से कि हाथ हटाते ही कंकण के नग में स्थित रामचन्द्र जी के रूप का प्रतिबिम्ब न देख सकूंगी, क्षण भर भी अपने हाथ को न हटा सकीं। 'पल टारति नाहीं' के माध्यम से पुष्ट अनुभाव का प्रयोग श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में पूर्ण सहायक है। इसका महत्व आज भी रस दृष्टि से है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं– एक रूप में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं। दूसरे रूप में वे गोपाल हैं, गोपी जन वल्लभ हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है, पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। (मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. 128)। भक्ति आन्दोलन के सूत्रधारों को महाभारत के नायक की अपेक्षा द्वितीय रूप ने ही अधिक आकृष्ट किया, रसात्मक होने के कारण उन्हें यह नवीन रूप अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। श्री हरिराय ने 'श्री कृष्ण शब्दार्थ निरूपण' ग्रथ में कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है– 'कृष्' धातु सत्ता वाचक है और 'ण' आनन्द वाचक है। ये दोनों मिलकर कृष्ण बनते हैं, जो परमात्मा के वाचक हैं। सत्ता के विषय में आगे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि गोपी जनों के हृदय में विराजने वाली सत्ता का नाम ही कृष्ण है। आचार्य वल्लभ ने रसो वै सः, सर्वरसः आदि के आधार पर अपने इष्ट देव परब्रह्म श्री कृष्ण को रसात्मक बतलाते हुए उनके मधुर रूप का गायन किया है। उनकी 'सुबोधनी' आदि रचनाओं में भगवान श्री कृष्ण के मधुर रूप और भक्ति का विशद वर्णन हुआ है।

सूरदास ने श्री कृष्ण एवं राधा के संगमन का सुष्ठु चित्र उपस्थित किया है–
किशोरी अंग अंग भेंटी स्यामहिं।
कृष्ण तमाल तरल भुज साखा, लटकि मिली ज्यों दामिनी।

 ISSN 2231-0584

अचरज एक लता गिरि उपजै, सोइ दीन्हें करुनामहिं।
कछुक स्यामता स्यामल गिरि की, छाई कनक अगामहिं।

सूरदास का यह संयोग चित्र असंदिग्ध रूप से चित्रानुरंजन बन पड़ा है। आचार्य शुक्ल भ्रमरगीतसार की भूमिका में कहते हैं कि "संयोग सुख के जितने प्रकार के क्रीडा विधान हो सकते थे, वे सब सूर ने लाकर इकट्ठे कर दिए।"

रूप गोस्वामी ने विप्रलम्भ श्रृंगार का नवीन भेद 'प्रेम वैचित्र्य' वर्णित किया है। कृष्णदास की राधिका प्रेमातिशयता के कारण कृष्ण के मुखारविन्द का पान करते हुए अतृप्ति एवं विरह की अनुभूति करती है–

नैन–पुर करत पान न अघाति।
रूप–सुधा गिरिधरन लाल की छिनु–छिनु अति ललचाति।

इस प्रेम वैचित्र्य का मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि नायिका को चिरकाल के पश्चात् नायक के दर्शन हुए हैं, अतः निरन्तर प्रतीक्षा के परिणामस्वरूप उसकी तृषा इतनी बढ़ गयी है कि वह प्रिय दर्शन से सहसा शान्त न होकर और अधिक उद्दीप्त हो जाती है। इसमें राधा का कृष्ण के प्रति उद्यम रतिभाव व्यंजित हुआ है। नन्ददास ने इसे साक्षात् विरह की संज्ञा दी है। परमानन्ददास के सागर में वत्सल रस का सफल परिपाक मिलता है। सूर की भाँति परमानन्ददास भी इस रस के रससिद्ध कवि हैं। डॉ. गोवर्धन दास शुक्ल के शब्दों में– बाल भाव के विविध चित्र जो हम सूर में पाते हैं, परमानन्ददास जी में भी उसी गहराई के साथ मिलते हैं। उनके बाल और सख्य के चित्रण में विविध चेष्टाओं का वर्णन, सूक्ष्म निरीक्षण एवं बाल मनोविज्ञान उतनी ही विदग्धता और उतनी ही पूर्णता के साथ चित्रित हुआ है जितना सूर के काव्य में मातृ हृदय के उमड़ते हुए वात्सल्य भाव का स्वाभाविक चित्र उपस्थित हुआ है।

जागो मेरे लाल जगत उजियारे।
कोटि मदन बारों मुसकनि पर कमल नयन मेरे नैननि तारे।
संग लेहु ग्वाल बाल अरु बछरा जमुना के तीर जाहु मेरे प्यारे
परमानन्द कहति नन्दरानी दूर जिनि जाहु मेरे ब्रज रखवारे। प.सा. 77पद
यहाँ कवि ने यशोदा के स्नेह की पराकाष्ठा प्रदर्शित की है।

इस प्रकार इन कवियों की रसाभिव्यंजना बेजोड़ है और मानव जीवन के विविध रूपात्मक चित्रांकन अपने आप में अनूठे हैं। विशेषतः श्रृंगार और वात्सल्य रस के भाव चित्र अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से इनका महत्व असंदिग्ध है और प्रासंगिक भी।

 ISSN 2231-0584

आधुनिक भौतिकतावादी विश्व–मानस और मध्यकालीन भक्ति साधना

आज का विश्व–मानस भौतिकतावादी वैज्ञानिक दृष्टि से आकृष्ट होकर बौद्धिक तर्क और प्रत्यक्ष तत्वज्ञान में विश्वास प्रकट करता है और उसकी अधुनातन संस्कृति भौतिक सभ्यता के उपादानों को एकत्रित करने वाली संस्कृति बन गई है। आज का भौतिक विज्ञान प्रत्येक तत्व को प्रत्यक्ष प्रमाण से जानने की इच्छा रखता है। निष्ठुर और निर्मम भाव से सत्यानुसंधान की व्याकुलता आज के विश्व मानव की वैज्ञानिक दृष्टि के विकास का लक्षण है। जो बात आज बुद्धिग्राहय नहीं, उसे आज का विश्व–मानस कदापि मानने को तैयार नहीं है अर्थात् बौद्धिक विमर्श इसकी सबसे बड़ी सीमा है और विड़म्बना यह है कि आज का वैज्ञानिक गोचर जगत तक जिस पारदर्शिता से पहुँचता है वैसी सूक्ष्मता से वह मनोजगत् तक पहुंचने में असमर्थ है। परिणामस्वरूप धर्म, दर्शन, भक्ति, उपासना, अध्यात्म आदि को यथावत् स्वीकार करने में बुद्धिजीवी वैज्ञानिक असमर्थ है। जबकि भारतीय जीवन–दर्शन के मूल में आस्तिक भावना के परिणामस्वरूप भारतीय आध्यात्म–चिन्तन में भौतिकतावादी दृष्टि के लिए उच्च स्थान नहीं है। यही कारण है कि मध्ययुगीन भक्ति–साधना में ईश्वर विश्वास के साथ आध्यात्मिक चिन्तन की गहरी छाप उस युग में विद्यमान थी। तभी मानव का प्रयत्न प्रकृति विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अपनी चित्तवृति एवं मनोवेगों पर विजय प्राप्त करने की ओर अपेक्षाकृत अधिक था और उसकी प्रवृत्ति स्वसुख से ऊपर उठकर मानवमात्र के सुख की ओर अधिक थी।

पाश्चात्य विचारक और विश्व मानस–

आधुनिक युग में विश्व मानस को उन्नीसवीं शती से जिन पश्चिमी चिन्तकों ने प्रभावित किया, उनमें विश्व के प्रमुख चार वैज्ञानिक, दार्शनिक और विचारकों ने अपनी नवीन दार्शनिक तत्त्वचिन्तन में ईश्वर–भक्ति को स्थान नहीं दिया। सर्वप्रथम वैज्ञानिक विचारक डार्विन ने सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में दैवी शक्ति को स्थान न देकर विकासवाद के सिद्धांत द्वारा ईश्वर के अस्तित्व और उसकी क्रियाशीलता की भूमिका को न मानकर ईश्वर विश्वास को अंधविश्वास माना। दूसरे विचारक कार्लमार्क्स ने ईश्वरीय सत्ता, धर्म तथा उपासना पर परोक्षतः कठोर प्रहार कर सामाजिक न्याय एवं सुख–समता के लिए अर्थव्यवस्था को उत्तरदायी बनाया। ईश्वर, धर्म, चर्च और पूजा को पूंजीवादी लोगों का पाखण्ड बताया जो समाज का शोषण करते हैं। तृतीय दार्शनिक चिन्तन फ्राइड ने आस्तिकता को अस्वीकार करते हुए अवचेतन को स्वयं एक चेतना मानते हुए अच्छे–बुरे कर्मों की प्रेरक शक्ति माना। चतुर्थ दार्शनिक चिन्तन सात्र ने अस्तित्ववादी दर्शन से मनुष्य की सत्ता में आस्था प्रकट कर उसके अस्तित्व को मुख्यतः स्वीकार कर मनुष्य के क्रिया–कलाप के लिए अस्तित्व को ही स्थान दिया। परिणामतः ईश्वर, आत्मा, धर्म, भक्ति, उपासना आदि के लिए इनके दार्शनिक विवेचन में कोई जगह नहीं है। अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त पश्चिमी विचारकों ने पूर्णतः भक्ति–भावना को अस्वीकृत कर दिया। इस सन्दर्भ में हिन्दी भक्ति साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं कि "आज से सौ वर्ष पहले

 ISSN 2231-0584

डारविन और कार्लमार्क्स ने जिस प्रकार का वैज्ञानिक विकासवाद और आर्थिक साम्यवाद प्रस्तुत किया था, वह परवर्ती चिन्तकों द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ। यौन कुण्ठाओं को महत्व देने वाले मनोविश्लेषण शास्त्री फ्राइड ने डारविन और मार्क्स की मान्यताओं को निरस्त करके जो अवचेतनवादी आधार दिया वह भी कारगर साबित न हो सका। वस्तुतः भक्ति मध्ययुगीन भक्तों की देन है। मध्ययुगीन रसोपासक भक्तों ने अपनी भक्ति साधना को माधुर्य मण्डित कर जिस रूप में रसप्लावित किया, वैसा पहले किसी साधक या भक्त ने नहीं किया था।

परमाणु आविष्कारक वैज्ञानिक और विश्व–मानस

युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त मानव जाति को आगाह करते हुए सुप्रसिद्ध विचारक अल्बर्ट आइंस्टीन लिखते हैं।

"I know not with what weapons World War III will be fought, but World War IV will be fought with sticks and stones.

अणु और परमाणु के आविष्कारक वैज्ञानिकों ने अणु शक्ति को विश्व कल्याण हेतु प्रयुक्त करने का सपना देखा था, किन्तु विश्वशान्ति में उसका प्रयोग सम्भव नहीं हो सका। यूरेनियम का आविष्कार एवं उसका हाइड्रोजन बम तैयार करने का सफल प्रयोग अमेरिका में हुआ। इस यूरेनियम के साथ ही प्लूटोनियम का भी आविष्कार किया गया और इन दोनों पदार्थों से निर्मित बमों का प्रयोग 7 और 9 अगस्त 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी नामक जापान के शहरों पर किया गया, जिसका परिणाम भीषण विध्वंस था। यह मानवता को दहलाने वाला वैज्ञानिक कलंक साबित हुआ।

लेकिन अभी वैज्ञानिक इन पदार्थों द्वारा और अधिक घातक बम बनाने में संलग्न हैं; जैसे – हाइड्रोजन बम, नाइट्रोजन बम और रासायनिक बम आदि अधिक से अधिक संहारक बमों के निर्माण में विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील राष्ट्र अरबों रूपये खर्च कर सर्वनाश की तैयारी में हैं। एटमबम या फ्यूजन बम के बाद दूसरे नम्बर पर है– हाइड्रोजन बम (थर्मोन्यूक्लियर बम) यह धरती के तापमान की अतिशय वृद्धि कर धरती को आग के गोले के रूप में परिवर्तित करने में सक्षम है। नाइट्रोजन बम के प्रयोग से वातावरण में आक्सीजन समाप्त हो जाएगी और विषैले वातावरण द्वारा सृष्टि नष्ट हो जाएगी।

उक्त तीनों बम आणविक बम नहीं हैं। इसके बाद बारी आती है रासायनिक (कैमिकल) बमों की। इनके वायुमण्डल में गैसों द्वारा दूषित रसायनों के कारण सांस लेते ही जीवन नष्ट हो जाएगा। इन अल्ट्रावॉयलेट बमों का संहारक स्वरूप इतना भयानक है कि मानव जाति थर्रा उठती है।

 ISSN 2231-0584

विज्ञान एवं भक्ति

विचारणीय बात यह है कि विज्ञान जब भौतिक जगत् में भी विश्व कल्याण नहीं कर सका, तो आध्यात्मिक जगत् की चर्चा करना समीचीन नहीं है। विश्व में प्रेम, शान्ति, सौमनस्य, मैत्री, बंधुत्व आदि सद्‌गुणों की स्थापना विज्ञान की भौतिक शक्ति से सम्भव न होकर भक्ति की आध्यात्मिक शक्ति द्वारा ही सम्भव है।

एक विचारक लिखते हैं कि "भगवान का सच्चा भक्त किसी का शत्रु नहीं होता, मित्र की आँख से दूसरों को देखता है। समस्त विश्व को भगवान का प्रसाद, भगवान की दिव्य छटा का रूप और भगवान की आनंददायी लीला का विस्तार मानता है। यदि विश्व के भगवद्‌भक्तों और वैज्ञानिकों के योगदान को एक तुला पर रखकर देखा जाए, तो प्रतीत होगा कि भक्त की निश्छल, निष्कपट, वाणी ने संसार की असंख्य आत्माओं को शाश्वत शान्ति प्रदान की है और सौमनस्य का जो सुन्दर स्वस्थ वातावरण बनाया है, उसका सहस्रांश भी इन अणु आयुधों के आविष्कारक वैज्ञानिकों द्वारा नहीं हुआ। विज्ञान पदार्थ विधा तक सीमित रह गया, भक्ति पदार्थ से ऊपर उठकर भगवत्तत्व तक पहुँचकर संतोषामृत की वर्षा करने में सफल हुई। वैज्ञानिक मृत्यु का रहस्य नहीं समझ सके, भक्ति मृत्युंजय महामंत्र बनकर मृत्यु भय से छुड़ाकर भक्त को सच्चिदानन्द में लीन करने में समर्थ हुई। विज्ञान की संहारक शक्ति का अभी वैज्ञानिकों को सही बोध नहीं है। विज्ञान के क्षेत्र में जो धन, साधन, प्रयत्न और मानवीय शक्ति व्यय हो रहा है वह मनुष्य जाति के लिए कितना आत्मघाती है, इसका सही पता होने पर वैज्ञानिक स्पर्धारत राष्ट्र अध्यात्म और भक्ति की ओर अग्रसर होंगे तभी विश्व शान्ति और कल्याण सम्भव होगा। विज्ञान को पदार्थ से आगे बढ़कर परम तत्व की खोज में लगना होगा। परमतत्त्व के शोध का मार्ग ही भक्तिमार्ग है।" (सम्पादकीय, हितवाणी पत्रिका)

उपर्युक्त आधुनिक युग के सभी पक्षों पर विचार करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भक्ति एक सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक तथा सार्वजनीन शाश्वत वृत्ति है जिसे आधुनिक युग की सीमा में बद्ध नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही मध्ययुगीन भक्ति साहित्य भी अमरनिधि होने के कारण अध्येताओं के लिए प्रत्येक युग में प्रेरक व प्रासंगिक है।

भक्ति का प्रथम सोपान है, 'शरणागति' तथा अन्तिम सोपान है, 'परमपद की प्राप्ति'। श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में भक्ति को प्रत्येक युग के लिए प्रासंगिक स्वीकार किया गया है। संसार सागर को पार करने और कराने वाले सत्पुरुषों के लिए प्रभु 'अनुग्रह स्वरूप' ही है, इन प्रभु के चरणकमल रूपी जहाज का आश्रय लेकर स्वयं तो अनायास पार हो जाते हैं, किन्तु औरों के कल्याण के लिए भी वे इनके चरण कमलों की नौका स्थापित कर जाते हैं। इसी भाव को गुरुनानक देव जी की वाणी में नाम रूपी जहाज कहकर व्यक्त किया गया है।

 ISSN 2231-0584

नानक नाम जहाज है, चढे सो उतरे पार।
जो शरधा कर सेवदें, गुरू पार उतारन हार।।

परमपद के इसी गूढ़ रहस्य को प्रकट करते हुए सन्त कबीरदास जी कहते हैं–

सन्तो! सहज समाधि भली।
गुरू प्रताप जा दिन ते जागी, दिन दिन अधिक चली।।

मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान शंकर से यही वर मांगा है कि भगवान में, उनके शरणागत भक्तों में और आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे। स्वयं तो पूर्ण हैं ही, भक्तों की समस्त कामनाएँ भी पूर्ण करने वाले हैं।

अन्त में, हम भी अविनाशी प्रभु से यही कामना करते हैं कि हम सभी को प्रभु की अनन्य, अविचल भक्ति प्राप्त हो ताकि हम निश्छल व पवित्र अन्तःकरण द्वारा मध्ययुगीन भक्त कवियों की दिव्य भाव गंगा में अवगाहन कर स्वयं कृतकृत्य हों, साथ ही विश्व मानव भी इस अमरवाणी का लाभ उठाकर सच्चा सुख, सच्ची शान्ति व सच्चा आनन्द प्राप्त कर सके। निष्कर्षतः ईश्वरीय भक्ति एवं हिन्दी साहित्य का कालजयी भक्ति काव्य विश्व मानव के लिए सर्वथा ग्राह्य होने के कारण प्रत्येक युग में सार्थक हैं।

संदर्भ–सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर
2. डॉ. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली
3. रामचन्द्र तिवारी, मध्ययुगीन काव्य साधना
4. डॉ. सावित्री अवस्थी, नंददास, जीवन और काव्य
5. भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र, प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
6. भक्तिकाव्य की सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना, प्रेमशंकर, दि मैकमिलन क. ऑफ इण्डिया
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
8. भक्ति सिद्धांत : एक वियोगात्मक व्याख्या, डॉ. जगदीश्वर प्रसाद, नई कहानी, इलाहाबाद
9. भक्तिकाल, गोपेश्वर सिंह
10. मध्यकालीन साहित्य, डॉ. हरिशरण शर्मा।

 ISSN 2231-0584

नाट्यशास्त्र में संगीत–शास्त्र

डॉ गुंजन कुमार झा
मोबाइल : +919810909866
ईमेल : drgunjanjha@gmail.com

नाटक और संगीत की एक सहोदरी विकास–परंपरा है। नाटक की उत्पत्ति की जितनी भी कथाएं प्रचलित हैं और जितने सिद्धांत प्रचलित हैं उन सब के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटकों की उत्पत्ति का एक बहुत बड़ा आधार संगीत रहा है। उपलब्ध ग्रंथों में नाट्यशास्त्र आधारभूत ग्रंथ के रूप में देखा जाता है। नाट्यशास्त्र में 28वें अध्याय से लेकर 33वें अध्याय तक संगीत शास्त्र की गहन चर्चा है।

नाट्य–मंचन का सम्पूर्ण क्रिया–व्यापार संगीत से परिपूर्ण रहता है। नाटकों के आदिम भाग या पूर्वरंग का मंगलारंभ भी गीत, वाद्य तथा नृत्य से पूर्ण होता है। नाट्यप्रयोग के बीच में संगीत का योग निरंतर रहता है। अंक के आरम्भ तथा समाप्ति के समय पर तो गीतादि रहते ही हैं। नाट्यशास्त्र का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत, नाट्य में गीतों और वाद्यों की योजना, एक संतुलित रूप तथा विधान से करने के पक्ष में हैं जिसे उन्होंने 'अलात–चक्रप्रतिम'[1] कहकर समर्थित किया ।

नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय को 'आतोद्य–विधानाध्याय' कहा गया है क्योंकि यह वाद्य संगीत का विवरण देने वाला अध्याय है। संगीतशास्त्र के स्वर, आतोद्य, वाद्यवृन्द तथा गीत के साथ इनके आगे के अध्यायों में ताल, ध्रुवा और अवनद्ध वाद्यों की विस्तार से चर्चा की गयी है। यहाँ प्रायः आतोद्य शब्द का प्रयोग मुनि ने वाद्य, संगीत और गीत का प्रयोग वर्तमान में प्रचलित कण्ठसंगीत के लिये किया है। वस्तुतः 'आतोद्य' शब्द का अर्थ अमरकोष में चार वाद्यों का समूह या उनका समवेत–वादन दिया गया है जिसकी तुलना आधुनिक वृंदवादन या ;ऑरकेस्ट्रा से की जा सकती हैं।[2] नाट्यप्रयोग में इसका तीन तरह से प्रयोग किया जाता है– तत्, अवनद्ध तथा नाट्यकृत। तत् गान, अवनद्ध वाद्य और नाट्यकृत (नाट्य) के प्रयोगों को विविध श्रेय (विविध आकर्षण) वाले रखते हुए उन्हें 'अलात चक्र' के (बलबूते या बनैटी) के समान एक साथ मिले हुए रखना चाहिए।[3] इनको प्रयुक्त करने वाले गान्धर्व होते हैं जो देवताओं को अत्यन्त इष्टकर होते हैं। गन्धर्व का उत्पत्ति स्थान शरीर, वीणा तथा बाँसुरी होता है।[4]

 ISSN 2231-0584

स्वर एवं श्रुति

नाट्यशास्त्रा के 28वें अध्याय में भरत ने संगीत के सप्त स्वरों की गणना प्रस्तुत की है–

षड्जश्चऋषभश्चैव गन्धारो मध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्त च स्वराः।।28, 21।।

अर्थात् नाट्यशास्त्राानुसार सप्तस्वरों के नाम इस प्रकार हैं – षडज़, ऋषभ, गान्धार मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। यों श्रुति की परिभाषा नाट्यशास्त्र में नहीं मिलती तथापि इसमें स्वरान्तर्गत सूक्ष्म ध्वन्यंतरों का संकेत प्राप्त होता है। किसी स्वरसप्तक के अन्तर्गत स्वरों में श्रुतिविषयक पारस्परिक सम्बंध स्वर की चतुर्विध अवस्था का हेतु बन जाता है। इसके अनुसार स्वर के लिये वादी, सम्वादी, अनुवादी तथा विवादी संज्ञा है। संक्षेप में अपने स्वरूप का मुख्यतः अभिधायक होने से 'वादी' स्वर, स्वयं को वादी स्वर का सहायक बना लेने से संवादी स्वर, विरुद्ध स्वर होने से विवादी तथा अनुसरणात्मक वृत्ति या अप्रधान होने के कारण 'अनुवादी' स्वर कहलाता है।[5]

एक स्वर से दूसरे स्वर में श्रुतियों का अंतर होता है। चतुर्विध स्वरों में से सर्वाधिक स्पष्ट एवं मुखर होने के कारण वह अंश स्वर जो बहुल रूप से प्रयुक्त होता है वादी स्वर कहलाता है।[6] जिन दो स्वरों में नौ एवं तेरह श्रुतियों का अंतराल है वे संवादी स्वर हुए।[7] यदि इसे ग्रामों में उदाहरण के अनुसार समझें तो वह इस प्रकार होगा–

षड्ज ग्राम में सा–म, सा–प, रे–ध एवं ग–नि – इन स्वरों का आपस में परस्पर संवाद है। मध्यम ग्राम में सा–प संवाद को वर्ज्य कर शेष सभी सम्वादी युग्म षड्जग्रामवत् ही रहते हैं। सा–प के स्थान पर रे–प का संवादित्व मध्यम ग्राम का प्रमुख वैशिष्ट्य है।[8] वहीं विवादी स्वर वह है जिन के मध्य में बीस श्रुतियों का अंतराल है।[9] भरत के अनुसार रे–ग तथा ध–नि में बीस श्रुतियों का अन्तर होने के कारण ये परस्पर विवादी हैं। वहीं वादी, संवादी एवं विवादी के अतिरिक्त शेष सभी स्वर अनुवादी स्वर हैं।[10]

श्रुतियां स्वर की जननी मानी जाती हैं। भरत ने 22 श्रुतियों की अवस्थिति स्वीकार की है एवं उन पर सात स्वरों की स्थापना की है। भरत ने षड्ज तथा मध्यम दोनों ग्रामों में सप्त स्वरों के अंतर्गत कुल बाईस श्रुतियाँ बताई हैं। षड्जग्राम भरतकालीन शुद्ध स्वर ग्राम है इसका श्रुति–विभाजन निम्न प्रकार से है –

षड्ज से आगे तार षड्ज तक – 3, 2, 4, 4, 3, 2 तथा 4[11]

वहीं मध्यम ग्राम में पंचम को एक श्रुति उतार देना चाहिए। इस प्रकार उतारे हुए

 ISSN 2231-0584

(मध्यम ग्राम के) पंचम की एक श्रुति चढ़ाने और उतारने से अथवा पंचम से मार्दत (उतारने) और आयतत्व (चढ़ाने) से जो अन्तर होता है वही षड्ज और मध्यम के अंतर में प्रमाणभूत श्रुति होगी।[12] हालांकि सात स्वरों की शुद्धावस्था अपनी–अपनी श्रुतियों के आरम्भ में है अथवा अन्त में, इस सम्बंध में स्पष्ट निर्देश नाट्यशास्त्र में नहीं हैं तथापि हम दोनों स्थितियों में भरत द्वारा प्रतिपादित श्रुति–स्वर व्यवस्था का अध्ययन कर सकते हैं।

यदि स्वरों की स्थिति प्रारम्भिक श्रुति पर मान लिया जाए तो कुछ इस प्रकार की संरचना होगी–

श्रुति संख्या 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22

स्वर सा रे ग म प ध नि

वहीं स्वर की शुद्ध एवं प्रकृत अवस्था अंतिम श्रुति पर मानने से साधारण विधि की अन्वर्थता सिद्ध होती हुई दिखाई देती है। इसके अनुसार शुद्ध स्वरों की संस्थिति निम्नानुसार होगी–

श्रुति सं 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22

स्वर स रे ग म प ध नि

जहाँ तक दोनों में अधिक प्रामाणिक रीति का प्रश्न है तो नाट्यशास्त्र में स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं होता तथापि स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी अंतिम श्रुतियों पर होने की बात उपर्युक्त विवेचन से भरत.प्रणीत प्रतीत होती है।[13]

ग्राम एवं मूर्च्छना

स्वर चर्चा के बाद विस्तारपूर्वक ग्राम, मूर्छना, जाति आदि का विवरण प्राप्त होता है। 'ग्राम' शब्द समूहवाची है। जिस प्रकार कुटुम्ब लोग मिलकर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं उसी प्रकार संवादी स्वरों का वह समूह ग्राम है जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान रहते हों और जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलंकार इत्यादि का आश्रय हों।[14] ग्राम मूलतः स्वरों के समूह को कहा जाता है।[15] भरत ने दो ग्रामों की चर्चा की है – षडज ग्राम तथा मध्यम ग्राम।[16] स्वर दो प्रकार के होते हैं – शुद्ध तथा विकृत। इनमें शुद्ध स्वरों के आश्रय वाला प्रमुख 'षडजग्राम' तथा विकृत स्वर का आश्रय लेने वाला 'मध्यम ग्राम' है।[17]

 ISSN 2231-0584

इन्हीं में 22 श्रुतियों की अवस्थिति मानी गयी है।

यों ग्राम तीन प्रकार के माने गये हैं – षडज ग्राम, मध्यम ग्राम, गंधार ग्राम। किंतु इनमें से दो की ही चर्चा भरत ने की है। गंधार ग्राम की चर्चा नहीं की गयी है। सम्भवतः वैस्वर्य, अतितारत्व एवं अतिमंद्रत्व के कारण महर्षि भरत ने इसकी चर्चा आवश्यक नहीं समझा।[18] अधिकतर आचार्य गंधार ग्राम को अलौकिक उपयोग की वस्तु मानते हैं एवं लौकिक विनोद हेतु इसके उपयोग को निषिद्ध मानते हैं। नारद के अनुसार गंधारग्राम का प्रयोग स्वर्ग में ही होता है।[19]

षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम

षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम पर हुई स्वरों की स्थापना हेतु तुलनात्मक दृष्टि महत्त्वपूर्ण है–

षड्ज ग्राम

सा ➜4 श्रुति रे ➜3 श्रुति, ग➜ 2 श्रुति, म ➜4 श्रुति,प ➜4 श्रुति, ध ➜3 श्रुति, नि 2 श्रुति

मध्यम ग्राम–

म ➜4 श्रुति प ➜3 श्रुति, ध ➜4 श्रुति, नि ➜2 श्रुति, सां ➜4 श्रुति, रें ➜3 श्रुति, गं 2 श्रुति ➜

इन दानों ग्रामों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ षड्जग्राम का पंचम (प) 17वीं श्रुति पर है वहीं मध्यम ग्राम का 'प' 16वीं श्रुति पर आता है।[20] यथा–

मध्यम ग्राम–

1 2 3 4	5 6 7	8 9	10 11 12 13	14 15 16 17	18 19 20	21 22
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

इस स्थिति के दो परिणाम सामने आते हैं–

1. षडज ग्राम में सा–प में 13 श्रुतियों का अंतर मध्यम ग्राम में 12 श्रुतियों का रह गया है क्योंकि यहाँ पर मध्यम 17वीं की बजाए 16वीं श्रुति पर रह गया है (एक श्रुति कम हो गयी है)। फलतः मध्यम ग्राम में 'सा–प' संवादी स्वर नहीं रहे।

 ISSN 2231-0584

2. इसके उलट जहाँ षड्ज ग्राम में रे–प में दस श्रुतियों का अंतर रहने से वे आपस में संवादी स्वर नहीं थे (ध्यातव्य है कि 9वें एवं 13वें श्रुतियों के अंतर से संवादी स्वर होंगे) वहीं अब मध्यम ग्राम में 'प' के 16वीं श्रुति पर आने से इनका अंतर घट कर 9 श्रुति रह गया है और इस तरह 'रे–प' परस्पर संवादी स्वर हो जाते हैं।[21]

ग्राम की चर्चा के बाद मूर्च्छना की चर्चा है। 'मूर्च्छना' शब्द 'मूर्च्छ' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'चमकना' या 'उभरना' है।[22] नान्यदेव के अनुसार, जिस स्वर से आरोह शुरू होता है, उसी स्वर से जब समाप्ति हो तो मूर्च्छना होती है।[23] क्रमयुक्त सात स्वरों का जो आरोह – अवरोह हो उसे भरत ने मूर्च्छना कहा है तथा मन्द्र आदि तीन स्थानों की प्राप्ति करवाना इन मूर्च्छनाओं का प्रयोजन रहता है।[24] अतः मूर्च्छनाएं दोनों ग्रामों में सात–सात होंगी। षड्ज ग्राम में – उत्तरमंद्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता तथा अभिरूद्गता नामक सात मूर्च्छनाएं तथा क्रमशः षडज, निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गंधार तथा ऋषभ स्वर रहते हैं। इसी प्रकार मध्यम ग्राम में – सौवीरी हरिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गवी, पौरवी तथा हृष्यका नामक सात मूर्च्छनाएं हैं जो क्रमशः मध्यम, गन्धर, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत तथा पंचम स्वरों के साथ रखी जाती है।[25] यथा–

1. उत्तरमंद्रा– सा रे ग म प ध नि
2. रजनी– नि़ सा रे ग म प ध
3. उत्तरायता– ध़ नि़ सा रे ग म प
4. शुद्धषड्जा– प़ ध़ नि़ सा रे ग म
5. मत्सरीकृता– म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग
6. अश्वक्रान्ता– ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे
7. अभिरूद्गता– रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा

मध्यम ग्राम में भी सात मूर्च्छनाएं होती हैं, सौवीरी, हारिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, पौरवी और हृष्यका। इनके आरम्भिक स्वर क्रमशः म, ग, रे, सा, नि़, ध़, प़ हैं–

1. सौवीरी– म प ध नि सा रे ग
2. हरिणाश्वा – ग म प ध नि सा रे

 ISSN 2231-0584

3. कलोपनता– रे ग म प ध नि सा

4 शुद्धमध्या– सा रे ग म प ध नि

5 मार्गी– नि़ सा रे ग म प ध

6 पौरवी– ध़ नि़ सा रे ग म प

7 ह्रष्यका– प़ ध़ नि़ सा रे ग म

भरत ग्रामों को परिवर्तित करने का तरीका वीणा के माध्यम से बताते हैं। वीणा में षड्जग्रामिक शुद्ध गंधार को दो श्रुति चढ़ाकर (जिससे वह अंतर गंधार हो जाएगा) षड्ज को मध्यम हो जाने से षड्जग्राम का मध्यमग्राम हो जाता है और इसके विपरीत क्रिया रखने से मध्यमग्राम का षड्जग्राम हो जाता है। इसके बाद अंतर काकली, अंश, न्यास जैसे सांगीतिक पारिभाषिक शब्दों का विवरण है। शुद्धद्विश्रुतिक गांधार–निषाद को दो–दो श्रुति चढ़ाने से क्रमशः अंतर तथा काकली स्वरों की निर्मिति हो जाती है जो चतुःश्रुतिक हैं। भरत ने इन्हीं को 'साधारण' कहा है।[26]

जाति

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वर्तमान में रागों के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती के अनुसार रागों की जाति निर्धारित करने की परिपाटी प्रचलित है। भरत ने तदयुगीन मानकों के आधार पर जाति की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। रंजना और अदृष्ट 'अभ्युदय' को उत्पन्न करने वाला विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर 'जाति' कहलाता है।[27] ध्यातव्य है कि जातियाँ श्रुति, ग्रह, स्वर इत्यादि के समूह से जन्म लेती हैं इसलिए 'जातियाँ' कहलाती हैं।[28] जातियों से रस की प्रतीति उत्पन्न या आरम्भ होती है। अथवा 'राग' इत्यादि के जन्म का कारण होने से विशिष्ट – स्वरसन्निवेश 'जाति' की संज्ञा ले लेता है। ये जातियाँ मनुष्यों की ब्राह्मण आदि जातियों के ही समान हैं।[29] भरत ने जातियों का विवेचन गांधर्व के स्वर तथा पद दोनों के अंतर्गत किया है।

जातियों का विभाजन भरत ने तत्कालीन प्रचलित ग्राम संगीत के अनुरूप ही किया है। इनकी संख्या 18 मानी गयी है जिन्हें शुद्ध और विकृत कहा जाता है।[30] भरतोक्त जातियाँ निम्न हैं–

षड्ज ग्राम – षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी और षड्जमध्या। (कुल 7)

 ISSN 2231-0584

मध्यम ग्राम – गंधारी, मध्यमा, गंधारीदीच्यवा, पंचमी, रक्तगांधरी, गंधारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नन्दयन्ती, कर्मारवी, आन्ध्री तथा कैशिकी मध्यम। (कुल 11)

हम यह देखते हैं कि इन अठारह जातियों के नाम जिन सात स्वरों पर है वे दो प्रकार की हैं, शुद्ध और विकृत। षड्जग्राम में षाड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादी शुद्ध हैं। शुद्ध जातियाँ वे हैं जिनमें कोई स्वर कम नहीं होता और नामस्वर ही जिनमें अंश, ग्रह और न्यास होता है।न्यास स्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणों में विकार होने पर ये जातियँ विकृत कहलाने लगती हैं। फलतः जो शुद्ध हैं वहीं विकृत भी हो जाती हैं।[31]

उक्त अठारह जातियों में ग्यारह जातियाँ दो या कई जातियों के संसर्ग के कारण विकृत हो जाती हैं। परस्पर संयोग से इन जातियों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए षाड्जी और मध्यमा के संयोग से 'षड्जमध्यमा', गन्धारी ओर षाड्जी के योग से षड्ज कैशिकी, षाड्जी, गंधारी, मध्यमा और धैवती के योग से गंधारोदीच्यवती, गंधारी, पंचमी, मध्यमा और धैवती से मध्यमोदीच्यवती, गंधारी, पंचमी, और सप्तमी (नैषादी) के योग से रक्तगंधारी, गंधारी और आर्षभी से आन्ध्री, आर्षभी, पंचमी और गंधारी से नन्दयन्ती, नैषादी, आर्षभी और पंचमी के संसर्ग से कर्मारवी, गंधारी और पंचमी के मिश्रण से गंधारपंचमी तथा षाडजी, गंधारी मध्यमा, पंचमी एवं नैषादी के मिश्रण से कैशिकी जाति का निर्माण होता है।[32] इन जातियों में चार जातियाँ सदा सप्तस्वरा, दस पंचस्वरा और चार षट्स्वरा होती है। षड्जी, आन्ध्री, गांधारोदीच्यवा और नन्दयन्ती षट्स्वरा और अवशिष्ट दस जातियाँ पंचस्वरा भी होती हैं। जिन्हें पंचस्वरा कहा गया है वे कभी षट्स्वरा और जिन्हें षट्स्वरा कहा गया है वे कभी पंचस्वरा भी होती हैं।[33]

इन जाति गानों को जब नाटक में प्रयुक्त किया जाता था तो जाहिर है कि इनसे रसोद्भवता की भी अपेक्षा होगी ही। इसी कारण नाट्यशास्त्रकार ने विभिन्न रसों के अनुरूप विभिन्न स्वर को विभिन्न जातियों में बतलाया। जैसे षड्जमध्यमा और षड्जोदीच्यती जातियाँ क्रमशः हास्य तथा शृंगार रस में प्रयुक्त होते हैं। वीर और भयानक रस में षड्जी और आर्षभी जाति को प्रयुक्त किया जाता है जहाँ ग्राम स्वरों में षड्ज और ऋषभ रहते हैं। नैषादी जाति को निषाद तथा उसके अंश स्वर के साथ तथा षड्जकैशकी को गंधार के अंश स्वर के रूप में रखते हुए करूण रस में योजना की जाती है। इसके अतिरिक्त धैवती को अपने धैवत अंश स्वर के साथ वीभत्स तथा रौद्र रस में रखा जाता है।[34]

भरत ने इन जातियों के दस लक्षण गिनाए हैं और उन पर टिप्पणियाँ भी की हैं। जाति के दस लक्षण – ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, और आडुवित हैं।[35] जिस स्वर का प्रयोग सर्वाधिक होता है व जिस स्वर में राग पूर्ण रूप से रहता है वह अंश स्वर, गायन एवं वादन का आरंभ जिस स्वर से हाता है उसे 'ग्रह' स्वर, सप्तक के उच्च षड्जं (ऊँचा जाना) यानी ऊँचा स्वर 'तार' एवं नीचा स्वर 'मन्द्र' हुआ। भरत के

 ISSN 2231-0584

अनुसार जाति प्रयोगों में अंश स्वर से चौथे, पांचवें या सातवें स्वर तक तारस्थान में जाना चाहिए इससे ऊँचा जाना जाति प्रयोग में अभीष्ट नहीं।[36] जिस स्वर पर गीत या वादन की समाप्ति होती है वह न्यास स्वर।[37] जिस स्वर पर गीत या वाद्य प्रबंध के मध्य की समाप्ति होती है उसे अपन्यास स्वर।[38] अल्पत्व एवं बहुत्व स्वरों के अल्प एवं बहुल प्रयोग से संबन्धित हैं जिन्हें भरत ने 'अन्तरमार्ग' कहा है।[39] इसी 'अन्तमार्ग' को प्राप्त गाये हुए अनंश स्वरों में लंघन एवं अनभ्यास से एक बार यथा – जाति उच्चारण षाडवित और औडुवित है।[40] षाडव तथा औडव से यह अभिप्राय क्रमशः छः तथा पांच स्वरों से युक्त स्वरावलियों से होता है। भरत के अनुसार कुल अठारह जातियों में से चार नित्य – सम्पूर्ण हैं तथा षाडव जातियों की संभाव्य संख्या 14 है। अठारह जातियों में से औडुत्व केवल 10 जातियों में ही संभाव्य है।[41]

वर्ण, अलंकार तथा गीति

नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्ण एवं अलंकारों का स्थान पाठ्य तथा गेय दोनों में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। भरतप्रणीत पाठ्य स्वर, ताल, लय आदि से विरहित नहीं। नाटकांतर्गत पाठ्य के प्रभावशाली होने के लिये निम्न षट् गुणों का होना नितांत आवश्यक माना गया है – सप्त स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, द्विविध काकु, षट् अलंकार तथा पद अंग।[42] पाठ्यगत वर्ण उच्चारण की विविध भंगिमा से सम्बद्ध हैं।

संगीत के वर्ण के तहत गेय पदों की गानक्रिया को 'वर्ण' कहते हैं। संगीत के वर्ण के चार भेद भरत ने माने हैं – आरोही, अवरोही, स्थायी तथा संचारी। गेयपद के आलाप क्रम में स्वरों के ऊपर होने या उत्थान दशा आने पर 'आरोही', स्वरों के क्रमशः उतरने या नीचे बढ़ने पर 'अवरोही', स्वरों के सम स्थिर भाव में पुनरावृत्त होने पर 'स्थायी' तथा स्वरों के संचरण या आरोही–अवरोही भाव के मिश्ररूप में संयुक्त रहने पर 'संचारी' कहलाता है।[43] पाठ्य वर्ण के चार भेद निम्न माने गये हैं– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित पाठ्य के छः अलंकार बताये गये हैं – उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत तथा विलम्बित।[44]

अपने विभिन्न मिश्रणों के द्वारा ये 'वर्ण' अलंकारों को प्रकट करते हैं। वर्णाश्रित अलंकार कटक–केयूर के द्वारा पुरुष तथा नारी के शरीर की तरह गीति को अलंकृत करते हुए प्रेक्षकों या श्रोताजन का मनोरंजन करते हैं और इन अलंकारों से गीत और अधिक समृद्ध हो जाता है। ये प्रसन्नादि तैंतीस गीति के अलंकार नाट्यशास्त्र में भरत ने लक्षण आदि से युक्त दिखलाये हैं।[45]

वर्ण तथा अलंकारों से युक्त पद और लयान्वित गानक्रिया 'गीति' कहलाती है। अलंकारों के लक्षणों के बाद में इनका विवरण दिया गया है। कुछ आचार्य स्वर–धुनों के प्राचीन वर्गीकरण को गीति मानने के पक्ष में हैं।[46]

भरत ने गीति के चार भेदों की चर्चा की है– मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता तथा पृथला। द्रुत, मध्य और विलम्बित लय, गुरू लघु तथा प्लुत अक्षर युक्त तीनों यति तथा इक्कीस तालों से युक्त 'मागधी' गीति होती है। 'अर्धमागधी' में द्रुत मध्य लय गुरू तथा लघु अक्षर तथा मागधी की अपेक्षा आधे तालों की योजना रखी जाती है। 'संभाविता' में गुरू अक्षरों की बहुलता रहती है तथा 'पृथला' में लघु अक्षरों की।[47]

वाद्य तथा तालों का वर्णन

इसके बाद धातु एवं वीणा वादन से संबंधित कुछ पक्षों की चर्चा है। वीणा वाद्य को गीताश्रित रखने के लिए विशिष्ट स्थानों को निर्धारित किया गया है – तत्व, ओघ, अनुगत। इनको अनेक करणों के आश्रित रखा जाता है। इनमें 'तत्व' ठीक से गीतों के लय, ताल, वर्ण, पद, यति और अक्षरों को दिखलाता है। 'अनुगत' वह वाद्यवादन है जो 'गीत' के अनुगत या संगत करने वाला होता है। 'ओघ' ऐसे रूप वाला संगीत तत्त्व है जो आविद्ध धातु तथा करणों की प्रचुरता लिये हुए है, उपरिपाणि ग्रह मार्ग तथा द्रुत लय में रहता है और गीत के अर्थ से असंपृक्त होता है।[48]

पूर्वरंग के बहिर्गीत में वीणा वादन का भी मनोवेग से चित्रण हुआ है। नाट्य–प्रयोग के आरम्भ होने के ठीक पहले 'बहिर्गीत' के बारह प्रभेदों को रखा जाता है। इसके आश्रावण आदि बारह अंगों को अताल और सताल रखने की दशा में वीणा वादन रहता है। इस प्रकार यह एक संगीतमय पूर्वरंग हो जाता है जिससे आगे प्रस्तुत होने वाले नाट्यप्रयोग के लिये दर्शक तैयार हो जाए। यहाँ भरतमुनि ने स्वर, लय तथा ताल विषयक बड़े ही उपयुक्त निर्देश रखे हैं जो इन अंगों के प्रस्तुत करने में लगने वाले थे। इससे यही लगता है कि प्राचीन नाट्य विद्या के आचार्यों ने इन अंगों के प्रस्तुत करने में कितनी गम्भीर वृत्ति से संगीत के इन बिन्दुओं को विचार कर रखा था।[49]

भरत ने नाट्यशास्त्र में भारतीय संगीत के प्राचीनतम् वाद्य वीणा के प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[50] उन्होंने कुल चार प्रकार की वीणाओं का जिक्र किया है– 1. चित्राा 2. विपंची 3. कच्छपी तथा 4. घोषक। नाट्यशास्त्र का तीसवाँ अध्याय 'सुषिरातोद्यविधान' नामक अध्याय है जिसमें वंशी का, जो कि हवा में फूँक भरकर बजने के कारण 'सुषिर वाद्य' के रूप में मानी जाती है, का विवरण है। इसे भी भरत के समय वीणा के साथ ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[51]

सुर और ताल, संगीत के आधार हैं। संगीत के तीनों रूप गीत, वाद्य और नृत्य ताल पर ही आधारित होते हैं। ताल के विषय में भी नाट्यशास्त्र में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र का 31वां अध्याय 'तालविधानाध्याय' है। लघु, द्रुत, गुरू तथा प्लुत अक्षरों द्वारा परिमित की जाने वाली क्रियाओं के द्वारा गीत, वाद्य तथा नृत्य के परिमाण की

 ISSN 2231-0584

रचना करने वाला जो काल है वही 'ताल' कहलाता है।[52]

ताल के अंतर्गत तीन प्रकार के लयों– द्रुत, मध्य तथा विलम्बित और ताल के दो विभेदों – चतुरस्र एवं त्रयस्र का वर्णन किया गया है।[53] इसके प्रथम ताल क्रिया के दो भेद हुए– 1. निशब्दा 2. सशब्दा। इनमें निशब्दा कला संज्ञा है तथा इसके चार भेद हैं – आलाप, निष्काम, विशेष तथा प्रवेष। सशब्दा के भी चार प्रभेद – ध्रुव, शम्या, ताल तथा सन्निपात। इन सशब्दा क्रियाओं का ही 'पात' तथा 'कला' नामों से व्यवहार किया जाता है।

जिस स्थान पर ताल हो उसके प्रथम प्रहार को 'ग्रह' समझना चाहिए। यह ताल में तीन रूप से रहता है – समग्रह, अतीतग्रह तथा अनागत ग्रह। इनमें गीत, वाद्य तथा नृत्य के आरंभ के साथ जिसका काल हो वह समग्रह। जो गायन नृत्य या वाद्य के वादन के आरंभ होने के पूर्व रहता है वह 'अतीतग्रह' या 'अवपाणिग्रह' है जो ताल गीत, नृत्य या वाद्य में जहाँ उचित हो वहाँ न होकर उसके पीछे देने में आता है तो वह 'अनागतग्रह' या 'उपरिपाणि' है। सम अतीत और अनागतग्रह में क्रमशः मध्य, द्रुत और विलम्बित लय रखी जाती है।[54]

नाट्यशास्त्र नाटक के साथ ही साथ संगीत का भी आदिग्रंथ है। आगे चलकर संगीत शास्त्रों के लेखन और टीकाओं की परंपरा विकसित हुई किंतु नाट्यशास्त्र अपने समय तक विकसित हो चुके संगीत के आधार पर संगीत के तत्त्वों और सिद्धांतों की न सिर्फ व्याख्या करता है अपितु उसके संदर्भ में विस्तारपूर्वक हिदायतें भी देता है। नाट्यशास्त्र को ही आधार बनाकर आगे आने वाले शास्त्रकारों ने अपने सिद्धांतों का स्थापन और प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र नाटक और संगीत दोनों के आधार ग्रंथ के रूप में अपनी महत्ता रखता है।

संदर्भ–सूची

[1]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र** , सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, भाग – 4, पेज – 5.

[2]वही, पेज – 3.

[3]वही, पेज – 5.

[4]वही, पेज – 7.

[5]वही, पेज – 11.

[6]तत्रा यो यत्राांशः स तत्राय वादी। श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र**, भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 11.

[7]वही, पेज – 11.

[8]वही, पेज – 11.

[9]वही, पेज – 11.

[10]शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे : **भारतीय संगीत का इतिहास**, पेज–293–294

[11]वही, पेज – 295.

[12]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र** , भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 15.

[13]शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे : **भारतीय संगीत का इतिहास**, पेज – 296.

[14]मतंग : **भरतकोश**, पेज – 189

[15]ग्रामं स्वरसमूहः स्यात् मूर्च्छनादेः समाश्रयः। श्री भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र ;भाग–4, पेज – 22.

[16]वही, पेज – 14.

[17]वही, पेज – 23.

[18]अभिनवगुप्त : **भरतकोश**, पेज – 189

[19]प्रो. रामकृष्ण कवि : **भरतकोश**, पेज – 542

[20]शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे : **भारतीय संगीत का इतिहास**, पेज – 298.

[21]श्री कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति : **भरत का संगीत सिद्धांत**, पेज – 9.

[22]वही, पेज – 34.

[23]**भरतकोश**, पेज–502.

[24]व्ही, पेज–502,

[25]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्रा** ,भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज–18–19

[26]व्ही, पेज – 25.

[27]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र** ,भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 29.

[28]वही, पेज – 29.

[29]मतंग– **भरतकोश**, पेज 227

[30]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र** ,भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 31.

[31]**भरतकृत नाट्यशास्त्र**, बम्बई संस्करण, पेज–439, आचार्य कैलाशचंद्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धांत, 75

[32]वही, पेज – 76.

[33]वही, पेज – 76.

[34]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्रा** ,भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 63.

[35]**भरतकृत नाट्यशास्त्र**, बम्बई संस्करण, पेज–443 : आचार्य कैलाशचंद्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धांत, 78.

[36]वही, पेज – 78.

[37]वही, पेज – 78.

[38]वही, पेज – 83.

[39]वही, पेज – 83.

[40]वही, पेज – 84.

[41]शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे : **भारतीय संगीत का इतिहास**, पेज – 341.

[42]वही, पेज – 345.

[43]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र**, भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 64.

[44]शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे : **भारतीय संगीत का इतिहास**, पेज – 346.

[45]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र** , भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, पेज – 28.

[46]वही, पेज– 29

[47]वही, पेज – 79.

[48]वही, पेज – 90.

[49]श्री भरतमुनि प्रणीत **नाट्यशास्त्र**, भाग–4, सं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, प्रस्तावना भाग, पेज – 31.

[50]वही, पेज – 92.

[51]वही, पेज – 104.

[52]वही, पेज – 33.

[53]वही, पेज 110–111.

[54]वही, प्रस्तावना भाग, पेज– 41–42.

एक कदम पर्यावरण संरक्षण की ओर : गाँधी जी के विचार में

डॉ. संगीता वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
कमला नेहरू कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9811917248
ईमेल : sangeetavermaknc@gmail.com

वर्तमान में मनुष्य केवल भौतिकता में ही परमसुख तलाशने की कोशिश कर रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि विभिन्न प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो रहे हैं । प्राकृतिक संसाधनों का अनुपयोग ,अनियंत्रित जीवन प्रणाली, स्वसुख की चाह ,विश्व युद्ध की संभावनाएं आदि पूरे विश्व को त्रासदी की ओर धकेल रहे हैं और यही विसंगतियां सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रही हैं । मानव ने पृथ्वी का अधिक से अधिक दोहन करके उसके अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया है। अतीत के दो भयंकर विश्व युद्धों के बाद अगर अगला विश्वयुद्ध होता है तो प्रकृति का अस्तित्व बचेगा या नहीं यह कहना असंभव है। नित्य प्रति प्राकृतिक आपदाएं नवीन रूप धारण करके सामने आ रही हैं। वर्तमान स्थिति में मनुष्य गंभीर तनावों से युक्त है जिसके कारण व्यक्ति अपने पर्यावरण , प्रकृति, संस्कृति व भविष्य के लिए सोचने पर मजबूर हो गया है । आज संपूर्ण मानवता एक पर्यावरण संकट से जूझ रही है जो मानव के अस्तित्व पर ही खतरा पैदा कर रही है । विकास एवं आधुनिकता के नाम पर प्रकृति के साथ हो रहे अत्याचार से पृथ्वी संकट में आ गई है । पर्यावरण क्षरण एक ऐसा संकट है जो सभी राष्ट्रों को समान रूप से प्रभावित कर रहा है तथा खतरनाक दर से आगे बढ़ रहा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में विकास प्रक्रियाएं हमारे पर्यावरण के लिए अभिशाप साबित हो रही हैं। ज्यादा से ज्यादा विकास का अर्थ है ज्यादा से ज्यादा पर्यावरण का क्षरण होना ।

महात्मा गाँधी जी दूरदर्शी प्रतिभा के धनी थे । ऐसा लगता है वर्तमान में दुनिया जिस पर्यावरण संकट से जूझ रही है उसका अनुमान गाँधी जी ने पहले ही लगा लिया था । हालाँकि गाँधी जी ने स्पष्ट रूप से पर्यावरण पर कुछ नहीं कहा है किन्तु समय– समय पर उनके भाषणों, टिप्पणियों से उनके पर्यावरण संबंधी विचारों से हम अवगत हो सकते है – "जब इंसान को जीवन बनाने के लिए कोई शांति नहीं है तो उसे कोई जीवन को नष्ट करने का अधिकार कहां है ? मनुष्य की खुशी संतोष में निहित है। वह मनुष्य चाहे उसके पास अपार संपदा है,संतोष नहीं है तो वह अपनी इच्छाओं का दास बन जाता है। गाँधी जी के अंतर्निहित दर्शन का मुख्य बिंदु है –आवश्यकता न कि लालच कुछ आराम की विलासिता गाँधी जी का पूरा जीवन व्यक्ति,समाज, पर्यावरण मानवता के लिए एक विरासत है । इसलिए नहीं कि गाँधी जी ने पर्यावरण पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा है या एक बड़े बांध या

 ISSN 2231-0584

उद्योग या नदी स्वच्छ करने के लिए एक बड़ा आंदोलन खड़ा किया है । बल्कि उनका संपूर्ण जीवन एवं क्रियाकलाप पर्यावरण के लिए न केवल भारत बल्कि विश्व के लिए एक मार्गदर्शक का काम कर रहा है ।"[1] पर्यावरण के संबंध में उनके द्वारा की गई टिप्पणियों से हमें ज्ञात होता है कि कैसे उन्होंने किस प्रकार उन पर्यावरणीय समस्याओं का अनुमान लगा लिया था, गाँधी जी ने सतत विकास और उससे उत्पन्न पर्यावरण संकट को पहचान लिया था । जिनका वर्तमान में विश्व को सामना करना पड़ रहा है । ऐसे दौर में गाँधी जी की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है ।

'पर्यावरण' शब्द से तात्पर्य पानी ,पर्वत, नदी, जंगल , पक्षी, वनस्पति आदि के समन्वित रूप से है । प्रकृति के ये तत्व मनुष्य जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं । यदि देखा जाए तो गाँधी जी चिंतन या लेखक के संबंधों में 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है । गाँधी जी ने 'पर्यावरण संतुलन , 'प्रकृति संरक्षण' 'पारिस्थितिकी वैचारिकी' जैसा कोई आन्दोलन नहीं चलाया था । पर्यावरण शब्द का प्रयोग गाँधी जी के चिंतन में नया है । " गाँधी जी और पर्यावरण पर बात करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गाँधी जी के चिंतनीय लेखन में 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं मिलता। सच तो यह है कि प्राचीन काल से चले आ रहे हमारे संस्कृति बोध या भारतीय साहित्य लेखन में भी यह शब्द नहीं मिलता । यह शब्द तो अंग्रेजी के 'एनवायरमेंट' शब्द के अनुवाद के रूप में पिछले चार–पांच दशकों से हमारे यहां प्रचलन में आया है । स्पष्ट तो है पर्यावरण शब्द नया है पर इससे जुड़ी चिंता या चेतना नहीं है वह भारतीय संस्कृति के मूल में रही है । पर्यावरण का भी प्रायः हवा ,पानी, पर्वत ,नदी जंगल, वनस्पति,पशु –पक्षी आदि के समन्वित रूप से है तो मानना पड़ेगा कि यह सब सदियों से प्रकृति प्रेम या प्रकृति प्रेमी मैत्री के रूप में हमारे चिंतन संस्कार में मौजूद रहे हैं । उषा की प्रार्थना,सूर्य नमस्कार ,नदियों की स्तुति और आरती भूधर के रूप में वंदना ,वनस्पतियों में ब्रह्म के रोए की कल्पना जीवों के प्रति करुणा आदि बातें भारतीय जीवन शैली के अभिन्न अंग रही हैं ।"[2] भारतीय परंपरा की यही शाखा हमें गाँधी जी के चिंतन में दिखाई पड़ती है । गाँधी जी पर्यावरण शब्द का प्रयोग नहीं करते क्योंकि उनके समय में यह शब्द प्रचलित नहीं था लेकिन प्रकृति प्रदत अन्य मतों से उनका गहरा लगाव जरूर दिखाई देती पड़ता है । मसलन 20 अक्टूबर 1927 के यंग इंडिया के अंक में छपे एक लेख में कहते हैं – "जो प्राणी मात्र की एकता में विश्वास करेगा । वह चराचार ,पशु –पक्षी ,नदी पर्वत सबके सह अस्तित्व में विश्वास करेगा ।"[3]

गाँधी जी ऐसे प्रकृति सेवी नहीं थे जो सभी प्रकार के जीवन के बीच अंतः संबंधों को मानते हुए भी मानव की उत्तरजीविता के प्रति उदासीन रहे हो । वास्तव में पर्यावरणीय विचार उनके सामाजिक व्यवस्था के औद्योगिक मॉडल पर ध्यान केंद्रित करने से उभरे हैं । वह कहते है कि जो प्रकृति का दोहन मानव अल्पकालीन लाभों के लिए नहीं करेगा बल्कि इससे वह केवल वही चीजें लेगा जो मानव का अस्तित्व बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है । गाँधी जी को स्वीकार करना पड़ा कि न चाहते हुए भी प्रकृति के प्रति कुछ

मात्रा में दोहन करना पड़ता है। किन्तु हमको इतना आवश्यक रूप से एक कार्य जरुर करना चाहिए कि जहां तक हो सके इस दोहन को कम से कम मात्रा में किया जाये । गाँधी जी ने अपने एकीकृत दृष्टिकोण का विकास प्रकृति और इसके कार्यों पर मौलिक दृष्टि से नहीं किया था । बल्कि वह यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि अन्य मनुष्यों तथा प्रकृति को कम–से–कम हानि पहुंचाकर किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है । जो व्यक्ति पशु पक्षी, नदी, इत्यादि के सह–अस्तित्व में विश्वास करेगा वह उन सबके संरक्षण और सुरक्षा के बारे में भी सोचेगा । गाँधी जी के संबंध में यह शब्द सटीक बैठते है । ' यंग इंडिया ' के अंक में छपे एक लेख में हिन्दू धर्म की विशेषता बताते हुए यह बात कहते है कि "हिन्दू धर्म न केवल मनुष्य मात्र की बल्कि प्राणिमात्र की एकता में विश्वास करता है । मेरी राय में गाय की पूजा करके उसने दया धर्म के विकास में अद्‌भुत सहायता की है । यह प्राणिमात्र की एकता में और इसलिए पवित्रता में विश्वास रखने का व्यावहारिक प्रयोग है ।"[4] गाँधी जी व्यक्ति एवं प्रकृति के सामंजस्य से अहिंसक समाज को स्थापित करने पर बल देते है । जहाँ किसी भी मानव का दमन व शोषण न हो । स्वदेशी का भाव समाज में स्थापित हो । मानव प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके रहने लगेगा तो पर्यावरण की समस्या पैदा होगी ही नहीं । मानव श्रम, स्वदेशी, अहिंसा और सत्याग्रह की गाँधीवादी अवधारणा नई सदी के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व पर्यावरण चुनौतियों को हल करने के लिए बहुत उपयोगी होगी ।

जब तक प्राकृतिक संसाधनों, वनस्पतियों, नदियों, जीव जंतुओं का ह्रास करने वाली औद्योगिक पद्धति के बजाए मानवश्रम प्रकृति पर आधारित नहीं होगा तब तक अहिंसा की मानसिकता अपने पूर्ण रूप को ग्रहण नहीं कर सकती। "गाँधी जी ने मशीनीकरण के स्थान पर श्रम आधारित उद्योगों को महत्व दिया है। वह 'हिन्द स्वराज' पुस्तक में लिखते हैं कि – "ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैरह की खोज करना नहीं आता था । लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग यंत्र वगैरह की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम ही बने रहेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे उन्होंने सोच – समझकर कहा है कि हमें अपने हाथ –पैरों से जो काम हो सके वही करना चाहिए । हाथ पैरों का इस्तेमाल करने में ही सच्चा सुख है, उसी में तंदुरुस्ती है ।"[5]

आज हम ऐसे समय में जी रहे है जिसमें समस्त क्रियाकलाप औद्योगिक ढांचे पर ही निर्भर है । वर्तमान समय में सबसे चिंताजनक समस्याओं में से एक पर्यावरण की समस्या है। इसका सबसे बड़ा कारण औद्योगिक क्रांति के कारण मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधन का अनियंत्रित दोहन है । वर्तमान में मानव मशीनों एवं यंत्रों आदि का दास होता जा रहा है । औद्योगिकीकरण के द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति महात्मा गाँधी जी के विचार बहुत महत्वपूर्ण हो जाते है । महात्मा गाँधी जी का कहना था कि औद्योगिकीकरण में मानव और मशीनीकरण में मानव को प्राथमिकता मिलनी चाहिए न कि मशीनीकरण को । कहने का तात्पर्य यह है कि महात्मा गाँधी जी श्रमशक्ति के पक्षधर थे । आज के भौतिकता

 ISSN 2231-0584

वादी युग में मानव ने अपनी सुख–सुविधाओं के लिए किसी ना किसी रूप में भौतिक, रासायनिक, जैविक घटकों का दोहन किया है । यही आज मानव जाति के लिए सबसे बड़े संकट के रूप में देखा जा रहा है । गाँधी जी ने अपने विचार सादा जीवन उच्च विचार साधारण पंक्ति से बहुत बड़े महान संदेश की ओर इंगित किया था । उन्होंने कहा था कि आज के आधुनिकतावाद युग में औद्योगिकीकरण और शहरी पर्यावरण प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण है। परिवर्तन विकास की धुरी है सिद्धांत पर आज प्रत्येक राष्ट्र चल रहा है । गाँधी जी जी ने कहा था कि विकास समाज के मौलिक जरूरतों के अनुसार होना चाहिए । वायु प्रदूषण पर बात करते हुए गाँधी जी ने 1913 में दक्षिण सत्याग्रह आंदोलन के समय ही आने वाले समय में स्वच्छ हवा की कीमत बता दी "महात्मा गाँधी जी जब 1913 में दक्षिण अफ्रीका में अपने पहले सत्याग्रह आंदोलन की अगुआई कर रहे थे तभी उन्होंने यह महसूस कर लिया था कि आधुनिक समाज तक स्वच्छ हवा पहुंचाने में लागत आएगी । अपने एक लेख "की टु हेल्थ" (स्वास्थ्य कुंजी) में उन्होंने साफ हवा की जरूरत पर रोशनी डाली । इसमें साफ वायु पर एक अलग से अध्याय है जिसमें कहा गया है कि " शरीर को तीन प्रकार के प्राकृतिक पोषण की आवश्यकता होती है हवा, पानी और भोजन लेकिन साफ हवा सबसे आवश्यक है।"[6] इसीके आधार पर जनवरी 1918 को अहमदाबाद में भी गाँधी जी ने इन्हीं तीनों तत्व वायु ,जल और अनाज की आजादी की बात कही थी । गाँधी जी ने मानव जीवन के सतत विकास में परिवर्तन की बात की थी । सभा को संबोधित करते हुए देश की स्वतंत्रता के तीन आधार तत्वों को स्वीकार किया – हवा, जल, अन्न । "दुनिया में अकाल और पानी की कमी के संदर्भ में महात्मा गाँधी जी के विचारों को याद करना बहुत ही महत्वपूर्ण है । आजादी के लिए संघर्ष के दौरान वह गुजरात के काठियावाड क्षेत्र में होने वाले अकालों पर भी काफी चिंतित थे । पानी की कमी के मुद्दे पर उन्होंने सभी रियासतों को सलाह दी थी कि सभी को एक संघ बनाकर दीर्घकालिक उपाय करने चाहिए और खाली भूमि पर पेड़ लगाने चाहिए । उन्होंने बड़े पैमाने पर वनों के काटने का भी विरोध किया था । आज इक्कीसवीं सदी में गाँधी जी की बात और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है ।"[7] उनका यह भी कहना था कि यदि हम अपने भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 15 या 20 किलोमीटर से ज्यादा दूर के संसाधनों का प्रयोग करेंगे तो प्रकृति के अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाएगी। इसकी चेतावनी उन्होंने 1928 में ही दे दी थी । प्रकृति सबको सामान रूप से वायु प्रदान करती है, किन्तु उनको आधुनिक सभ्यता के परिणामस्वरुप औद्योगिकीकरण के प्रभाव के कारण मानव को इसकी भारी कीमत भविष्य में चुकानी पड़ सकती है ।

गाँधी जी का कहना था कि मानव के पास जीवन निर्माण की कोई शक्ति नहीं है इसलिए उसे जीवन को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है अर्थात पर्यावरण को नष्ट करना मृत्यु सामान है । " पूंजीवाद मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन देता है । मशीनीकरण स्वागत योग्य था यदि वह मनुष्य जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास होता, किन्तु नैतिकता के अभाव में और मुनाफा कमाने के एकमात्र ध्येय के कारण इसने बहुतों को कष्ट दिए । जब मशीनीकरण वहां लाया गया जहाँ मजदूर बहुत थे, इसने बहुतों को बेरोजगार कर

दिया । मशीनीकरण व आधुनिक अर्थव्यवस्था ने भौतिक पदार्थों को गुलामी पैदा की ।"[8]

गाँधी जी ने गांवों को केंद्र में रखकर ग्राम स्वराज के स्थापना हेतु चरखा ,करघा ,ग्रामीण और कुटीर उद्योग ग्राम पंचायत एवं सहकारी संस्थाएं राजनैतिक व आर्थिक सत्ता का विकेंद्रीकरण, अस्पृश्यता निवारण मद्य निषेध बुनियादी शिक्षा पर जोर दिया । कृषि एवं कुटीर उद्योग के संबंध में गाँधी जी का विचार ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र को एक सेतु से जोड़ना था ना कि पलायन का मार्ग तैयार करना । वे आपसी समझ को विकसित करना चाहते थे । भारत में गांवों के विकास एवं ग्रामीण सभ्यता को समझने का मौका उन्हें 1915 के बाद ही मिला । 9 जनवरी 1915 को वह अफ्रीका छोड़कर भारत आ गए ।भारत भ्रमण के दौरान उन्होंने जाना कि संपूर्ण भारत देश के गाँवों में बसता है । सबसे पहले उन्होंने 1917 में चंपारण बिहार के गांव के किसान आंदोलन फिर 1913 गुजरात खेड़ा किसान आंदोलन को बड़ी निकटता से समझा । गांव के कृषकों की दशा का अनुभव किया । 1913 में ही अहमदाबाद के मिल मजदूर आंदोलन से वह गांवों और शहरों के बीच के अंतर को भी समझने लगे थे । वस्तुतः ग्रामीण पैटर्न पर आधारित गाँधी जी का समाज आदर्श पर्यावरण युक्त समाज है । ग्राम स्वराज कृषि एवं कुटीर उद्योग तथा शिक्षा स्वावलंबन में समाज के संपूर्ण संरचना इस प्रकार समाहित है कि वह समाज का संतुलित रूप ले लेता है ।

वर्तमान पर्यावरणीय संकट, लालच, शोषण और वर्चस्व की गलतियों के परिणाम है । इसलिए वर्तमान की मांग है कि प्रकृति की बुनियादी ज्ञान तथा प्रकृति के नियमों का पालन किया जाए जीवन का प्रबंधन प्रकृति के मूल्यों के अनुकूल करना होगा। अतः वर्तमान विकास संकट गाँधी जी वादी रास्ते पर एक अलग दुनिया की परिकल्पना का मार्ग प्रशस्त करता है । अपने पूरे जीवन से गाँधी जी पर्यावरण और विकास के लिए अनुपम सबक मानवता के लिए छोड़ देते हैं। गाँधी जी का मानना है कि–

"1. मानव जाति को प्रकृति के अंग के रूप में ग्रहण करना चाहिए ना कि प्रकृति से अलग में कार्य करेगा । 2.पृथ्वी पर उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग मानव जरूरत मानव जरूरतों के लिए करेगा ना कि अपने लालसा पूर्ति के लिए । 3.मनुष्य अहिंसा का प्रयोग न केवल साथी मनुष्यों के प्रति बल्कि अन्य रहने वाले जीवन और निर्जीव के प्रति भी करेगा क्योंकि संसाधनों का अति उपयोग भी हिंसा के बराबर है । 4.अधिनायकवादी शीर्ष से नीचे की जगह से ऊपर की साझा दृष्टिकोण । 5.असंपोषित उपभोक्तावादी आत्मविनाशकारी दृष्टिकोण के स्थान पर संरक्षणवादी और टिकाऊ जीवन रक्षक दृष्टिकोण । 6.मनुष्य का मानव के साथ साझा और समाज में गरीब और बेसहारों के लिए देखभाल एक नैतिक दायित्व के रूप में । 7.मानव जाति यह जरूर सोचे कि एक साधारण गरिमामय जीवन के लिए कितनी वस्तुएं पर्याप्त है । 8.सभी विकास सामान्यतः स्थानीय आत्मनिर्भरता ,समता और सामाजिक न्याय के विकास को बढ़ाती है। 9. नैतिकता और संसाधन प्रयोग में आत्म अनुशासन विकास की सर्वोत्तम कसौटी है ।" [9]

 ISSN 2231-0584

गाँधी जी के अद्वितीय व्यक्तित्व के कारण ही दुनिया के महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि आने वाली पीढ़ियां शायद ही इस बात पर भरोसा करेंगी कि किस तरह का कोई इंसान कभी इस धरती पर भी चला था । जब तक प्रकृति का दोहन होता रहेगा तब तक विचारों की तरह पर्यावरण संबंधी विचार भी उनके हमेशा प्रासंगिक रहेंगे। गाँधी जी एक विचार से नहीं बल्कि मानवता के समग्र ज्ञान से परिचय रखते थे। चाहे वह राजनीतिक हो ,आर्थिक व्यवहार या फिर पर्यावरण हो , उनका ज्ञान जीवन के सभी क्षेत्रों में रहा । गाँधी जी ने मनुष्य को चोरी से,झूठ से ,फरेब से बचाने के लिए सत्य और अहिंसा से परिचित कराया । इसी तरह पर्यावरण नैतिकता के विषय में भी अपने विचार रखे । गाँधी जी कहते थे "मैं बहुत ही सरल व्यक्ति हूं इसलिए बात भी सरल कहता हूं ।" अपने जीवन को अपना संदेश मानने वाले अपने सिद्धांत और व्यवहार में कोई विरोधाभास ना दिखाने वाले गाँधी जी अपनी अमिट छाप छोड़ गए हैं ।

हमारा उद्देश्य 'जीने लायक स्थान तथा जीने योग्य जीवन' तथा हमारी जीवन शैली में बदलाव होना चाहिए । हमारी असीमित जरुरत और असीमित लालच को नियंत्रित किया जाना चाहिए । "गाँधी वाद हमें सिर्फ मानवता नहीं पूरे जीवहत्या के खिलाफ खड़ा करता है । सुंदरलाल बहुगुणा पेड़ों के काटने के खिलाफ होते हैं । पेड़ों पर चली कुल्हाड़ी चिपको कार्यकर्ता अपने सीने पर झेलने को तैयार हो जाते हैं तो यह क्या है ? नर्मदा को बांधने का असर बहुत बड़ी जनसंख्या पर पड़ेगा लेकिन कुछ लोग जो अपना सर्वस्व एक नदी को बचाने में झोंक देते हैं उनके पीछे यही गाँधीवाद की ही शक्ति निहित है । अनशन की शक्ति है । उपवास की शक्ति को नागरिक आंदोलन से जोड़ने का श्रेय तो गाँधी जी को ही जाता है । जंगल, जमीन बचाने के लिए अहिंसक तरीके से खड़े होना खुद भूखे रहकर दूसरों के कष्ट का एहसास करना, इस कष्ट के प्रति दूसरों में करुणा का भाव लेन की प्रेरणा यही तो गाँधी जी का भाव है ।"[10]

मानव पर्यावरण ह्रास करके समस्त मानव जीवन को विपत्ति के काल तक ले कर आ गया है । प्राकृतिक आपदाएं आज हमारे सामने कई रूपों में हमारे समक्ष आ रही है । इससे पहले प्रकृति अपने भयंकर रूद्र रूप में हमारे सामने आए , हमको पर्यावरण के बचाव के लिए आगे आना होगा । " नई सहस्त्रब्दियों के पर्यावरण संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए सभी मोर्चों पर नयेपन की आवशयकता है । समग्र विश्लेषण, ज्ञान, अतीत और सम्पूर्ण पारदर्शिता के तथा पूर्व के अनुभवों आदि को संहिताकरण करने की आवश्यकता है । जैसे – जैसे समय गुजरता जा रहा है गाँधी जी द्वारा बताए प्रारूपों की महत्ता बढ़ती जा रही है । गाँधी जी पारंपरिक मूल्यों व समकालीन सच्चाईयों के बीच समन्वय की मिसाल हमारे सामने रखते हैं । सत्य, अहिंसा, सादगी, चरित्र को व्यक्तिगत जीवन के क्रिया कलापों में लाने की वकालत की है । "[11]

अतः आज मानव भौतिक सुख की चाहत में दिन रात लगा हुआ है। जिसके कारण वैश्विक धरातल पर कई मतभेद उत्पन्न होते जा रहे है। वैश्विक युद्ध, धार्मिक युद्ध,

सामाजिक तनाव आदि मानवमात्र को विश्व में विभाजित किये हुए है । इन सब में सबसे खतरनाक स्थिति प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है जो कि मानव युद्ध स्तर पर करने में लगा हुआ है । एक सुरक्षित भविष्य तथा टिकाऊ संपोषित पर्यावरण की रक्षा हेतु गाँधी जी के मार्ग पर चलना ही होगा । साथ ही जो आधुनिक विज्ञान और प्रोद्योगिकी ज्ञान है उसे भी समुचित ढंग से प्रयोग में लाना होगा । हमारे दृष्टिकोण विकास और आर्थिक उन्नति पर मानव मूल्यों के साथ सामंजस्य पूर्ण होना चाहिए । गाँधी जी जब साधन और साध्य की बात करते हैं तो यंग इंडिया में लिखा है कि – जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य होगा । वास्तव में सृष्टिकर्ता ने हमें साधनों पर नियंत्रण (और वह भी बहुत सीमित नियंत्रण)दिया है ;साध्य पर तो कुछ भी नहीं दिया । लक्ष्य की सिद्धि ठीक उतनी ही शुद्ध होती है ,जितने हमारे साधन शुद्ध होते हैं ।"[12] पर्यावरण के संबंध में भी यही लागू होता है कि पृथ्वी पर मौजूद प्राकृतिक संसाधनों का ठीक से उपयोग किया जाए अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब ज्यादा से ज्यादा लाभ और लालच के उद्देश्य से किये गए कर्मों का दुष्परिणाम शीघ्र हमारे सामने होगा क्योंकि आधुनिकता और प्राकृतिक असंतुलन बाढ़,जलप्लावन,अतिवृष्टि,सूखा,अकाल आदि का कारण बनता है । वे लिखते हैं कि – " मैं नहीं मानता कि उद्योगीकरण हर हालत में किसी देश के लिए जरुरी ही है । मेरा विश्वास है कि आजाद भारत दुःख से कराहती हुई दुनिया के प्रति अपने कर्तव्य का ऋण अपने गाँवों का विकास करके और दुनिया के साथ मित्रता का व्यवहार करके और इस तरह सादा किन्तु उदात्त जीवन अपनाकर ही चुका सकता है । धन की पूजा ने हमारे ऊपर भौतिक समृद्धि के जिस जटिल और शीघ्रगामी जीवन को लाद दिया है ,उसके साथ 'उच्च चिंतन'का मेल नहीं बैठता,जब तक हम उच्च कोटि का जीवन जीना सीखें ।"[13] कहा जा सकता है कि गाँधी जी के विचारों को यदि हृदयंगम कर लिया जाए तो आज के समय में पर्यावरण की दिशा में एक पहल हो सकती है जो संपूर्ण मानवता के भविष्य के लिए सार्थक सिद्ध होगी ।

संदर्भ–सूची

1. गाँधी जी : एक अध्ययन, अनिल दत्त मिश्र, डार्लिंग किन्डरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली, पृष्ठ – 46
2. https://www.jansatta.com/politics/mahatma-gandhi-in-time-of-environment-crisis/47410/
3. वही
4. वही
5. वही
6. https://www.downtoearth.org.in/hindistory/पर्यावरण–और–सतत–विकास–पर–महात्मा–गाँधी जी –61346
7. वही

8. गाँधी जी : एक अध्ययन; अनिल दत्त मिश्र, डार्लिंग किन्डरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली
9. वही, पृष्ठ –246
10. https://hindimedia.in/environmental-seeds-in-matama-gandhis-nursery
11. गाँधी जी : एक अध्ययन, अनिल दत्त मिश्र, डार्लिंग किन्डरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. दिल्ली
12. स्वराज्य का अर्थ ,यशपाल जैन ,सस्ता साहित्य मंडल ,नई दिल्ली ,पृष्ठ –14
13. गाँधी जी ने कहा था, यशपाल जैन ,सस्ता साहित्य मंडल ,नई दिल्ली ,पृष्ठ –20

टोकरी में दिगंत; स्त्री संघर्ष और जिजीविषा

डॉ भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कमला नेहरु कॉलेज
मोबाइल : 9811599257
ईमेल : bhartiknc1@gmail.com

विद्रोह की प्रक्रिया व्यक्ति से होती हुई सामुहिक रूप धारण कर लेती है। स्त्री मुक्ति आन्दोलन भी इसका प्रमाण है । जिसके मूल में स्त्री अस्तित्व की चिंता , समस्या , शोषण और उसका विद्रोह है । स्त्री आन्दोलन के बहुत पहले से समाज में कुछ विलक्षण प्रतिभावान स्त्रियों में अपने अलग अस्तित्व का अहसास सदा से बना रखा था । इसलिए समस्त सामाजिक प्रतिकूलताओं के बावजूद स्त्री सूत्रकारों भक्त कवियों और थेरी गाथाओं की रचयितायों ने अपनी मुक्ति का रास्ता खोज निकाला था । वह रास्ता जो पितृसत्तात्मक समाज की लीक से परे अपने लिए नई संभावनाएँ और नए रास्ते खोजता है । परन्तु घर , समाज , परिवार आदि के चक्रव्यूह में फँसी स्त्रियों को उनके अस्तित्व से अवगत कराने में स्त्री आन्दोलन ने सशक्त भूमिका निभाई है । साहित्य में आज स्त्री लेखन पुरुष वर्चस्व को चुनौती देता है । स्त्री की संवेदनाओं , दर्द ,सुख , कल्पना , उनकी भाषा को नए सिरे से परिभाषित करता है । स्त्री लेखन के क्षेत्र में अनामिका का साहित्य एक ऐसा ही आधार है । परम्परागत परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श की बात करें तो अनामिका परंपरा को नया अर्थ देतीं है और कई बार परम्परा से नया अर्थ लेतीं भी हैं । इसमें केवल नारी का प्रलाप व अश्रु ही नहीं हैं । अपितु समय , सत्ता से संघर्ष के क्रम में अपने लिए सही स्थान की खोज भी साफ दिखाई देती है । इस दिशा में 'टोकरी में दिगंत ' अनामिका का महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है। जो थेरी गाथाओं के रूप में दर्ज किया गया है। बौद्ध धर्म ग्रंथ 'सुत्तपिटक' के अंतगर्त जो पाँच निकाय हैं उसमें से एक है खुद्दक निकाय । इसी खुद्दक निहाय के नवें भाग में 73 बौद्ध भिक्षुणियों की थेरी गाथाओं का संकल्प है। थेरी गाथाओं में संकलित थेरियाँ समाज की विभिन्न सरणियों से आई थीं ।" टोकरी में दिगंत " के माध्यम से अनामिका ने इन्ही थेरियों को स्त्री के अंतर्मन से जोड़ कर वाणी देने का प्रयास किया है । यहाँ है तृष्णा थेरी , स्मृति थेरी , भाषा थेरी, वितृष्णा थेरी, शांता थेरी, सरला थेरी , मुक्ता थेरी, जिजीविषा थेरी, घसियारिन थेरी, केतकी थेरी, उत्पल्वर्णा थेरी , मल्लिका थेरी, अभिरूपा थेरी , सुजाता थेरी , चंपा थेरी और अन्य अनेक थेरियाँ ।वास्तव में नारी मन की अनेक हलचलों को यहाँ थेरियों से वार्तालाप करते हुए प्रस्तुत किया गया है। स्वयं केदारनाथ सिंह के अनुसार ....

"आज के स्त्री लेखन की सुपरिचित धारा से अलग यह एक नई कलात्मक सृष्टि है

 ISSN 2231-0584

, जो अपनी पंक्तियों को पाठक पर बलात थोपने के बजाय उनसे बोलती बतियाती है और ऐसा करते हुए वह चुपके से अपना आशय भी उनकी स्मृति में दर्ज करा देती है ।"(1)

आज स्त्री विमर्श मूलतःदो दायित्वों का निर्वाह करता दिखाई देता है –पहला जेंडर स्टीरियो टाइप सोच पर प्रहार तथा दूसरा स्त्री मन और स्त्री शरीर की सही समझ का विकास ।स्त्री मन और उसकी देह को अलग– अलग मानना ही वास्तव में स्त्री दमन का मूल कारण है । स्त्री की देह से पुरुष समाज इतना आकर्षित रहा है कि उसने हमेशा उसे अपने अधिकार की वस्तु बना कर रखना चाहा है । बिना यह जानने का प्रयास किए कि स्त्री उस पुरुष का आधिपत्य स्वीकार करना चाहती है या नहीं । देह की सुन्दरता को अभिव्यक्त करते–करते तमाम नायिका भेद साहित्य का वर्ण्य विषय बने रहे। आज बाज़ार ने भी स्त्री की देह को आकर्षक , लपलपाती , सुन्दर वस्तु में बदलकर उसे एक ' पण्य वस्तु ' घोषित कर दिया । अनामिका ने अपनी कविता नायिका भेद में नवेलिका थेरी के माध्यम से यह बात स्पष्ट कर दी कि आज की स्त्रियाँ पुरुष समाज द्वारा स्थापित नायिका भेद की सीमाओं से कहीं आगे बढ़ चुकी हैं। मुग्धा, प्रगल्भा या सूरति गर्विता जैसी नायिकाएं आज बोर्ड की परीक्षाएँ देने में निरंतर संघर्ष कर रही हैं । स्वकीया का प्रेम केवल उसके पति तक सीमित ना रहकर समस्त दिगंत तक फैल गया है जिसके परिधि में पेड़– पौधे , जीव– जंतु ,चर–अचर , परिवार सब शामिल हो गया है । अभिसारिका , खंडिता , स्वाधीन पतिका , आदिभेद अब कहीं धूमिल हो गए हैं क्योंकि स्त्री के अपना अस्तित्व पहचानने की प्रक्रिया में सब बने बनाए भेदों के घड़े फूट गए हैं और नौ रसों का अनोखा घाल–मेल हो गया है । आज की स्त्री ने अपने लिए जो नारी स्वतंत्रता का कॉकटेल बनाया है वह उसकी ऐतिहासिक जीत है । इसलिए अनामिका के अनुसार आज की स्त्री मिश्र प्रजाति वाले बाँस के टूसे के सामान है ———

" बांसों की ऐसी प्रजाति

जिसका टूसा पड़ा रहता है

पचपन बरस धरती के भीतर

और फिर जब एक दिन चमकती है कहीं बदली

धरती की छाती दरक जाती है ।

फोड़– फाड़कर सारी चट्टानें

झाँकता है वह तभी "(2)

स्त्री विमर्श ने आज स्त्रियों को सत्य को सहने, कहने और अपने लिए नवीन सत्य को निर्मित करने की शक्ति दी है । जहाँ अनामिका की कविता में सुमंगल माता खुद को ठोकने पीटने वाले पुरुष के सामने धीरज खो चुकी है ,और कुछ अन्य थेरियाँ कविता में

स्त्री सत्य के लिए सत्याग्रही बन चुकी है । वहीं सुजाता थेरी उस पुरुष के सामने स्त्री सत्य का उद्घाटन करने में हिचकती नहीं । जो उसे हिदायतें देता रहता है कि मेरे साथ चलना है तो नतमस्तक चलो और कुतर्क करना है तो भाड़ में जाओ । समस्त स्त्री मन का विद्रोह सुजाता थेरी सामने रखती है कि अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ता हाँ पर उठकर भडभूंजे की आँख ज़रूर फोड़ सकता है। ऐसा सत्य सुनने की क्षमता पुरुष में कहाँ है इसीलिये ––

"उसने सुना और फोड़ दिया मेरा माथा

कि सत्य सुनने की उसमें ताकत नहीं थी "(3)

सत्य तो यह है कि आज धरती अपना पुरुष स्वयं गड़ना चाहती है । जिसकी धमनियां स्वस्थ और दृष्टि सम्यक होगी । जो स्त्री के चित्त की लों को निष्कम्प करें । आज वही सगा है जो मंथर गति से बढ़ना सीखाए जैसे युद्ध भूमि में हाथी बढ़ता है । स्त्री विमर्श का मूल बिंदु ही ऐसे पुरुषत्व को विकसित करना है जिसके समक्ष अर्धनारीश्वर का भाव कल्पना नहीं यथार्थ हो । जो स्त्री तत्व को भी उतना ही महत्वपूर्ण माने जितना पुरुष तत्व को । इसीलिए अनामिका कहती है कि–––

" बेटी हो तब तो चिंता ही नहीं

बेटाअगर हो तो सुबह का सूरज

उसमें प्रचंडता नहीं हो ,

लोभ , क्रोध और कामनाओं के अतिरेक से पीड़ित

ओजोन छिद्र भेदता

अतिशय पुरुष

नई धरती के किस काम का ? " (4)

नसीहत , चुड़ैल गली , स्त्री कवियों की जहालतें ,कविताओं के माध्यम से अनामिका स्त्री सच को सामने लाती है कि स्त्री को कोई समझना नहीं चाहता , उन्हें या तो पुरुष समाज से नसीहत दी जाती है कि ऐसा करो और ऐसा ना करो । पुरुष की हाँ में हाँ ना मिलाने पर उन्हें चुड़ैल नाम का संबोधन मिलता है। कविता की स्थिति भी स्त्री के समान ही है क्योंकि उसका कोई सहृदय श्रोता नहीं । कोई उसमें छिपे भावों की गहराई तक उतरना नहीं चाहता । स्त्री देह के समान कविता की भी बाहरी सजावट से पुरुष पाठक आकर्षित होता है । सब उसकी मांसलता के साथ उसके प्रेमी बने होते हैं, दोस्त कोई

 ISSN 2231-0584

नहीं होता । वह कितनी अकेली है अपनी इस ओछी मांसलता में । त्याग ,क्षमा , लज्जा , दया , सहिष्णुता धीरज ,वाक्कला जैसे गुणों को औरतों का गहना बताने वाले आसाराम बापू भटकों को राह दिखाने तथा संस्कृति को बचाने का ठीका सिर्फ स्त्रियों पर सौंपते हैं । मर्द तो गलती करते ही रहते हैं । निर्भया को बलात्कार की तकलीफें प्रतिभूति कर या सम्पदा कर की तरह झेलने की नसीहत सिर्फ आसाराम बापू जैसा पुरुष समाज ही दे सकता है ।

"आगे बोले पूज्यपाद

कन्या की भी दुर्गति में

उसकी अपनी भूमिका थी

सरस्वती मंत्र साधती

भाषा की कारीगरी से

भक्षक रक्षक बना ले जो ,वो ही है स्त्री । (5)

प्रस्तुत संग्रह में अनामिका ने बुद्ध को अनेक कविताओं के केंद्र में रखा है । जहाँ वह बार – बार प्रश्नांकित भी होते हैं और बेशक एक रोशनी के रूप में स्वीकार्य भी । प्रश्नांकित इसलिए क्योंकि अनामिका ने ही भूमिका में प्रश्न उठाया है कि क्या वास्तव में बुद्ध जैसे सम्बुद्ध व्यक्ति ने भी स्त्रियों को नीचा यानी पतन का द्वार सिद्ध करना चाहा है या इसके पीछे कोई और मंशा रही। अपने उत्तर में कवयित्री यह पाती हैं कि बुद्ध का अविश्वास स्त्रियों पर नहीं था बल्कि पुरुष के निग्रह पर था । इसलिए वह आम्रपाली को कहते हैं ———

" रह जाएगी करुणा ,रह जायगी मैत्री बाकी सब ढह जाएगा " (6)

थेरियों के रूपक में लिपटी हुई हमारे समाज व समय की सामान्य स्त्रियाँ प्रस्तुत संकलन में अपनी बेचैनी की राहत बौद्ध की करुणा में पाती हैं। काल संचेतना में नया विस्फोट ,नया धमाका कर नवीन तत्व दर्शन स्थापित करना चाहती है ———

" इस आलसी और महाधूर्त धैर्य के खिलाफ

जो बर्दाश्त करता है

सब कुछ तो बस इसलिए

 ISSN 2231-0584

कि आराम में नहीं पड़ें कोईअडचन" (7)

अपनी कविताओं के माध्यम से अनामिका स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान मानवीय भावनाओं का संचार करना चाहती हैं इसलिए वह अपनी कविता में बुद्ध को इसका वाहक बनाती हैं । खींच कर काल की हथेली वह अ से अभय लिखना चाहती हैं ।हरे– हरे पत्तों से आच्छादित एक टोकरी में अपनी उम्मीद रखना चाहती है क्योंकि उसने सीख लिया है कि दुःख ही तो करता है जीवन में जिजीविषा का संचार ।इसीलिये धरती पर एक साझा स्पेस चाहिये ———

'' धरती पर एक साझा स्पेस देख कर

बुद्ध संतुष्ट हुए '' (8)

भाषायी तौर पर यदि हम स्त्री विमर्श की बात करें तो समस्त स्त्री कवयित्रियों की भाषा अपनी अलग पहचान बनाए हुए है ।कहीं वह विद्रोहात्मक है और कभी रुढ़ियों और बन्धनों को तोड़ने पर उतारू है,कहीं वह अपने अंदर– अंदर भावनाओं कल्पनाओं का ऐसा समानांतर समाज निर्मित करती हैं जिसमें उसकी बात को भी उतना ही महत्व दिया जाता है ।उसके अनकहे शब्दों का भी अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है। इस भाषा के निर्माण में वह सभी बिम्ब ,सभी चित्र अपने रोजमर्रा के जीवन से उठाती हैं। अनामिका की भाषा भी उनकी नितांत अपनी है। उनकी भाषा में वह शक्ति है जो एक तरफ पुरुषवादी सत्ता की बखिया उधेड़ सकती है तो दूसरी ओर स्त्री दुःख पर बहनापे का मरहम लगा सकती है । उनकी कल्पना , बिंब सभी स्त्री का साझा दुःख– सुख बयान करने में समर्थ हैं । 'टोकरी में दिगंत ' संकलन भाषायी विमर्श में स्त्री की पहचान को सार्थक ढंग से स्थापित करता है । स्वयं अनामिका कहती हैं

"शब्द शब्द में गूंजती है वो अनहद सी ,

अवरुद्ध कंठ में उतरती है !

गूंगे का गुड है वह ,

बधिरों का अंतर्संगीत

यह भाषा जो हँसती हैं

सब अर्थों पर और अनर्थों पर

'इक दिन ऐसा आएगा , मैं रूंदूँगी तोय '–

 ISSN 2231-0584

ये तेवर उसी का है ।"(9)

केदारनाथ सिंह के अनुसार———

"समकालीन कविता के एक पाठक के रूप में मुझे लगा कि यह काव्य कृति एक नई काव्य भाषा की प्रस्तावना है जो व्यंजना के कई बंद बड़े दरवाजों को खोलती है और यह सब कुछ घटित होता है। एक स्थानीय केंद्र के चारों ओर । कविता की जानी –पहचानी दुनिया में यह सबाल्टर्न भाव बोध का हस्तक्षेप है, जो अलक्षित नहीं जाएगा।" (10)

प्रस्तुत संकलन में अनामिका द्वारा अनेक बिम्बों का प्रयोग किया गया है जो उनके स्त्री चेतना को स्पष्ट रूप से सामने रखते हैं । यहाँ बिम्ब हैं उसके सपनों के ,यादों के ,चाहतों के अकेलेपन के उसकी यथा स्थिति के जिससे वह हर पल जूझ रही है ,जैसे इच्छाओं का ट्रैफिक जाम, इखरी–बिखरी यादों का जूडा, बूढी पटरानी की तरह एक दुःख ,मृत्यु मुहल्ले की लडकी, खूंटे से बंधें हुए मन को, साझा स्पेस ,दुम मेरी सत्याग्रही,टेसुए भा देती हो, सिगरेट की पन्नी भर सपने, माचिस भर उम्मीद, एक अधूरी चिट्ठी ,काल कोठरी में सुरंग, अपराध बोध, कुंठा प्लास्टिक मनो भाव हैं। यह झुटपुटा ही अब मेरा खुदा है ,पाल लिया मैंने अपना अकेलापन ,भीगी बरसाती सा अपना वजूद टांगती हूँ में ,तू ही बाबा की पगड़ी, ग्रह चक्र साथ ही नहीं छोड़ता,आस भर नम मुस्कुराहटें ,छींके पर टंगा हुआ है मेरा मन वैसे , वीजा एक नए उर्वर प्रदेश का। अनामिका के रचना लोक में भाषा एक नया अर्थ खोलती है बशर्ते उसे समझा जाए ।यहाँ भाषा केवल अभिव्यक्ति नहीं बल्कि एक जीवन संगिनी है इस लिए वह उन पहलुओं को भी सामने ले आती है जिन्हें खुद स्त्री अपने से भी छिपा कर रखना चाहती हैं । मीनाक्षी मुखर्जी के अनुसार ———

"अनामिका अपने लोक को बखूबी जानती हैं ।जैसे ही रचना लोक में प्रवेश करती हैं ,जीते जागते जानदार चित्र सामने आते हैं। भाषा बदल जाती है ।सारे मुक्ति संघर्षों के सूत्र उनसे ही जुड़ते हैं ...एक मुकम्मिल तस्वीर बनती है और मुक्ति का आधार व्यापक होता चला जाता है ।स्त्री मुक्ति के नए आयाम यहाँ खुलते हैं। अनामिका के यहाँ स्त्री मुक्ति मानव मुक्ति का उत्स है ।" (11)

" टोकरी में दिंगत " वास्तव में सम्पूर्ण स्त्री चेतना का मूलाधार है। जहाँ बुद्ध की करुणा है, थेरियों का साहस है ।दिंगत तक फैला स्त्री तत्व है जो टोकरी जैसे मन में समाहित हो चुका है ।ऐसा मन जो छींके पर टंगा नितांत अकेला नहीं बल्कि उसने अपना दायरा सम्पूर्ण दिगंत तक फैला दिया है।———

''हो– हो –हो अच्छा ही होता है हो जाना

घर का न घाट का !

जो दोनों खूंटों से छूट गया ,

बढ़ जाता है उसके जीवन का दायरा !

फूटेगा मटका–

तब ही तो वह सागर होगा !" (12)

संदर्भ–सूची

1.अनामिका ,टोकरी में दिगंत ,थेरी गाथा 2014,राजकमल प्रकाशन ,फ्लेप पर से ।
2.उपरोक्त ,पृष्ठ –74 ।
3.उपरोक्त ,पृष्ठ –52 ।
4.उपरोक्त ,पृष्ठ –106 ।
5.उपरोक्त ,पृष्ठ –145 ।
6.उपरोक्त ,पृष्ठ –14 ।
7.उपरोक्त ,पृष्ठ –35 ।
8.उपरोक्त ,पृष्ठ –45 ।
9.उपरोक्त ,पृष्ठ –29 ।
10.उपरोक्त ,फ्लेप पर से ।
11.उपरोक्त ,फ्लेप पर से ।
12.उपरोक्त ,पृष्ठ –44 ।

 ISSN 2231-0584

दलित हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक जीवन

डॉ. मोहम्मद इसराइल
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कमला नेहरु कॉलेज
अगस्त क्रांति मार्ग
नई दिल्ली 110049
मोबाइल : 9818696278
ईमेल : israil786knc@gmail.com

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का विशेष महत्व था, जिसमें शूद्र कहा जाने वाला वर्ण सबसे निचले पायदान पर था, जिसका कार्य सबकी सेवा करना था। उस समय वर्ण व्यवस्था कर्मगत थी, परंतु धीरे–धीरे इसने जन्मगत रुप धारण कर लिया और शूद्रों को मुख्य धारा से अलग कर हाशिए पर डाल दिया गया। इन्हें अछूत और अस्पृश्य मानकर इनकी छाया का स्पर्श भी पाप और अपराध की श्रेणी में गिना जाने लगा। फलस्वरुप इस वर्ग के लिए उन्नति के सारे दरवाजे बन्द हो गए। सामाजिक और धार्मिक बहिष्कार की असहय पीड़ा को इस वर्ग ने अनन्त काल तक सहा है।

दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है दबा हुआ, कुचला हुआ या रौंदा हुआ। व्यापक अर्थ में इसके अंतर्गत समाज के वे सभी वर्ग शामिल हो जाते हैं, जो दयनीय जीवन जीने को बाध्य हैं और किसी–न–किसी प्रकार के शोषण के शिकार हैं, किन्तु संकुचित अर्थ में यह शब्द भारतीय समाज के एक खास तबके का सूचक है, जिसे अछूत, अस्पृश्य, शूद्र अथवा हरिजन आदि संज्ञाओं से सूचित किया जाता है। दलित साहित्यकारों पी. बाल्मीकि का कथन है कि "मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो वही दलित है।" दलित चेतना की कहानियाँः बदलती परिभाषाएँ– प्रो. राजमणि शर्मा, आज दलित वर्ग के अन्तर्गत केवल हरिजन या शूद्र वर्ग को ही सम्मिलित नहीं किया जाता हैं, वरन् धोबी, कहार, नाई, कुम्हार, कोलीतथा जरायमपेशे में लिप्त जातियाँ यथा नट, मदारी, लोहार तथा सभी प्रकार आदिम जनजातियाँ भी इस वर्ग के अंतर्गत आती हैं। भारतीय समाज में सदियों से दलितों का शोषण होता आ रहा है। अपने इस शोषण के विरुद्ध इस वर्ग में समय–समय पर विद्रोह का भाव भी उत्पन्न हो रहा है। वैदिक काल में कवष, सत्यकाम तथा जाबाल जैसे अनेक ऋषियों ने तद्युगीन ब्राह्मण ऋषि व्यवस्था के विरुद्ध किया और विभिन्न सिद्धियों और तप द्वारा स्वंय को ब्राह्मण वर्ग से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया, परन्तु भारतीय समाज में दलित उद्धार के लिए संगठित प्रयास 19वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ हैं। दलित आंदोलन को दिशा, देने वाले सुधारकों में महात्मा गाँधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फूले तथा दयानंद सरस्वती आदि सुधारकों का नाम उल्लेखनीय है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इस वर्ग की स्थिति सुधारने हेतु

 ISSN 2231-0584

"दलित पैन्थर" जैसे लड़ाकू संगठन तथा "दलित साहित्य" जैसे साहित्यिक आन्दोलन को जन्म दिया। उनका कहना था कि "हिन्दू धर्म जितना ब्राह्मण का है उतना अछूत का भी है। बाल्मीकि जैसे अछूत ने तो रामायण की रचना कर दी है, हिन्दू धर्म को हम किसी एक वर्ग की बपौती नहीं बनने देंगें।" (कर्मयोगी अम्बेडकरः के एल कमल, पृ.73) उन्होंने सन् 1920 में 'मूक नायक' नामक पत्र भी निकाला।

समाज सुधारकों के इन सम्मिलित प्रयासों के परिणामस्वरुप दलितों की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ। स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा जातिगत भेदभाव को समाप्त कर सभी नागरिकों के लिए सम्मान व्यवस्था की गई तथा पिछड़ी जातियों और जनजातियों को सरकारी नौकरियों, शिक्षा संस्थानों, लोक सभा और राज्य सभा में आरक्षण के रुप में विशेष सुविधाएँ भी प्रदान की गई हैं, ताकि यह वर्ग अपनी उन्नति कर सकें। सदियों तक समाज से बहिष्कृत जीवन जीने के कारण यह वर्ग आत्महीनता का शिकार हो गया। फलस्वरुप साहित्य, कला और संस्कृति से भी बहिष्कृत हो गया। परन्तु मध्यकाल में हिन्दी के कबीर, रज्जब, नामदेव, धन्ना, पीपा जैसे अनेक सन्त कवियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध किया और मनुष्य मात्र की एकता पर बल दिया। उनका साहित्य दलित जीवन के दुखों और भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति करता है। इसके पश्चात् इनकी भागीदारी क्षीण होती चली गई और साहित्यादि से यह वर्ग पुनः लुप्त हो गया।

दलित विमर्श, दलित चिंतन और आंदोलन नितान्त आधुनिक अवधारणा है। जहाँ तक दलित साहित्य की बात है कि यह सर्वप्रथम मराठीमें लिखा गया है। मराठी साहित्यकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा से प्रेरित थे। मराठी के पश्चात् गुजराती, तमिल, तेलगु, मलयालम और पंजाबी आदि भाषाओं से होते इसका प्रवेश हिन्दी साहित्य में हुआ। हिन्दी में दलित साहित्य को लेकर अत्यन्त विवाद है। लेकिन विद्वानों का मानना है कि गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा गया साहित्य अनुभव जन्य न होने के कारण दलित साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता परन्तु उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अनेक उच्चकोटी के लेखकों जैसे– प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, रांगेव राघव, शिवप्रसाद सिंह तथा मैत्रेयी पुष्पा ने दलित जीवन के नारकीय यथार्थ को ही अभिव्यक्ति नहीं दी हैं, अपितु दलितों के प्रति गहरी सहानुभूति और स्वर्ण शोषक व्यवस्था के लिए तीव्र आक्रोश का भाव भी व्यक्त किया है। कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', और 'गोदान' आदि उपन्यासों में दलित जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण हुआ। 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक अंधा सूरदास दलित है। 'कर्मभूमि' में अमरकान्त के प्रयासों के फलस्वरुप चमारों के जीवन स्तर में सुधार की आशा है। 'कायाकल्प' में मेहतर, चमार, कहार आदि नीची जातियों के शोषण की कहानी हैं, तो 'गोदान' में सिलिया और मातादीन का प्रसंग एक ओर तो दलित नारी के शोषण की कथा है, दूसरी ओर दलितों मे उभरती चेतना की प्रतीक है। मातादीन के मुहँ में हरकू चमार द्वारा हड्डी डाला जाना मानो सम्पूर्ण ब्राह्मण व्यवस्था को चुनौती देना है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'घासवाली', 'कफन' आदि कहानियाँ भी विशेष उल्लेखनीय है।

 ISSN 2231-0584

प्रेमचंद के समकालीन पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के 'बंधुआ की बेटी' उपन्यास में भी दलितों की समस्या को उठाया गया है। इसकी नायिका रधिया भंगिन है और स्वयं बंधुआ समाज बहिष्कृत निर्धन और दलित है। छायावादी कवि निराला के 'निरुपम' व 'कुल्ली भाट' आदि उपन्यास भी दलित जीवन के यथार्थ और दलितोद्धार समस्या को उजागर करते हैं।

स्वाधीनता पश्चात् अनेकानेक हिन्दी उपन्यास लेखकों ने दलितों के शोषण, आर्थिक विशेषताओं और पीड़ाओं का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। नागार्जुन के 'बलचनमा', 'दुःखमोचन' तथा 'वरुण के बेटे' उपन्यास के पात्र दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है और शोषण के विरुद्ध उभरती जनचेतना और विद्रोह का झंडा भी थामते हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने उपन्यास 'रथ के पहिए' में स्वाधीनता पश्चात् पहली बार मध्यप्रदेश की गोंड जनजाति का यथार्थ चित्रण किया है। इसी प्रकार उदयशंकर के 'सागर की लहरें और मनुष्य' में मुम्बई के मछुआरों के जीवन यथार्थ का मार्मिक चित्रण है। मधुकर सिंह का 'सहदेव राम का इस्तीफा' उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। उपन्यास का प्रमुख पात्र माधोसिंह सप्लाई विभाग में बाबू है, किन्तु जमींदारी उन्नमूलन के पश्चात् भी अपनी सामन्ती प्रवृति नहीं छोड़ पाता। वह चाहता है कि दलित हरिजन अपने परंपरागत कार्यो को छोड़कर उच्च वर्ग के लिए निर्धारित किसी अन्य कार्य को न अपनाएं, इसलिए वह उनकी दरख्वास्ते फाइलों में दबाकर रख लेता है, जब दलित सहदेव दास उसका अफसर बनकर आता है तो उसके सामन्ती व्यक्तित्व को धक्का लगता है। परंतु उपन्यासके अन्त में माधोसिंह की "हाथियों के रोग" की पुस्तक को जलाया जाना सामन्ती मूल्यों की पराजय और सहदेव राम द्वारा इस्तीफा दिया जाना व्यवस्था की गुलामी और माधोसिंह जैसे धूर्त शोषकों से मुक्ती के लिए दिया गया इस्तीफा है। रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों का कथ्य भी दलित मुक्ति के स्वपन से जुड़ा है। 'पानी के प्राचीर' में आज़ादी प्रतीक्षित है, 'जल टूटता हुआ' मे लेखक स्पष्ट करना चाहते है कि स्वाधिनता पश्चात् भी जाति भेद यथावत् है। निम्न जातियों में इसके विरुद्ध विद्रोह का भाव अवश्य जागृत हुआ है, किन्तु उच्च वर्ग को उनकी यह जागरुकता स्वीकार्य नहीं है। इसलिएअपनी खीझ मिटाने के लिए वे छोटी जातियों पर भांति–भांति के अत्याचार करते हैं। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारुँ' में पहली बार नट या करनट जैसी उपेक्षित और शोषित जाति के जीवन यथार्थ का चित्रण हुआ है। इसमें नट कबिलों के जीवन के अनेक पक्षों "उनकी निर्धनता, खानाबदोशी, जरायमपेशागीरी, स्वछंद जीवन, उपेक्षित जीवन जीने की विवशता, पुलिस के अत्याचार, स्त्रियों का यौनशोषण आदि का मार्मिक चित्रण किया गया है।" (हिन्दी उपन्यास का इतिहास– गोपाल राय, पृ. 428) इसके साथ ही उपन्यासकार ने व्यवस्था के शोषण के विरुद्ध नटों में उभरती विद्रोह चेतना का भी परिचय दिया है। इसी श्रृंखला में शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' और मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास नवीन कड़ी जोड़ते है। 'शैलूष' में विंध्य क्षेत्र के नटों के कबीलाई जीवन को कथा का आधार बनाया गया हैं। इसमें भी उच्च वर्ग से नटों का संघर्ष और मुक्ति का भाव प्रमुख है। ब्राह्मण सावित्री द्वारा नट वर्ग में विवाह करना और उनके शोषण के विरुद्ध और नट

समाज की विजय के माध्यम से लेखक ने आशावादी संदेश दिया है। मैत्रेयी पुषा ने 'अल्मा कबूतरी' में बुंदेलखंड क्षेत्र की कबूतरा जाति का चित्रण किया है। इन्हें जरायमपेशा समझकरउपेक्षित ही नहीं किया जाता, वरन् उच्चवर्ग व पुलिस द्वारा उन पर बार–बार अत्याचार भी किए जाते हैं। उच्च वर्ग (कज्जाओं) से संघर्ष और टकराहट में अपना सब कुछ लुटा देने पर भी पराज्य इसी वर्ग की होती है, क्योंकिसंपूर्ण व्यवस्था ही इनके विरोध में खड़ी है। भूरी, उसका बेटा रामसिंह, की बेटी अल्मा तथा कदम्ब बाई, की व्यथा–कथा उपन्यास का प्रमुख कथ्य है। अपना शरीर बेचकर भी अपने बेटे रामसिंह को सभ्य बनाने की भूरी की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती है। रामसिंह अंत में पुलिस का दलाल बनकर, पुलिस द्वारा फर्जी मुठभेड़ में मार दिया जाता है। एक कबूतर की कज्जा बनने की आकांक्षाओं का यह क्रूर अंत इस वर्ग की जलालत भरी जिंदगी का नग्न रुप हमारे समक्ष रखा हैं।

अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल' दलित जीवन के चित्रण की दृष्टि से एक उल्लेखनीय और क्रांतिकारी उपन्यास कहा जा सकता है। क्रांतिकारी इस संदर्भ में कि इसमें पहली बार एक ब्राह्मणी के हरिजन बनने की घटना हैं। इसके साथ ही इसमें मेहतर समाज के रीति–रिवाजों, आस्थाओं, आकांक्षाओं, शोषण और प्रताड़ना का अत्यंत सजीव व मार्मिक अंकन हुआ हैं। निर्गुणिया के माध्यम से स्त्री मुक्ति की कामना ही व्यक्त नहीं हुई है, अपितु ब्राह्मण जाति का दोगलापन भी व्यक्त हुआ हैं।

शैलेश मटियानी के 'कोई अजनबी नहीं' में दिल्ली और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के 'मुर्दाघर' में बम्बई महानगर के स्लम्स का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ हैं'। 'मुर्दाघर' में लेखक ने प्रकृतिवाद शैली में सड़को के किनारे फुटपाथों, पुलों, गटरों पर सीलन भरी झोपड़ियों में रहने वाले भिखारियों, जुआरियों, कोढ़ियों, योग रोगों से ग्रस्त स्त्रियों और उनके आवारा बच्चों की गजालत भरी जिंदगी का चित्रण किया गया है। जगदीश चंद्र के 'धरती धन न अपना' 'कभी न छोड़े खेत' और 'नरक कुंड मे वास' उपन्यासों में भी दलितों के शोषण, उनकी हीनता ग्रंथि युक्त मानसिकता और शोषण के विरुद्ध विद्रोह का भाव परिलक्षित होता है। गिरिराज किशोर के 'यथाप्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' उपन्यासों में जीवन के नवीन पक्षो को उठाया गया है। इनका मुख्य कथ्य प्रशासनिक और शैक्षणिक संस्थाओं में दलितों के प्रति किए जा रहे भेदभाव और अमानवीय व्यवहार पर केंद्रित है। 'यथाप्रस्तावित' उपन्यास में दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार का वर्णन है, किन्तु 'परिशिष्ट' उपन्यास से यह स्पष्ट होता है कि आज स्वाधीन भारत में संविधान द्वारा शिक्षा में आरक्षण मिल जाने से दलित वर्ग का बड़े–बड़े तकनीकी संस्थाओं में प्रवेश तो संभव हो गया है, किन्तु उच्च वर्ग की मानसिकता न बदलने के कारण क्षण–क्षण अपमानित होकर आत्महत्या करने पर विवश होना पड़ता है।

इस प्रकार वर्तमान समय में विमर्श के दो प्रमुख मुद्दे है–स्त्री विमर्श और दलित विमर्श। दलित विमर्श पर आज अनेक गोष्ठियाँ और सेमिनार आयोजित हुए है, जिनमें दलित समाज से जुड़े विविध मुद्दे पर बड़ी–बड़ी बहसे होती हैं। यह भारतीय समाज की

 ISSN 2231-0584

विडम्बना ही कहीं जाएगी कि स्वाधिनता के बहत्तर(72) वर्ष के बाद भी हमारे मस्तिष्क से वर्ण व्यवस्था समाप्त नहीं हुई है और हमें इसे समाप्त करने के लिए आज भी इन प्रयासों की आवश्यकता है। हिन्दी उपन्यास लेखकों ने प्रारम्भ से ही भारतीय सामाज की इस कुरुपता का अनुभव किया और दलितों के प्रति किए जा रहे अन्याय, उत्पीड़न, अनादर आदि को पूरी संवेदनशीलता के साथ उजागर किया।

निष्कर्षतः– दलित कथा साहित्य में आज की दलित स्थिति को विभिन्न उपन्यासों में देखा गया हैं। उदाहरणार्थः– नागार्जुन के 'बलचनमा','दुखमोचन' तथा 'वरुण के बेटे' उपन्यास के पात्र दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है और शोषण के विरुद्ध उभरती जन–चेतना और विद्रोह का बोलबाला करते हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'रथ के पहिए' में स्वाधीनता पश्चात् पहली बार मध्यप्रदेश की गोड़ जन–जाति का यथार्थ चित्रण किया हैं। उदयशंकर के 'सागर लहरें और मनुष्य' में मुंबई के मछुआरों के जीवन का यथार्थ मार्मिक चित्रण हुआ हैं। रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में दलित मुक्ति के स्वप्न से जुड़ा हैं। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारुँ' में पहली बार नट या करनट जैसी उपेक्षित और शोषित जाति के जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है।

शिवप्रसाद सिंह का 'शैलुष' और मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास नवीन कड़ी को जोड़ते है। तथा समाज में दलित स्थिति उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक समस्याओं को दिखाया गया है और आज के दौर में भी वह किस तरह अपने हक के लिए संघर्ष कर रहा है, यह दिखाया गया हैं। इस प्रकार अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल' दलित जीवन के चित्रण की दृष्टि से एक उल्लेखनीय और क्रांतिकारी उपन्यास कहा जा सकता है। गिरिराज किशोर के 'यथाप्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' उपन्यासों में दलित जीवन के नवीन पक्षों को उठाया गया हैं।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. आरती झा– भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना, दिनांक 2012 पृष्ट 60
2. डॉ. नरसिंहदास, दलित विमर्श, चिन्तन प्र., कानपुर–21
3. डॉ. टी.एच.वघेरा– दलित मूल्यांकन, पैराडाइस पब्लिशर्स जयपुर (भारत) सं. 2018
4. हिरेन जे. बारोट– दलित एवं मानवाधिकार, पैराडाइस पब्लिशर्स– जयपुर भारत सं. 2018
5. प्रो. चम्पक पटेल रावत, दिल्ली– 110002 सं. 2016
6. डॉ. विलक्षण–रविदास, नई दिल्ली, दिल्ली– 89, सन् 2009
7. संपादक उमाशंकर चौधरी– हाशिए की वैचारिकी, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली–110002, सं. 2008

उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियों में मनोविज्ञान

शाहीन बानो
शोद्यार्थी
पीएचडी.(हिंदी)
जामिया मिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली–110025
मोबाइल : 8766203453
ईमेल : Shaheenjmi145@gmail.com

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज– निर्माण का वह मुख्य अंग है,सामाजिक प्राणी होने के नाते वह एक सामाजिक परिवेश में पलता है। इस सामाजिक परिवेश में उसके नाते– रिश्तेदार, मित्रगण, साथी, पड़ोसी अनेक व्यक्ति होते हैं, जिसमें वह इन सब पर कुछ न कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। इन सबसे संबंध बनते–बिगड़ते रहते है।ये संबंध ही उसके लिए सामाजिक परिवेश का निर्माण करते है। सामाजिक परिवेश के अंतर्गत ही व्यक्ति के विचारों, भावों , अनुभूतियों, संवेगों और आदतों का विकास होता है। मनोविज्ञान मनुष्य की इन्हीं प्रवृतियों का अध्ययन करता है। इसी प्रकार जब मनोविज्ञान ने मनुष्य से संबंधित समाज की इन्ही प्रवृतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया, तो उसे मनोविज्ञान नाम दिया गया।

मनोविज्ञान से यह स्पष्ट होता है,कि जिस तरह बाह्य जगत है उसी तरह व्यक्ति का अंतर्जगत भी है, और यह अंतर्जगत बाह्य जगत से कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है। यह संपूर्ण बाह्य जगत जीवन चक्र से प्रेरित और निर्देशित है। अंतः प्रवृतियां ही मनुष्य के व्यक्तित्व की बाह्यभिव्यक्ति है। मनोविज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि मानव अंतर्जगत में चेतना मन से भी आगे यह अवचेतना जगत चेतन से भी अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली है। मनुष्य के चेतन और अवचेतन के असामंजस्य ने उसे कितना रहस्यमय, असाध्य और दुर्बोध बना दिया है, इसे मनोविज्ञान ने विश्लेषित किया है। मनुष्य की इच्छा–शक्ति किस भांति बाह्यभिव्यक्ति न पाकर अंतर्मुखी हो जाती है और अवचेतन जगत में अक्षुण्ण रहकर कुंठाओं अस्पष्ट अमूर्त स्वप्न–चित्रों को जन्म देती है। अर्थात् चेतन मन की गतिविधियां अचेतन द्वारा परिचालित होती है। जो विचारों, कामनाओं और भावों का दमन करके अचेतन में उत्पन्न होती है। भावों एवं विचारो पर सामाजिक दृष्टि से अधिक बंधन होते है। जिससे काम का दमन होता है, और दमित काम–भावना सम्पूर्ण शांत होकर भी शांत नहीं रह पाती। उसका प्रभाव विभिन्न रूपों एवं पद्धतियो के माध्यम से व्यक्ति के भीतर दिखाई देता है। चेतन और अचेतन के बीच काम का तीसरा रूप जो प्रहरी की तरह होता है वह अवचेतन कहलाता है। 'इस तरह मानसिक स्तर पर दमन और रोकथाम का व्यापार चलता है, जो अज्ञात होता है, चेतन स्तर पर चलने वाले संघर्ष ज्ञात होते है किन्तु अचेतन स्तर पर संघर्ष गुप्त और छिपा होने के कारण इसका ज्ञान नहीं होता।2

 ISSN 2231-0584

मनोविश्लेषण ने हमें अध्ययन के लिए एक नई पद्धति दी है– कि मनुष्य के बाह्य सकेतों, कर्म– प्रेरणाओं और भाव–भंगिमाओं द्वारा हम मनुष्य के संशिलष्ट गूढ़ अंतः जगत को समझ सकें, उसके मन के उलझे हुए सूत्रों को सुलझा सकें।

डॉ.' लक्ष्मीनारायण लाल' ,के अनुसार " मनोविज्ञान ने प्रमुखतः स्त्री–पुरुष संबंधी मूल्यों और समस्याओं को अपना धरातल बनाया है, क्योंकि फ्रायड ने अपनेमनोविश्लेषण के समस्त सिद्दांतों और पद्दतियों को स्त्री–पुरुष के यौन–संबंधी आधारों पर प्रतिष्ठति किया है। फलतः फ्रायड के यौनवाद के सिद्धांतों , विश्लेषण पद्धतियों को इस युग के कहानीकारों ने अपनाया है और उससे उनकी अंतदृष्टि को अपूर्व बल मिला है।3

'फ्रायड' मानव मन की मूल परिचालक शक्ति के रूप में 'लिविडो' (काम भावना) को स्वीकार करता है। जब सामाजिक एंव नैतिक बंधनों के कारण इसका मार्ग अवरुद्ध होता है तब कुंठा , मनोग्रंथी , अहं , उन्माद , जैसे रोग उत्पन्न हो जाते है।

'एलडर'– ने मानव के मन में उत्पन्न हीन भावना को मन की परिचालिका शक्ति माना है, हीनता की अनुभूति मनुष्य के मन में अंह भाव को जन्म देती है और इससे परिचालित होकर वह अपने महत्व को अनुभव करने एवं कराने की आवश्यकता अनुभव करते हुए तदनुसार आचरण एवं व्यवहार करता है।

'युंग'– के अनुसार मनुष्य की स्मृतियों मानसिक कार्य को चेतन मन में एकत्र नहीं रख पाती और वे अचेतन में चली जाती है। अचेतन मन में दमित रहने वाली अनुभूतियां , स्मृतियां एक विचार अहं को स्वीकारिय नहीं हो पाते, परिणामतः वहां भय, आशंका, मृत्यु जैसी स्थितियां उत्पन्न हो जाती है जिससे मनुष्य को जीवन प्रभावित होता है।4

आज की कहानी–कला का मुख्य धरातल 'मनोविज्ञान' है। 'मनोविज्ञान' के अंतर्गत मनोविश्लेषण की पद्दति ने कहानीकारों को असीम वर्णन–वस्तु का क्षेत्र दिया है और वह आत्म–विश्लेषण के माध्यम के द्वारा उसे सहज गति से अपना रहे है। कहानीकारों ने मध्यमवर्गीय मनुष्य में व्याप्त द्वंद्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण अनेक प्रकार से किया है। जैसे– मनुष्य का संघर्ष कहीं पर प्रकृति से है तो कहीं पर मनुष्य का मनुष्य से और कभी–कभी तो यह संघर्ष वह स्वयं अपनी आंतरिक प्रवृतियों से भी करता है। ऐसा देखा गया है कि प्रकृति के उपादान कभी–कभी उसके घावों पर भी दर्द दे देते है। ऐसा निरीह मनुष्य तब बेबस अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करता है। कहीं उन पर विजय प्राप्त करता देखा गया है तो कहीं समझौता करता दिखाई देता है। मनुष्य के इस अंतद्वंद्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण का उदाहरण– " ....और उस एक क्षण के लिए प्रकाश ह्रदय की धड़कन जैसे रुकी रही। कितना विचित्र था वह क्षण–आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा । कोहरे के वक्ष में एक लकीर–सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया। कोहरे में से गुजर कर जाती हुई आकृतियों को उसने एक बार फिर ध्यान से देखा। क्या वह संभव था कि व्यक्ति की आँखें

इस हद तक उसे धोखा दे? फिर भी न जाने क्यों उसे लग रहा था है जैसे बहुत समय से बल्कि कई दिनों से, वह उनके वहां से गुजरने की परीक्षा कर रहा है जैसा कि और उन्होंने देखने के लिए ही वह कमरे से निकलकर बालकनी पर आया हो और उन्हीं को ढूंढती हुई उसी की आँखें मंदिर वाली सड़क की तरफ मुड़ी हो।5 इसी प्रकार कभी कभी मनुष्य का मनुष्य से संघर्ष होता है। इसका मनोवैज्ञानिक उदाहरण द्रष्ट्व्य है– " आखिर क्या? पर मेरे जीते जी तो वह सब अच्छा नहीं। वह इतनी घृणा बर्दाश्त करके भी जीने को तैयार है। या मुझे जलाने को। वह मुझे नीच समझती है, कायर.....नहीं तो एक बार खबर लेती। बच्चा हुआ। तो पता तो लगता। पर नहीं, वह उसका कौन है? कोई भी नहीं। औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है,जो आदमी–औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है....नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासना का कीड़ा"। यह मनोविज्ञान का जाना–माना तथ्य है कि समय आने पर हर व्यक्ति को अपने कुकृत्य पर पछतावा होता है। परन्तु जो हो चुका है, बीत चुका है, वह कैसे वापस आए। अंत में व्यक्ति अपनी भावनाओं से समझौता कर लेता है। वह निश्चित नहीं कर पाता कि वह क्या करें? कहानीकार ने अधोलिखित उदाहरण में इसी अंतद्वद्व का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है।

मनोवैज्ञानिक कहानीकारों की आधारशिला है। कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एंव जीवन के यथार्थ तथा उसके स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय मानती है। वास्तव में मनोविज्ञान पर आधारित कहानी श्रेष्ठ मानी जाती है। मनोविज्ञान पर आधारित कहानियों के उदाहरण और भी देखने को मिलते है जैसे– 'उसने कहा था'– गुलेरी जी की कहानी ने बड़ी प्रसिद्धी पाई है। इसके कई कारण है जहाँ 'मनोविज्ञान' एक सत्य है "वह है बात का निभाना और ऐसे व्यक्ति की बात का जिसने मन पर बाल्यकाल में ही प्रभाव डाला हो। लहना सिंह अपने अंतिम क्षणों में बार–बार भजन की टेक की भांति यही दुहराता है 'वजीरासिंह पानी पिला उसने कहा था" यह टेक कहानी का शीर्षक और उसकी जान है। अंतिम क्षणों में स्मृति भी कुछ तीव्र हो जाती है। लहनासिंह पिछली सारी घटनाओं को दुहरा देता है और उसके बलिदान का रहस्य खुल जाता है।6

उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियों में मनोविज्ञान आदमी की मजबूरियों के रूप में सामने आता है, ये मजबूरियां चाहे सेक्स की हो या अर्थ संकट की, दिमागी उलझनों की हो या जेहन की कला या प्रेम की या अभिव्यक्ति की। उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानियों में वर्णित मजबूरियां निम्न–मध्यमवर्गीय तथा निम्न वर्ग के पात्रों के द्वारा अभिव्यक्त हुई है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं के विस्तृत परिवेश अश्क की कहानियों में दिखाई देता है।

'अश्क' जी की कहानी 'तीन सौ चौबीस' जो एक कस्बे की कहानी है, साथ ही इस कहानी में नायक 'पात्र' हैदर जो एक कुली की नौकरी करता है, क्योंकि उसके मन में छिपी मनः स्थिति ही उसको कस्बे से शहर की तरफ आने को विवश कर देती है, जिसके पीछे कारण यह होता है, कि हैदर अपनी पत्नी अमीना को भूखे मरता नहीं देख सकता था, इसलिए वह अपनी इच्छाओं और कस्बे की शान्ति, ईमानदारी की जगह को छोड़कर शहर

की तरफ़ रवाना हो जाता है यह सोचकर कि वह वहां से पैसे कमाकर वापस कस्बे में जाएगा अपनी पत्नी की इच्छाओं को पूरा करेगा। यही उसके मन की मनः स्थिति थीं, जो पूरी होने से पहले उसे ईश्वर की गोद में सुला देती है। कहानियों के अंत में मनोविज्ञान के अंत में मनोविज्ञान की दृष्टि स्पष्ट रूप ये दिखाई देती है, मानव अपनी मनः स्थिति को पूरा करने के लिए संघर्ष करता है।

'डाची'कहानी में कहानीकार अश्क जी ने एक मध्यमवर्गीय कस्बे में रहने वाले 'बाकर' के मनोविज्ञान को दृष्टिगोचर किया है। जैसा कि कहा जाता है परिवार में रहते हुए अचानक किसी एक व्यक्ति पर सारी जिम्मेदारियां आ जाती है तो वो अपनी अच्छी या बुरी आदतों को भूलकर सिर्फ परिवार के लिए सोचता है उसी तरह बाकर के मन में अपनी पत्नी के जाने के बाद पुत्री की चिंता सताने लगती है, वह उसके लिए गरीबी से जूझता है, अपनी पुत्री के कहने पर डाची(सांडनी) खरीदने का मन बना लेता है, चाहे उसे कस्बे के डाची बेचने वाले साहूकार को ज्यादा पैसे देने पड़े पर वह पीछे नहीं हटता। क्योकि उसके मन का मनोविज्ञान अर्थात् मन की खोज पुत्री के लिए डाची खरीदने की थी जो वह पूरा करता है।

'सभ्य–असभ्य' कहानी में मनोविज्ञान का 'पात्र' वह जमीदारनी स्त्री है जो अपने परिवार के साथ–साथ अपनी जेठानी के दुखों को समझती है, जब वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है, तो अपनी आर्थिक स्थिति की तंगहाली में भी अपनी जेठानी के बच्चों को पालती है, वह शहर के साहब और सुलेखा जिनकी गोद सूनी रहती है, पैसों की कोई कमी नहीं रहती, फिर भी हर चीज़ की कमी महसूस होती रहती है। दो तरह की मनोवैज्ञानिकता नज़र आती है, एक स्त्री मध्यवर्ग की होकर भी अपने मन के भाव–विचार को अपने परिवार तथा दूसरे के हित के लिए सोचती है, तथा दूसरी मनः स्थिति बिल्कुल भिन्न जहाँ पैसों की जगह संतान की ज्यादा आवश्यकता है, वहां के मनुष्य में भी उनके मन में भी पैसा ही महत्वपूर्ण नज़र आता, तभी तो वह गरीब जमादरनी की पैसों से आर्थिक रूप से मदद भी नहीं करते। मनुष्यों को समाज में रहते हुए एक–दूसरे सामाजिक प्राणी की मदद करनी चाहिए यह सबसे बड़ी मानसिकता तथा दुःख–दर्द को समझने वाली मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है।

कहानी का विषय मानव जीवन होता है। इसलिए कहानीकार हमेशा यह दिखलाने का प्रयत्न करता है कि उसकी पात्र योजना कैसी है, उसमें क्या–क्या विशेषताएं एवं क्या–क्या कमजोरियां है तथा कहानियों में परिस्थिति परिवर्तन के साथ कहानीकार पात्रों के चरित्रों में किन विशेषताओं में कैसा परिवर्तन करता है। 'कहानी' का लक्ष्य वातावरण एवं परिस्थिति परिवर्तन की स्थिति में चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करना होता है। मानव मन की सृष्टि में विचित्रता होती है,मानव की यही मनोदशा कहानी की विशेषताओं को उजागर करती है। कहानी के पात्रों के चरित्र–चित्रण में – अनुकूलता,

मौलिकता , सजीवता तथा स्वाभिकता आदि अत्यावश्यक गुण होते है। कहानीकार द्वारा विनिर्मित पात्रों के चरित्र मनोविज्ञानिक तथ्यों के निष्कर्ष पर खरे उतरने चाहिए। कहानी के पात्रों के मुख्यतः दो रूप होते है।बाह्य रूप तथा आंतरिक रूप। बाह्य अथवा बाहरी दिखाई देने वाला रूप जिसे अनुभाव चित्रण कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरा रूप आंतरिक रूप भी होता है जो अन्तस्थ या अन्तरण कहा जाता है। मानव की सभी क्रियाओं के पीछे उसका कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता है तथा मन–संघर्ष उसकी चारित्रिक अभिव्यक्ति के कारणभूत होते है।8

"कहानीकार इसलिए चरित्रों के मानस में पैठकर अन्तः प्रेरणाओं को प्रकाश मे लाने की चेष्टा करता है।" अर्थात् कहानीकार पात्रों की मनः स्थिति में पूरी तरह समाकर उसके अंतर्जगत की जिज्ञासाओं, प्रेरणाओं को सामने लाता है। उपेन्द्रनाथ अशक की कहानियों के पात्रों में मनोविज्ञान की स्थिति के भीतर मजबूरियां, अकेलापन , कुंठा , उलझन , आत्म–निर्वासन होने के बावजूद पात्रो में जीवन जीने की सहज कला नज़र आती है।

'बैगन का पौधा' कहानी ऐसे वृद्ध पुरुष के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है जो समाज की आर्थिक विषमता का विवेकशील प्रत्यक्ष दर्शी है। जिसकी दृष्टिपरिधि में बंगलों में विश्राम करने वाले वैभव– सम्पन्न व्यक्तियों की स्थिति और ठंड से ठिठुर कर मरने वाले निराश्रित वर्ग की स्थिति यथातथ्य रूप में स्थान बना लेती है और जो समाज की कूर विषमताओं पर तीव्र व्यंग्य प्रस्तुत करता है। व्यक्तिगत, समाजिक अथवा परम्पगत समस्याओं के प्रकाश में पात्रों के व्यक्तितव का तात्विक विश्लेषण अश्क की कहानियों में हुआ है। जहां पात्र अधिक आत्म–केन्द्रित है वहां मनोविश्लेषण की सूक्ष्मता का समाबेश हुआ है। जहां व्यंग्य और तीखी उक्तियों द्वारा किसी समस्या के विश्लेषण का प्रयास है वहां पात्र मुखर, क्रियाशील और तर्कशील बन गए है। तात्पर्य यह है कि उपेन्द्रनाथ अश्क की यर्थाथवादी कहानियों में विविध प्रकार के पात्रों के व्यक्तित्व का मनोविज्ञानिक विश्लेषण उच्चस्तरीय रूप में उपलब्ध है।

संदर्भ–सूची

1. उपेन्द्रनाथ अश्क काले साहब (कहानी)– पृष्ठ–155–156
2. श्रीराम महाजन – आधुनिक हिंदी कहानी में काममूलक संवेदना–पृ.– 61
3. वही–पृ० – 310
4. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल –हिंदी कहानियों की शिल्प विधियों का विकास –पृ० दृ 221
5. मोहन राकेश – एक और जिन्दगी –पृ० दृ 158–159
6. संपादक – महेंद्र उमाशंकर सतीश – हिंदी कहानी सिद्धांत और विवेचन –पृ० दृ 54
7. संपादक – डॉ. रामकुमार गुप्त –स्वातन्त्रयोतर हिंदी कहानी –पृ० – 85
8. संपादक – महेंद्र उमाशंकर सतीश – हिंदी कहानी सिद्धांत और विवेचन – पृ०– 58
9. संपादक – डॉ. रामकुमार गुप्त – स्वातन्त्रयोतर हिंदी कहानी – पृ० –87

 ISSN 2231-0584

केशव की स्त्री–दृष्टि

नेहा गौड़
शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9891205751
ई–मेल : neha.gaur90@gmail.com

इतिहास बताता है कि शुरू से ही स्त्री परिवार की मुख्य धुरी रही है। संस्कृति के प्रारंभिक काल में स्त्री की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। वैदिक काल में नारी को समाज में गौरवपूर्ण एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। किंतु, मध्ययुग में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के कारण स्त्री धीरे–धीरे आश्रिता बन गई। इस युग में स्त्री के मानसिक तथा आत्मिक विकास के द्वारों पर ताले लगा दिए गए।

मध्यकालीन युग सामंतों का युग था जिसमें हमें पुरुष वर्चस्व और स्त्री के प्रति निम्न दृष्टिकोण दिखाई देता है। समाज में स्त्री के कई रूप देखने को मिलते थे जिसमें स्वकीया या पतिव्रता आदर्श नारी के रूप में और गणिका निम्नतम स्तर पर आसीन थी।

आचार्य केशवदास का जन्म इसी सामंती युग में हुआ था। समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। ऐसे समय में केशव का काव्य भी तत्कालीन परिस्थितियों से अछूता न रहा। केशवकालीन समाज में नारी को न तो कोई अधिकार प्राप्त था और न ही उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व था। इसी कारण वह पुरुष वर्ग द्वारा बनाई गई अन्यायपूर्ण रूढ़ियों के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थी।

केशव ने 'रतनबावनी', 'रसिकप्रिया', 'नख–शिख', 'बारहमासा', 'रामचंद्रिका', 'कविप्रिया' आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों में से 'रामचंद्रिका', 'कविप्रया' एवं 'रसिकप्रिया' उनकी प्रसिद्धि का आधार रही हैं। केशव के स्त्री संबंधी दृष्टिकोण को समझने के लिए इन ग्रंथों को आधार बनाया जा सकता है।

केशव के जीवन का अधिकांश समय दरबार में बीता स्वाभाविक रूप से उन पर श्रृंगारिक वातावरण का प्रभाव पड़ा, किंतु श्रृंगारिक प्रभाव होने के बावजूद वे स्त्री को पतिव्रता धर्म पालन का उपदेश देते हैं। केशव का मत था कि स्त्री, उपासना, भक्ति, धार्मिक, अनुष्ठान करने की वस्तु नहीं है। पति–सेवा से ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी। पति के बिना अन्य संबंध भंगुर है। 'रामचंद्रिका' में वे लिखते हैं–

 ISSN 2231-0584

''जोग जाग व्रत आदि न कीजे।

न्हान, गानगुन दान न दीजै।

धर्म, कर्म, सब निष्फल देवा।

होहि एक फल के पति सेवा।।''[1] (रामचंद्रिका)

तुलसी की भांति केशव का भी मानना है कि पतिव्रता स्त्री मन, वचन, कर्म से पति की सेवा करती है और यही उसका परम कर्तव्य है। केशव ने स्त्री को पति के साथ ही सती होने को आदर्श माना है। स्वकीया नारी के प्रति लिखते हैं–

''नारि न तजहिं मरे भरतहिं।

ता संग सहहि धनंजय।।''[2] (रामचंद्रिका)

संयत श्रृंगार न तो केशव को स्वयं रुचिकर लगता होगा और न ओरछा के दरबार में उसका कुछ मूल्य आँका जाता। इसलिए परिस्थितिवश रामचंद्रिका में उन्होंने सीता–राम के प्रेम के वर्णन का प्रयत्न ही नहीं किया। केशवदास में तुलसी के समान मर्यादा की रक्षा करते हुए संयत रूप से प्रेम का वर्णन करने का सामर्थ्य नहीं था। एक आध स्थान पर उन्होंने प्रयत्न भी किया तो वे सीताराम को छोड़ बहुत कुछ राधा–कृष्ण की ओर भटक गए। 'रामचंद्रिका' के उत्तरार्द्ध में केशव ने सीता की दासियों को लेकर कुछ करामात दिखाई है जिस पर अधिक मुग्ध हो जाने से कुछ लोगों को यह प्रतीत होने लगा कि यहाँ पर केशव ने तुलसी को मात कर दिया। परंतु वास्तव में तो सीता की तरह उनकी दासियों के प्रति भी भक्तों के हृदय में पवित्रता की प्रतिष्ठा होना आवश्यक है। वहाँ पर भी जो श्रृंगारिक वर्णन केशव ने किया वह केवल कला–प्रधान है। उसमें केवल अलंकार की चकाचौंध तथा शब्दो की तोड़–मरोड़ की करामात है। हृदय पक्ष उसमें है ही नहीं। हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं कि केशव में सुंदर कविता करने का सामर्थ्य था पर जिसे आजकल हम सुंदर काव्य कहेंगे, उसका महत्त्व केशव की दृष्टि में कुछ अधिक नहीं था। वे तो यही समझते थे कि जब तक कोई क्लिष्ट कल्पना न की जाए तब तक काव्य का उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा। दासियों की एड़ियों का वर्णन करते समय उनका ध्यान संभवतः अपनी अलंकार–मंजूषा की ओर था। वे लिखते हैं कि–

''छवानि की छुई न जाति सुभ्र साधु माधुरी।

बिलोकि भूलि–भूलि जात चित्त चाल भ्रातुरी।।''[1] (रामचंद्रिका)

 ISSN 2231-0584

अर्थात् केशवदास कहते हैं कि इन एड़ियों की 'साधु माधुरी' ऐसी है कि नेत्रों से भी उन्हें छूने में संकोच होता है कि कहीं दृष्टि के मैल से वे मैली न हो जाए। चित्त वास्तव में बहुत चंचल है, परंतु एक बार जब वह किसी वस्तु पर मुग्ध हो जाता है तो अपनी सहज चंचलता को छोड़ देता है। इसी बात की ओर सुंदर ढंग से संकेत करते हुए एड़ियों के सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

रामायण कथा में शोक के अनेक स्थान हैं। रामायण की कथा चिंता तथा शोक से प्रारंभ होती है और ऐसे करुण दृश्यों में जाकर विलीन हो जाती है जिन्हें हम जीवन पर्यंत कभी भूल नहीं पाते। किंतु 'रामचंद्रिका' के संबंध में हमें 'करुण रस' की वह व्यंजना देखने को नहीं मिलती। कारण केशव लौकिक सुखभोग में मग्न रहने वाले संसार के सुखी जीव थे।

केशव एक ओर सुख में मग्न दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर उनके मुख से ऐसी उक्तियाँ भी निकलती है–

''जग माँह है दुख–जाल, सुख है कहाँ यहि काल।''[1]

ये पंक्ति इस बात की ओर संकेत करती हैं कि उनके हृदय में भी कहीं–न–कहीं एक पीड़ा अवश्य थी। परंतु काव्य में उनका आदर्श पीड़ा का अभिव्यंजन करना नहीं अपितु बात की करामात तथा आलंकारिक चमत्कार का प्रदर्शन करना था। उदाहरण स्वरूप सीता को जब राम की भेजी हुई अँगूठी मिलती है तो उस समय वह सीता के चित्त की भिन्न वृत्तियों की उद्‌भावना न करते हुए ''आँसू अन्हवाय उर लाय मुदरी लई।'' इतना कहकर सीता के भावों का गला घोंटकर अलंकारों का जमघट लेकर उतर पड़ते हैं।

''आँसू अन्हवाय'' क्रिया से यह ध्वनि निकलती है कि संभवतः आँसुओं से स्नान कराना कोई संस्कार था जो बहुत आवश्यक माना गया और उसको चटपट कर लेने के बाद सीता एक–दूसरे काम में बड़ी तत्परता से लग गई। यही शब्द बहुत गंभीर हो जाता यदि 'अन्हवाय' क्रिया के बदले यह लिखा जाता कि सीता उस मुद्रिका को आँसुओं से 'नहवाने' लगी। इससे प्रतीत होता कि यह दुख का प्रवाह कुछ देर तक यों ही प्रवाहित होता रहा।

इस उदाहरण से यह परिलक्षित होता है कि सीता के रूप में एक स्त्री के मनोभावों, उसकी पीड़ा को दिखाना केशव का उद्देश्य नहीं रहा। आलंकारिक जाल बुनने की होड़ में वे स्त्री संवेदनाओं का बहिष्कार करते गए और इसी कारण 'हृदयहीन' कवि कहलाए।

सीता की जब 'अग्नि परीक्षा' हुई होगी उस समय केशव का ध्यान केवल आलंकारिक ताँता बाँधने में लगा रहा जिसके कारण सीता के हृदय पक्ष से उनका ध्यान हट गया। अग्नि परीक्षा देते समय सीता के हृदय में क्या–क्या भावनाएँ उठती होगी, लक्ष्मण

 ISSN 2231-0584

और राम के मन में क्या–क्या विचार आते होंगे। इन सब बातों से केशव ने दृष्टि फेर ली और आनंद से कहना प्रारंभ कर दिया–

''महादेव के नेत्र की पुत्रिका–सी

कि संग्राम की भूमि में चंडिका–सी।''

किधौ औषधी वृंद में रोहिणी–सी

कि दिग्दाह में देखिए योगिनी–सी।''[1] (रामचंद्रिका)

केशव के काव्य का अध्ययन करते समय हमें यह ज्ञात होता है कि वह एक स्पष्टवादी एवं निडर कवि थे। उनके हृदय में जो बात खटकती थी अथवा जो बात उनके सिद्धांतों के अनुकूल नहीं पड़ती थी, वे उसका कड़ा विरोध करने में कभी नहीं डरते थे। 'रामचंद्रिका' में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ उनकी इस दृष्टि को देखा जा सकता है। अपने निर्भीक और स्पष्टवादी दृष्टिकोण के कारण वह नारी का सम्मान करते हुए और पुरुष को नारी का अपमान करने के लिए फटकार लगाते हुए नजर आते हैं। विभीषण को वह लव द्वारा यह कह कर अपमानित करवाते हैं कि बड़े भाई की पत्नी माता के समान होती है। तूने उसे अपना लिया। इस प्रकार की चरित्रहीन व्यक्ति रघुवंशियों को उनके साथ रहकर पाप लगाता है।

''जेठो भैया अनादा राजा, पिता समान।

ताकी पत्नी तू करी, पत्नी मातु समान।''[1] (रामचंद्रिका)

केशव इंद्रजीत के आश्रय में रहा करते थे। इंद्रजीत के विषय में कवि ने लिखा है कि ये बहुत गंभीर प्रकृति के तथा उदार दानी थे। इंद्रजीत के राज्य में केशव बड़े सुख से दिन बिताते थे। वे स्वयं लिखते हैं–

''भूतल को इंद्र इंद्रजीत राजै जुग–जुग,

केसोदास जाके राज, राज–सों करत है।''[2]

इंद्रजीत काव्य, साहित्य, नृत्य, गीत आदि के बड़े प्रेमी थे। इनके यहाँ बहुत सी गणिकाएँ थी। ये गणिकाएँ नृत्य, गीत, काव्य आदि में निपुण थी। इनमें से एक गणिका 'राय प्रवीण' के लिए केशवदास ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कविप्रिया' की रचना की थी–

''सबिता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास।

 ISSN 2231-0584

ताके काज, कविप्रिया, कीन्ही केसवदास।''[1] (कविप्रिया)

केशवदास ने 'कविप्रिया' में इन गणिकाओं का वर्णन बड़ी श्रद्धा से किया है। एक ओर समाज में जहाँ इन गणिकाओं को अपमान की दृष्टि से देखा जाता था वहीं केशव भाव की उमंग में 'राय प्रवीण' नामक गणिका को 'लक्ष्मी', 'सरस्वती तथा 'पार्वती' के रूप में देखते हैं–

''रतनाकर लालित सदा, पहि रमानंद लीन।

अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रबीन।।

राय प्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।

बीना पुस्तक धारिनी, राजहंस–सुत संग।''[2] (कविप्रिया)

केशवदास प्रबंध की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं में विभिन्न मानव–भावों के प्रत्यक्षीकरण में अधिक सफल हुए हैं। केशव की रसिकप्रिया एवं कविप्रिया ग्रंथों में इसके उदाहरण देखें जा सकते हैं। प्रेम संसार का मूल है। केशव ने भी अधिकांश मुक्तकों में नायक–नायिका के प्रेम और विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों में नायिका के भावों की गंभीर एवं मार्मिक व्यंजना की है।

केशव की नायिका का प्रेमी किसी कार्यवश परदेस जा रहा है। बेचारी नायिका किंकर्तव्यविमूढ़ है। यदि वह नायक को रूकने के लिए कहती है तो उससे प्रभुता प्रकट होती है और यदि कहती है कि साथ ले चलो तो लोक–लज्जा का प्रश्न सामने आता है। अंत में वह अपने प्रिय से ही पूछती है कि इस अवसर पर उसे क्या कहना उचित होगा।

''जो हौं, कहौं, 'रहिजै' तो प्रभुता प्रगट होति

'चलन' कहौं तो हित हानि, नाहिं सहनो।

तैसिये सिखाओ सीख तुम ही सुजान प्रिय।

तुमहिं चलत मोहि कैसो कछु कहनो।''[1] (कविप्रिया)

'कविप्रिया' के इस उदाहरण में केशव ने विरहिणी नायिका की स्थिति का वर्णन किया है। नायक के परदेस गमन के समय नायिका का लोक–लाज के कारण नायक के साथ चलने के लिए न कह पाना, तत्कालीन परिवेश में स्त्री की परतंत्र स्थिति को दर्शाता है जहाँ उसे अपना प्रेम प्रकट करने की स्वतंत्रता का अधिकार नहीं है और अगर वह नायक

को जाने से रोकती है तो ऐसा लगता है कि वह पति को आदेश दे रही है जो उस समाज में संभव नहीं था। इस उदाहरण के माध्यम से केशव तत्कालीन समाज में स्त्री की स्थिति का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं।

'कविप्रिया' में जब गोपियाँ उद्धव के योग ज्ञान को तुच्छ मानकर अपनी वाक्पटुता से उसे परास्त करती हैं तब विप्रलम्भ शृंगार का यह वर्णन उन्हें सम्राट 'सूरदास' के निकट ले आता है। राधा उद्धव को मुँहतोड़ उत्तर देते हुए कहती हैं–

''राधा राधा रमन के, मन पठयो है साथ

उद्धव ह्यां तुम कौन सों, कहो योग की गाथ।''[1] (कविप्रिया)

वियोग शृंगार के अनेक छंदों में केशव स्त्री की संवेदना और मनोदशा की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं। केशव के शृंगार संबधी छंदों पर अश्लीलता का आरोप लगता है किंतु यदि केशव तत्कालीन दरबारी वातावरण और काव्यशास्त्रीय बंधनों में जकड़े न होते तो स्त्री की भावनाओं और अंतर्द्वंदों का चित्रण करने में व्यापक रूप से सफल हुए होते।

दरबारी वातावरण की रंगीनी में केशव भूल गए कि कामशास्त्र के आधार पर रस–शास्त्र की रचना संगत नहीं है। रस–शास्त्र लोक मर्यादा का सर्वथा उल्लंघन नहीं कर सकता। इसका यह तात्पर्य नहीं कि केशव का 'रति' या शृंगार वर्णन सर्वत्र हीन कोटि का है या उनमें भावाभिव्यक्ति की क्षमता ही नहीं थी। 'रसिकप्रिया' में ही कई स्थलों पर उनके वर्णन बड़े ही मार्मिक है। नायिका के 'गुरुमान' का वर्णन करते हुए उन्होंने बड़ा ही सजीव, स्वाभाविक और अवसरोचित चित्रण किया है–

''बूझत ही वह गोपी गुपालहि, आजु कछू हँसिकै गुन गाथहिं।

ऐसे में काहू को नाम सखी कहि, कैसे धौं आइ गयो ब्रजनाथहि।।

खात खवावति ही जु विरी, सु रही मुख को मुख हाथ की हाथहिं।

आतुर ह्वै उन आँखिन तैं अंसुवा निकसे अखरान के साथहिं।।''[2] (रसिकप्रिया)

प्रेम–गर्विता नायिका के विश्वास को कितनी जल्दी ठेस लगती है। जरा–सी बात उसके हृदय को किस सीमा तक प्रभावित कर सकती है – इसका बड़ा ही स्वाभाविक चित्र केशव द्वारा अंकित किया गया है।

 ISSN 2231-0584

'रसिकप्रिया' के एक दूसरे छंद में केशव ने नायिका में 'प्रकाश–उन्माद' को लक्षित करते हुए यह चित्र खींचा है–

''केशव चौकति सी चितवै क्षिति, पां धरकै तरकै तकि छाहीं।

बूझिये और कहै मुख और सु और की और भई पल माहीं।।''[1] (रसिकप्रिया)

इस छंद में विरहिणी नायिका की उन्मादी मनोदशा को सूक्ष्मता से उकेरा गया है। विरह में एक तरह का उन्माद उस पर तारीह है। कभी वह चौंककर धरती को देखती है, कभी उस पर पड़ने वाली छाया को, कभी कही हुई बात को कुछ का कुछ समझ कर कुछ और ही बोलने लगती है आदि। समाज में स्त्री की ऐसी स्थिति बहुत बार देखने में आती है। स्त्रियों के संबंध में केशव का सूक्ष्म निरीक्षण ऐसे दृश्यों में साकार हुआ है।

रसिकप्रिया तथा कविप्रिया के अनेक उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि सच्चे कवियों की दृष्टि केशव को अवश्य प्राप्त थी। परंतु वे पांडित्य प्रदर्शन की रुचि से, जो चमत्कार विधान को ही काव्य का उद्देश्य समझती थी, लाचार थे। तत्कालीन दरबारी वातावरण के अनुरूप काव्य रचना करने के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य विकल्प भी नहीं था।

इन्हीं कारणों से काव्योचित कल्पना जिसके लिए बड़े संयम तथा मार्मिकता की आवश्यकता है, उनमें दब–सी जाती है। इस प्रकार केशव के काव्य का अध्ययन करते हुए उनके स्त्री संबंधी विविध दृष्टिकोण दिखाई देते हैं। वे स्त्री की भावनाओं, संवेदनाओं तथा मनोदशा का सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत के साथ ही अपने अलंकारिक काव्यशास्त्रीय पांडित्य प्रदर्शन एवं तत्कालीन दरबारी वातावरण के कारण शृंगार के नग्न चित्र प्रस्तुत करते हुए हृदयहीन कवि के रूप में नजर आते हैं।

केशव की स्त्री–दृष्टि के विविध पक्षों पर विचार कर यह कहा जा सकता है कि केशव की एकपक्षीय विचारधारा से उन्हें स्त्री विरोधी समझना उचित नहीं। केशव की स्त्री संबंधी विचारधारा पर कई प्रकार से विचार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची

1. केशव ग्रंथावली– संपादकः पं– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडेमी, उ.प्र., इलाहाबाद
2. केशवदास– संपादकः विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. डॉ. रामचंद्र तिवारी– मध्ययुगीन काव्य–साधना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4. डॉ. शीतल– हिंदी के मध्यकालीन महाकाव्यों में स्त्री दृष्टि, हिंदी बुक सेंटर
5. डॉ. धर्मस्वरूप गुप्त, केशव काव्य : मनोवैज्ञानिक विवेचन, रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली

6. पूनम कुमारी– मध्यकालीन हिंदी काव्य का स्त्री पक्ष, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, अंसारी रोड़, दरियागंज
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल– हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्य मंदिर, नई सड़क, दिल्ली
8. हिंदी साहित्य का इतिहास– संपादकः डॉ– नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
9. पं. कृष्ण शंकर शुक्ल– केशव की काव्य कला, सुलभ पुस्तकमाला, बनारस
10. पं. विश्वनाथ मिश्र– हिंदी साहित्य का अतीत भाग–2, वाणी प्रकाशन
11. डॉ. सुधीन्द्र कुमार– रीतिकालीन शृंगार–भावना के स्रोत, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली

[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[2]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशवदास– संपादकः विजयपाल सिंह
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[2]केशवदास– संपादकः विजयपाल सिंह
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[2]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकरू पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[2]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
[1]केशव ग्रंथावली– संपादकः पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

 ISSN 2231-0584

'अहिंसा परमो धर्मः' की पशुपक्षिविचिन्तनम् में समुद्भावना

रामजीत यादव
शोधच्छात्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
मोबाइल : 8127747831
ईमेल : Ramjeetau31@gmail.com

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य महार्णव मन्थन में संलग्न–निमग्न स्वनामधन्य कवियों द्वारा अपनी नवनवोन्मेषशालिनी बौद्धिक प्रतिभा के बल से जिन महनीय ग्रन्थरत्नों को खोज निकालने का स्तुत्यात्मक प्रयत्न किये हैं, उन्हीं काव्यरत्नों के मध्य आजीवन मनसा वाचा कर्मणा भारतीय संस्कृति एवं सुरभारती के अनन्य उपासक रहे डॉ० हरिनारायण दीक्षित प्रणीत पशुपक्षिविचिन्तनम नामक खण्डकाव्य अनमोल रत्नों का आकर है । डॉ० हरिनारायण दीक्षित का जन्म भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश प्रान्त में स्थित जालौन जनपद अन्तर्गत पत्रालय सरावन के श्पढ़कुलाश नामक गॉव में 13 जनवरी 1936 ई० को और देहावसान 05 मई 2019 को हुआ था । इनके माता–पिता एवं गुरु का नाम क्रमशः श्रीमती सुदामा देवी, पं० श्रीरघुवीर सहाय दीक्षित तथा स्वामी श्रीविद्यानन्द सरस्वती था । इनकी शिक्षा–दीक्षा प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही पद्धतियों से सम्पन्न हुई थी । यह दर्शन, व्याकरण एवं साहित्य के विदग्ध कोटि के विद्वान् थे । इन्होंने अनेक शिक्षण संस्थानों में अध्यापन कार्य किया और अन्त में सम्प्रति उत्तराखण्ड विद्यमान कुमायूँ विश्वविद्यालय,नैनीताल में अध्यापन सेवा प्रदान करते हुए; आचार्य एवं संस्कृत–विभागाध्यक्ष तथा अधिष्ठाता कला– संकाय पद को समभिभूषित करते हुए, सेवा–निवृत्तिकालिक अवकाश ग्रहण किया । किन्तु संस्कृत भाषा के प्रति अप्रतिम निष्ठा के कारण तथा इसके अभ्युत्थान को लेकर आजीवन मनसा–वाचा–कर्मणा समर्पित रहे और अपनी काव्यसाधना द्वारा संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं एवं लोकजीवन के विभिन्न पक्षों पर इकतीस महत्त्वपूर्ण रचनाओं की सर्जना की है, जो सम्प्रति प्रकाशित हैं और संस्कृत साहित्य के संवर्धन हेतु निश्चय ही महत्त्वपूर्ण अवदान हैं । काल के निकष पर कंचन की भाँति शोभायमान उन्हीं कालजयी कृतियों के मध्य पशुपक्षिविचिन्तनम नामक खण्डकाव्य कवि की पशुपक्षि प्राणिवर्ग जगत् विषयिणी असाधारण अहिंसात्मक प्रवृत्ति का अद्भुत परिचायक है । इसमें कवि ने अपनी अपूर्व कल्पनात्मक सर्जनाशक्ति के माध्यम से वेद, उपनिषद्, आर्षकाव्य रामायण–महाभारत, इतिहास, पुराण आदि प्रतिष्ठित शाश्वत भारतीय संस्कृति के प्राणभूत तत्त्व अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धान्त को समुद्भावित किया है । यह खण्डकाव्य पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में वर्णित है ।

प्रस्तुत काव्य के माध्यम से कवि ने वर्तमान समय में मानव समाज द्वारा मनुष्येतर अहिंसात्मक प्राणियों अर्थात् हिंसारहित पशु–पक्षियों के प्रति अत्यन्त नृशंसतापूर्ण तरीके से

 ISSN 2231-0584

निरन्तर किए जा रहे हत्या आदि बर्बरतापूर्ण हिंसात्मक वर्ताव, अपराध एवं कृत्य को उजागर किया है और इस पापकर्म को रोकने के लिए विद्याधर नामक वैद्य के माध्यम से उपायभूत साधन को भी प्रस्तुत किया है । कविवर डॉ० दीक्षित ने प्रकृत काव्य में मनुष्यों द्वारा दिन–प्रतिदिन अबाध गति से की जा रही विभिन्न प्रकार की प्राणि–हिंसा के क्रूरतम कार्य को देखकर तथा उन प्राणियों के प्रति सहृदयतापूर्ण भावनात्मक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर विभिन्न वर्गों के पशु–पक्षियों की संगोष्ठियों के माध्यम से इस पृथ्वी पर उनके ऊपर मनुष्यों द्वारा की जा रही प्रताड़ना से उनकी संख्या में नित्यप्रति हो रहे उत्तरोत्तर ह्रास व दयनीय दशा आदि कष्टकारी व्यथाओं का वर्णन किया है यह आशंका भी व्यक्त किया है कि दिनों–दिन उत्तरोत्तर सुरसा के मुख की भाँति अधिकाधिक प्रसार को प्राप्त होती मनुष्य की मांसभक्षण पाशविक हिंसात्मक प्रवृत्ति के अत्याचारों को यदि रोका नहीं गया तो आने वाले निकट भविष्य में उन प्राणियों के कुछ वर्गों की संख्या अत्यन्त नगण्य अथवा विलुप्तप्राय न हो जाए । अतएव मनुष्य की इस जघन्य अपराधिक प्रवृत्ति को रोकने के उद्देश्य से विद्याधर नामक वैद्य द्वारा उन बहुतेरे पशु–पक्षी समूहों की संगोष्ठियों में सुनी गई, उनकी समस्त व्यथात्मक कथाओं को एक प्रार्थना–पत्र के माध्यम से देश की सुचारू शासन व्यवस्था के कर्णधार बने महामहिम राष्ट्रपति के पास प्रेषित करवा कर, उनकी जीवहत्या रूपी इस विकराल समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट कराने तथा उन प्रकृति के अमूल्य उपहार स्वरूप पशु–पक्षियों के संरक्षण एवं संवर्धन को लेकर आवश्यक कदम उठाने का रोचकतापूर्ण तरीके से अत्यन्त ही हृदयावर्जक वर्णन प्रस्तुत किया है ।

सम्प्रति समुपलब्ध हमारे सम्पूर्ण भारतीय संस्कृत– वाङ्मय के अनेकानेक बहुमूल्य ग्रन्थरत्नों, चाहे वह वैदिक हों अथवा लौकिक हों, सभी में वैश्विक जगत् कल्याण की भावना से किसी न किसी रूप में अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धान्त का प्रतिपादन, स्थान व महत्त्व दिया गया है और इस सिद्धान्त पर विहंगम दृष्टिपात करते हुए, इसकी सार्वजनीनता एवं अवश्यकरणीयता यथा–महत्त्व, पालन, संवर्धन, लोकव्यापी प्रचार– प्रसार तथा जीवन में चरितार्थ करने आदि पर अत्यधिक जोर दिया गया है। वैश्विक लोक–कल्याण की दृष्टि से आप्लावित भारतीय संस्कृति के इस अन्यतम प्राणभूत सिद्धान्त की लगभग विश्व के सभी समाजशास्त्री, इतिहासकार, साहित्यकार, भाषाविश्लेषक, दार्शनिक आदि मुक्त कण्ठ से प्रसंशागान करते हैं। हमारी संस्कृत भाषा विश्व की सबसे प्राचीनतम तथा सर्वाधिक लोकख्याति अर्जित भाषा है। अतएव सभी दृष्टियों से इसका सर्वप्राग्वर्ती होना ही अपने आप में विभिन्न तरीके से साक्ष्य है, अनन्यतम प्रमाण का प्रस्तोता है ।

हमारी भारतीय संस्कृति इस अहिंसा विषयक मूलमन्त्र के माध्यम से न केवल एक मानव को दूसरे मानव के प्रति, अपितु मानवेतर प्राणियों अर्थात् पशु– पक्षियों आदि जीव–जन्तुओं तथा पेड़–पौधे, नदी–पर्वत, झील–झरने, वनस्पतियाँ आदि जितनी भी इस धरा पर विद्यमान विभूतियाँ हैं, उन सभी के प्रति प्रेम, स्नेह, दया, करुणा, सहानुभूति, उदारता, मैत्री इत्यादि भाव धारण करने की शिक्षा देती है । तदनुसार मन–वचन–कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाना अहिंसा है । इस तरह के उपरोक्त भाव ही सहृदय के

 ISSN 2231-0584

मन में अहिंसारूपी उस महाव्रत के पालन–रक्षण–संवर्धन की प्रेरणा जागृत कर देते हैं, जिसे भारतीय मनीषियों ने मान्य पञ्च–महाव्रतों में प्रमुखता से स्थान दिया है । प्रकृत महाव्रत को ग्रहण एवं धारण करने की शिक्षा सर्वप्रथम हमें सृष्टि के आदि में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा अपौरुषेय छान्दस् वाणी रूप में साक्षात्कार किये गए, वैदिक साहित्य में देखने को मिलती है । इस विचारधारा का प्रस्फुटन सर्प्रथम हमें ऋग्वेद में यागीय–पशुबलि के लिए यज्ञशाला में लाकर बाँधे गए शुनःशेप आख्यान के रूप में देखने को मिलती है । जहाँ वह निःसहाय हो कातर नेत्रों और करुणा भरी कण्ठध्वनि से वरुणादि देवताओं की स्तुति करता हुआ, उनसे अपने शरीर के पाश (बन्धनों) को हटाने के लिए कहता है ।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं वृत। अवाधमानि जीवसो ।[1]

अर्थात् हे वरुण देवता! (आप) हमारे ऊपर वाले पाश को ऊपर से हटा दीजिए । मध्य तथा निचले पाश को भी मेरे जीने के लिए नीचे से हटा दीजिए ।

इस तरह वह उन वरुण, अग्नि, सविता, इन्द्र आदि देवताओं की करुण स्तुति करते हुए, अपनी शारीरिक बेड़ियों से मुक्त हो जाता है । अतः इस ऋग्वेदीय आख्यान में स्पष्ट रूप से यज्ञजनित हिंसा की ही ओर संकेत किया गया है । इसी प्रकार अथर्ववेद का मन्त्रद्रष्टा ऋषि अग्नि देवता की स्तुति करते हुए कहता है–

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।।[2]

अर्थात् हे अग्निदेव ! जो राक्षस अश्वादि पशुओं का मांस भक्षण कर पुष्ट होता है; जो दुष्ट अवध्य गौ (भैंस आदि दुधारू पशुओं) के दूध को विनष्ट करता है, अपनी शक्ति से ऐसे सभी दुष्टों का शिरोच्छेदन कर दें ।

उपरोक्त वैदिक मन्त्र के अनुशीलन से दो बातें स्पष्ट रूप से निकल कर आती हैं । एक तो हिंसाचारी व्यक्ति दण्डनीय पात्र होते हैं । दूसरा यह कि समाज के लिए उपयोगी निरपराध गौ, अश्वादि पशु अवध्य हैं अर्थात् कथमपि इनकी हत्या नहीं की जानी चाहिए ।

इसी विचारधारा का पल्लवन–पोषण आगे चल कर उपनिषद् रूपी लोककल्याणकारी भूमि पर भी देखने को मिलता है । जहाँ उपनिषदीय ऋषि विश्व मङ्गल की कामना से अभिप्रेरित होकर ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहता है कि–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

 ISSN 2231-0584

अर्थात् इस पृथ्वी पर जितनी भी चराचर विभूतियाँ(प्राणी) हैं । सभी सुखी हों, सभी नीरोग (स्वस्थ) हों, सभी शुभ (कल्याणकारी/अच्छा)देखें और किसी को किसी भी प्रकार का कष्ट (दुःख) न हो ।

इस लोकोपकारी मन्त्र पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर इसके मूल में अहिंसात्मक भावना का ही संकेत मिलता है ।

इसी प्रकार नचिकेता–यमराज के संवाद रूप में लोकविश्रुत कठोपनिषद् में पिता वाजश्रवस द्वारा यज्ञ के दक्षिणा स्वरूप पुरोहितों को दान की गई जीर्ण–शीर्ण गौओं की दयनीय दशा को देखकर बालक नचिकेता के हृदय में दया, श्रद्धा का संचार हो उठता है और वह सोचता है कि इस प्रकार का दान देने वाले यजमान निःसंदेह सर्वथा सुखों से रहित अर्थात् नरकलोक को प्राप्त करते हैं–

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।

अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ।।[3]

प्रस्तुत मन्त्र में यह संकेत दिया गया है कि पुत्र नचिकेता के प्रति मोहवश वाजश्रवस उपयोगी और पुष्ट दुधारू गौओं का दान न करके, अत्यन्त जीर्णता को प्राप्त गौओं को दक्षिणा स्वरूप यजमानों को प्रदान करते हैं । यहाँ उनका स्वार्थपन झलकता है जिसको लेकर नचिकेता उन्हें सावधान करता है ।

अतः यहाँ ऋषि वाजश्रवस द्वारा सर्वथा दयनीय दशा को प्राप्त जीर्ण–शीर्ण गौओं द्वारा यज्ञीय दान क्रिया सम्पन्न करने को नरकलोकगामी बतलाया गया है ।

इसी भावना को लक्षित करते हुए ईशावास्योपनिषद् में ऋषि का कथन है कि जो विवेकी व्यक्ति (सूक्ष्म से लेकर स्थूल भूत चराचर जगत् पर्यन्त) समस्त भूतों (प्राणियों) को आत्मा में ही देखता है तथा समस्त भूतों में आत्मा को ही देखता है, वह उस (भेदरहित–दृष्टि) के कारण (किसी से भी)घृणा नहीं करता । अर्थात् उक्त प्रकार की अभेद दृष्टि रखने वाला व्यक्ति सभी प्राणियों के प्रति समदर्शिता की भावना रखता है तथा अपने इस तथ्य की पुष्टि के लिए अन्तिम मन्त्र में वह अग्नि देवता को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे अग्नि देव! हमारे समस्त कर्मों के अवबोधक आप ऐश्वर्य के लिए हमें शोभन(कल्याणकारी) मार्ग से ले चलिए तथा हमसे कुटिल (अधोगामी) मार्गानुसारण रूप पाप को अलग कर दीजिए अर्थात् हमें विपरीत (गलत) मार्ग पर चलने से बचाइए।हम आप को वारंवार नमस्कार वचन कहते हैं ।

 ISSN 2231-0584

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजिगुप्सते ।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।।[4]

हमारी लौकिक–संस्कृत–साहित्य–रूपी–गङ्गा का तो आविर्भाव ही अहिंसक प्राणियों पर मांसाहार के लोलुप आखेटकों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों को देखकर मर्मान्तक पीड़ा से आप्लावित हो जाने वाले आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के हृदय–रूप हिमालय से हुआ है । जहाँ एक व्याध के बाणों से आहत निरपराध क्रौञ्चमिथुन में से एक को घायल हो धरा पर तड़पता हुआ तथा उन दोनों के पारस्परिक वियोग जनित करुण क्रन्दन को देखकर, उन सहृदय महात्मन् के मुख से अकस्मात् शोक की छन्दमयी धारा शाप–रूप में प्रस्फुटित हो उठती है और वे उस व्याध के इस अत्यन्त निन्दित कृत्य पर उसको इस पृथ्वी लोक में अनन्त काल तक प्रतिष्ठा न पाने का असाधारण शाप देते हैं–

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम।।[5]

भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता को लक्ष्य में रखकर ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का स्पष्ट कथन है–

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।[6]

इसी भाँति महाभारत में वर्णित शिवि उपाख्यान के अन्तर्गत बाज के आक्रमण से भयभीत हो प्राणरक्षा के निमित्त शरणागत कबूतर के प्राणों की रक्षा हेतु उशीनर नरेश राजा शिवि अपना शरीर ही उस बाज के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं (महाभारत,वनपर्व,अध्याय,130) । सूर्यवंश शिरोमणि राजा दिलीप द्वारा सिंह के आक्रमण से कातर हुई, नन्दिनी गौ की रक्षा हेतु मांस–पिण्ड के समान स्वयं को उस शेर के सम्मुख प्रस्तुत करके कामधेनु की पुत्री को अभय प्राणदान दिलाना (रघुवंश, 2/59) तथा सन्तान प्राप्ति की कामना से पत्नी सहित उसकी निष्ठा पूर्वक सेवा करना। दयालु हृदय राजा जीमूतवाहन द्वारा पक्षिराज गरुड़ के आतंक से लुप्तप्राय हो रही सर्पजाति के रक्षार्थ खुद को गरुड़ के लिए उपलब्ध कर देना

(नागनन्द नाटक, चतुर्थ एवं पंचम अंक) आदि अहिंसात्मक दृष्टिकोणपरक उदारणों से सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय परिव्याप्त है ।

संस्कृत साहित्य के पर्यालोचन से हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि पशु–पक्षियों के आखेट(शिकार) से अपनी हिंसात्मक वृत्ति की क्षुधा–पिपासा को शान्त करने वाले राजाओं को भी तपोभूत–ऋषियों ने शिष्टाचार या मर्यादा का पाठ पढ़ाया था । उद्धरण के रूप में विश्वविश्रुत कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तल में कण्व ऋषि के आश्रम परिसर में निर्भीक विचरते हुए मृग को मारने के लिए अच्छी तरह से अपने बाणों का लक्ष्य बनाने वाले हस्तिनापुरनरेश दुष्यन्त को इस जघन्य अपराध कृत्य से विरत करने हेतु तपस्वियों का कथन है–

भो भो राजन् !आश्रममृगोऽयम् । न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्,

मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्नि ।

क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं,

क्व च निशितनिपातवज्रसाराः शरास्ते ।।

वहीं पर वे तपस्वी राजा को राजधर्म के महत्त्व को भी समझाते हुए कहते हैं कि राजाओं का शस्त्र धारण करना तो पीड़ितों, दीन– दुःखी,असहाय–दयनीय तथा सताए जा रहे लोगों की रक्षा करना है न कि निरपराध प्राणियों को मारने के लिए और उस पर भी आश्रम परिसर के प्राणियों पर तो प्रहार करने के लिए बिल्कुल ही नहीं ।अतः अच्छी प्रकार से धनुष पर प्रतिसन्धान किये गए अपने बाणों को आप उतार लीजिए ।

तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् ।

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ।।[7]

इसी प्रकार नैषधीयचरित में राजा नल के स्वेच्छाचारी व्यवहार की निन्दा करने वाला हंस वृत्तान्त तथा कादम्बरी में वर्णित शुक वृत्तान्त आदि अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धान्त के अद्वितीय परिचायक, समर्थक, पोषक एवं संवर्धक हैं ।

प्रकृत खण्डकाव्य पशुपक्षिविचिन्तनम में भी भारतीय संस्कृति की इसी अक्षुण्ण परम्परा का प्रतिपादन किया गया है। यह काव्य मानुषेतर प्राणियों के प्रति अहिंसात्मक दृष्टिकोण को लेकर कवि के हृदय में विद्यमान करुणा, दया, स्नेह आदि का मूर्त्त रूप है ।

 ISSN 2231-0584

डॉ० दीक्षित भारतीय संस्कृति विशेषकर वैदिक संस्कृति के पक्षधर थे । वे सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे । यही कारण है मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन की जा रही पशु–पक्षियों की हिंसाजनित हत्या से वे बहुत आहत हो उठते हैं । फलस्वरूप अपनी इस व्यथा को पशु–पक्षियों की संगोष्ठियों के माध्यम से व्यक्त करते हुए, अपने इस खण्डकाव्य को मांसाहारी हिंसक प्रवृत्ति वाले मनुष्यों को ही समर्पित करते हैं ताकि उनका अंतःकरण जागृत और परिष्कृत हो सके तथा उनमें भी मानवेतर प्राणियों के संरक्षण–संवर्धन की भावना एवं मानवता का संचार हो सके ।

भूत्वापि मनुजा लोके येऽश्नन्ति पशु–पक्षिणः ।

अर्पये स्वमिदं तेभ्यः पशुपक्षिविचिन्तनम् ।।[8]

अर्थात् इस संसार में मनुष्यजाति में पैदा होकर भी जो लोग पशुओं और पक्षियों को खाते हैं, उन्हें मैं अपना यह पशुपक्षिविचिन्तनम् नामक काव्य समर्पित कर रहा हूँ ।

कविवर डॉ० दीक्षित ने निरीह पशु–पक्षियों की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानकर अपने इस काव्य के माध्यम से उनकी वेदना को प्रकट करने हेतु किसी विद्याधर नामक वैद्य को निमित्त बनाया है, जो उन सभी निरीह प्राणियों की व्यथा को जानकर तथा इस विकराल समस्या के निवारणार्थ राष्ट्रपति के पास – इस आशय से कि, वह उनके संरक्षण का समुचित प्रबन्ध अवश्य ही करेंगे, एक प्रार्थना–पत्र प्रेषित करवाते हैं । कथानक का आरम्भ किसी एक गाँव में रहते हुए तथा वैद्यक कार्य द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले विद्याधर नामक वैद्य से होता है । वह वैद्य जी मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं के रोग का भी उपचार करते हैं तथा पशु–पक्षियों की बोलियों के भी जानकर होते हैं। एक दिन वह अपनी जड़ी–बूटियों का संग्रह करने के लिए जंगल में जाते हैं तथा वे वहाँ एक सरोवर के तट पर किसी गजराज की अध्यक्षता हो रही पशुओं की सभा को दखते हैं और वहाँ शीघ्र ही उनके समीप पहुँचकर एक झाड़ी में छिपकर उन तृणजीवियों के सम्पूर्ण वार्तालाप का चुपचाप श्रवण पान करते हैं ।[9] सर्वप्रथम उस सभा की अध्यक्षता करने वाले वरिष्ठ हाथी द्वारा वहाँ उपस्थित सभी पशुवर्ग समूहों को सम्बोधित करते हुए, सभी के प्रति स्वागत भाषण किया जाता है तथा उन्हें क्रमपूर्वक अपनी–अपनी समस्या से अवगत कराने को कहा जाता है। तदनन्तर उनमें से सबसे पहले भैंसा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए, उनकी समस्त व्यथा–समस्या को प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि हे गजेंद्र ! यहाँ किसानों द्वारा हम लोगों से बड़ी निरंकुशता से खेती सम्बन्धित तरह–तरह के कार्य लिये जाते है, किन्तु हमें पर्याप्त भोजन नहीं दिया जाता है और न ही पर्याप्त विश्राम करने दिया जाता है । वे लोग हम से भारी भरकम बोझ ढुलवाते है तथा अपने मनोरंजन हेतु हमें आपस में लड़वाते भी हैं । इसके अतिरिक्त देवी–देवताओं को आत्म अनुकूल बनाने के लिए उन्हें हमारी बलि भी चढ़ाते हैं और जब हम काम करने में असमर्थ अर्थात् वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं तो वह हमें वधिक

के हाथ बेच दिया करते हैं । इसी प्रकार वे हमारी मादाओं का सारा दूध भी दुह लेते हैं तथा उनके बच्चों के लिए भी नहीं छोड़ते हैं और इतना ही नहीं बल्कि दूध देने में असमर्थ एवं प्रजनन शक्ति से रहित उनको भी वह कसाई के हाथों बेच देते हैं। इस तरह से वे दयारहित मनुष्य हमको अत्यधिक सताते हैं। इसलिए हे स्वामी ! अपने धर्म से रहित मनुष्यों से मेरी जाति की रक्षण के उपाय कीजिए; ताकि हमारी कौम सुखमय व सुचारू जीवन व्यतीत कर सके।[10]

उस भैंसे के इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण व्यथा कह लेने के बाद अपने वर्गों का नेतृत्व करने वाला एक बैल उठकर सभा अध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए, अपनी समस्या सभी के समक्ष रखते हुए कहता है कि हे गजेन्द्र ! कृषि की प्रधानता वाले अपने इस देश में हम बैलों के कुटुम्बियों पर भी बड़ा संकट खड़ा हो गया है । यहाँ के कृषक लोग हम बैलों को महत्त्व नहीं देते हैं ।

वे हमें ठुकरा कर ट्रेक्टर रखना पसन्द करते हैं और हमें हीन भावना से देखते हैं तथा जो लोग हमें रखते भी हैं । वह हमसे दिनभर अत्यधिक काम लेते हैं और हमारी डण्डे से खूब पिटाई भी करते हैं किन्तु हमें समय से भरपेट भोजन भी नहीं देते हैं । इस प्रकार जब हम बूढ़े हो जाते हैं, तो वह हमें धन के लोभ में वधिक के हाथों बेच देते हैं । इसी तरह गौएँ जब तक दूध देने लायक रहती हैं तब तक उनका पालन–पोषण करते हैं किन्तु बूढ़ी होने पर हाय ! उन्हें भी कसाई के हाथों बेच देते हैं । अतएव आप हमारी भी रक्षा का उपाय, इन बेरहम मानवों से कीजिए ।

श्रान्तांस्तथास्मान् क्षुधितान् पिपासितान्

न हन्त ते विश्रमयन्ति निर्दयाः।

स्वार्थस्य पूर्त्यै च तथाविधानपि

तेऽस्मान् स्वदण्डैर्बत ताडयन्त्यलम।।

वृद्धा भवामश्च यदा वयं तदा

विक्रीणते ते वधजीविपाणिषु।

कृतघ्नचित्तान् मनुजान् धिगीदृशान्

जानन्ति धर्मं न तु पालयन्ति ये।।

गावोऽपि यावच्च भवन्ति दुग्धास्–

 ISSN 2231-0584

तावल्लभन्ते मनुजात्तृणं जलम्।

वार्द्धक्यभावे सति हन्त ता अपि

विक्रीणते ते वधजीविपाणिषु।।[11]

तदनन्तर इसी प्रकार ऊँट, घोड़े, गधे, बकरे, भेड़े, हिरण, खरगोश सभी ने क्रमशः अपनी–अपनी जाति के लोगों पर मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन भाँति–भाँति से की जा रही हिंसा, प्रताड़ना,वध, अत्याचार,आतंक आदि पर ग्लानि प्रकट करते हैं तथा सभा की अध्यक्षता कर रहे गजराज से विनती करते हुए, इस गम्भीर समस्या से मुक्ति पाने एवं अपनी रक्षा का उपाय पूछते हैं । तदुपरान्त पशुओं की उस सभा की अध्यक्षता कर रहे गजराज मनुष्यों के इस क्रूरतम आचरण की कटु निन्दा, भर्त्सना करते हुए, इस विकराल संकट से उनकी रक्षा हेतु उन्हें पर्याप्त आश्वासन दिलाते हुए सभा को विसर्जित करता है ।

पश्यामि यत्समाजेऽस्मिन्, मनुष्याणां सहायकाः।

युष्मासु कतिचिद्–वर्जं, सर्वे सन्ति महीतले।।

तृण–पत्रादिकं भुक्त्वा, भूत्वा तद्–वशवर्तिनः।

परिश्राम्यन्तहोरात्रं, तेभ्यस्तैः परिचालिताः।।

तथाप्यमी तु युष्मासु, मनुष्यास्सन्त्यसाधवः।

चिन्तं चिन्तमिदं चित्ते, दूयमानोऽधुनास्म्यहम्।।

नाना स्वादुषु शाकेषु, देशेऽस्मिन्नुद्–भवत्स्वपि।

हन्त मांसाशना भूता, मनुष्या अधिसङ्ख्यकाः।।

तृण–पत्रभुजश्चाऽपि, स्वसहायांश्च सर्वदा।

पशून् प्रति कृतघ्ना ये, मनुष्यान् धिक्–करोमि तान्।।

अहिंसा परमो धर्म्मो, मन्यते स्मात्र भारते।

किन्तु हन्ताद्य धर्म्मोऽयं, दृश्यते समुपेक्षितः।।

नूनं तेषामिदं कार्यं, नास्ति न्याय्यं कथञ्चन्।

न यशस्यं प्रशस्यं नो, न धर्म्यं न च नैतिकम।।

हताशैः किन्तु नो भाव्यं, भवद्भिस्सर्वबन्धुभिः।

विपदोऽस्या विनाशार्थं, प्रार्थयिष्येगजाननम्।।

गणेशः पार्वतीपुत्रो, महादेव–प्रियात्मजः।

सर्वदेवप्रियोदेवो, नूनमस्मानभविष्यति।।[12]

इस तरह उन पशुओं की नाना प्रकार की व्यथाओं को सुनकर चिन्ता के समुद्र में डूबे हुए और उनकी रक्षा के लिए क्या किया जाय? इस प्रकार सोचते हुए वैद्य जी घर लौट जाते हैं । किन्तु एक दिन फिर वह उसी जंगल से जब अपनी जड़ी–बूटियों का संग्रह करके घर को लौटते समय अचानक उन्हें फिर उसी सरोवर के पास विद्यमान विशाल वट–वृक्ष पर चिड़ियों की आवाज सुनाई पड़ी और वे पहले भाँति वहाँ पहुँच जाते हैं तथा उन पक्षियों द्वारा पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ की अध्यक्षता में की जा रही संगोष्ठी के वार्तालाप को शान्त मन से सुनते हैं। गरुड़ का स्वागत भाषण समाप्त हो जाने पर उन पक्षि–समूहों में से सर्वप्रथम मोरों का मुखिया अपने वर्ग की व्यथा को सुनाना आरम्भ करता है और सभा अध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे पक्षिराज ! इस पृथ्वी पर हम मोरगण अपनी मधुर बोली, मनोहर नृत्य आदि से सभी का मनोरंजन करते हैं और अपनी उपस्थिति से लोगों के निवास के आसपास के क्षेत्र को भी सर्पजाति से रहित बनाकर उन्हें अभय प्रदान करते हैं । किन्तु खेद है कि अत्यन्त हिंसक प्रवृत्ति वाले तथा हमारे सुन्दर पंखों के लालची मनुष्य हमारी जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। अतएव हम मोरों की संख्या आजकल यहाँ लगातार घटती जा रही है । अस्तु हे खगवर! इन मनुष्यों से हमारी रक्षा का कोई उपाय करें ।

पक्षेभ्य एव वत केऽपि जनाश्च हिंस्राः

कुर्वन्ति कूटविधिना भुवि नोऽत्र हत्याम।

हा हन्त चाद्य भुवि केऽपि जना जघन्या

अस्माकं–मांसमपि मोदयुता अदन्ति।।

तस्मादनारतमिहास्त्यपचीयमाना

सङ्ख्याधुना विहगराज ! बतास्मदीया।

तच्चिन्तयाशु खगनाथ ! कमप्युपायं

 ISSN 2231-0584

येनास्तु मानवकुलादिह नोऽभिरक्षा।।[13]

तदुपरान्त अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाला तोता अपनी समस्या प्रस्तुत करता है ।

सततपञ्जरिता इह ते शुका

नहि भवन्ति वतोड्डयितुं क्षमाः।

तदनुभूतभयाश्च समन्ततो

ह्रदि रुदन्ति सदा हतजीवनाः।।

कतिपये शुक–शावक–विक्रयं

विदधते वत रूप्यकलब्धये।

सततपञ्जरितास्तदमी शुका

इह भवन्ति कुलादपि वञ्चिताः।।

तदथ नाथ ! मनुष्यकरग्रहा–

दचिरमेव शुकानपि रक्ष नः।

व्रजतु येन खगाधिपते! लयं

न शुकजातिरियं जगतीतले।।[14]

इसी प्रकार क्रमशः कबूतर, मुर्गा, तीतर, बटेर, गौरैया आदि पक्षियों ने भी अपने ऊपर मनुष्यों द्वारा तरह–तरह से की जा रही प्रताड़ना, हिंसा आदि को बतलाते हुए, मनुष्यों से अपनी रक्षा हेतु सभापति गरुड़ से प्रार्थना की ।

तत्पश्चात् अन्त में सभापति गरुड़ अपने अध्यक्षीय भाषण में मनुष्यों के इस हिंसापूर्ण घृणित कृत्य की भर्त्सना करते हुए, उन्हें उनकी रक्षा के विषय में पर्याप्त आश्वासन दिलाते हैं । यथा–

प्रकृतिः पञ्चभेदैषा,सर्वेषां जननी मता।

मता माता सर्वेषां, प्राणिनां पोषणादियम्।।

 ISSN 2231-0584

तदत्र जीवितुं सर्वे, जीवा अर्हन्त्यसंशयम्।

लभन्ते शरणं सर्वे, मातुरङ्के तदात्मजाः।।

कपोता वत भुज्यन्ते, देशेऽस्मिन् भूपतेः शिबेः।

विस्मितोऽहमिदं श्रुत्वा, तस्याप्यात्मा रुदन् भवेत्।।

मन्येऽधुना महीलोके, मानवता विनश्यति।

लोपं याति दया–गङ्गा, शोषं च करुणापगा।।

अहिंसा–यमुना चापि, सौजन्याम्भोनिधिस्तथा।

साम्प्रतं गच्छतो नाशं, हिंसा तस्मात् प्रवर्धते।।

भूयिष्ठं–शेमुषीमत्त्वान्–मानवा एव भूतले।

प्रसारार्थं हयहिंसाया अपेक्ष्यन्तेऽमरैरपि।।

यद्येत एव कुर्व्वन्ति, प्रतीपाचरणं भुवि।

तन्मन्ये रक्षका एव, जाता बतात्र भक्षकाः।।

श्रोष्यते न विहङ्गानां, सायं प्रातः कलरवः।

रुतं च राजहंसानामपि नाकर्णयिष्यते।।

तदा प्रकृतिरास्माकी, हीनैकाङ्गा भविष्यति।

वीक्षिप्यते तथा मूका, पक्षि–हीना समन्ततः।।

प्राणि हत्यासमं पापं, लोके किञ्चिन्न विद्यते।

कुसंस्कार वशाः किन्तु, प्रतियन्त्यत्र नैव ते।।

अहिंसा परमो धर्मो, दयास्ति परमं तपः।

क्षमास्ति परमं दानं, नेत्यपि तत्र बोध्यते।।

 ISSN 2231-0584

अत्याचारं भवत्स्वेषामद्य श्रुत्वा स्वमानसे।

अनुभवाम्यहं कोपं, भृशं तान् दुर्जनान् प्रति।।

अतः मैं अपने स्वामी श्रीविष्णु जी से आप लोगों की इस पीड़ा को दूर करने के लिए अवश्य कहूँगा ।

त्यज्यमाथ चिन्तेय, स्वं स्वं नीडं यथासुखम्।

कुरुध्वं च स्मृतिं विष्णोरवश्यं स प्रसत्स्यति।।[15]

इस प्रकार गरुड़ के आश्वासन युक्त वचनों से सन्तुष्ट होकर वे सभी पक्षी अपने–अपने घोंसले को चले जाते हैं । उनकी इन मर्मान्तक कथाओं को सुनकर वैद्यराज विद्याधर बहुत दुःखी होते हैं और वहाँ से अपने घर की ओर चल देते हैं, किन्तु रास्ते भर उन पशु–पक्षियों के विषय में ही सोचते रहते हैं। वे उनकी वेदना को कई दिनों तक विस्मृत नहीं कर पाते हैं और उनकी वेदना को दूर करने का उपाय सोचते हुए, देश के महामहिम राष्ट्रपति के पास एक प्रार्थना–पत्र भेजते हैं जिसमें उन निरीह अहिंसक प्राणियों की समस्त पीड़ा का यथाश्रुत वर्णन करते हुए, उनकी जीवन रक्षा हेतु आवश्यक कदम उठाने के लिए विनती करते हैं ।

तत्प्रार्थ्यते त्वां कुरु किञ्चिदीदृशं

येनात्र भूयात्पशु पक्षि रक्षणम्।

देशेऽत्र सर्वत्र तवैव शासनं

प्रशासनं च प्रभवत्यनारतम्।।

निषिध्य हत्यां पशु–पक्षिणां त्वया

संरक्षणीयाथ मनुष्यसंस्कृतिः।

नो चेत्तदद्याप्यवशिष्टमानवा–

नपीह हा व्याप्स्यति दैत्यसंस्कृतिः।।

त्वया हे प्रभो ! तत्पशु–पक्षि–हिंसा

विधीयमाना बहुधा मनुष्यैः।

 ISSN 2231-0584

निषेधनीया च समापनीया

येनात्र भूयान्मनुजत्वरक्षा।।

अथातिशीघ्रं पशु–पक्षि–रक्षां

कृत्वा महत्त्वं हि मनुष्यतायाः।

संरक्ष हे राष्ट्रपते ! भव त्वं

तेभ्यो गणेशो भगवांश्च विष्णुः।।[16]

इस प्रकार डॉ०दीक्षित ने अपने अन्य काव्यों में भी पशु–पक्षियों के प्रति हिंसा को देखकर खेद व्यक्त करते हुए जीवहिंसा का विरोध किया है । कवि ने भारतमाता–रोदिति महाकाव्य में भी मनुष्यों द्वारा पशु–पक्षियों पर किए जा रहे अत्याचारों एवं उनके मांसभक्षण रूप अपराध को अधोलिखित पद्यद्वय में अभिव्यक्त किया है–

क्वचित्पशूनां च निरागसामपि

त्वगस्थिमांसादि–जिघृक्षया जनाः।

कुर्वन्ति हत्यां कपटेन निर्दयं

मनुष्यताया नमयन्ति चाननम् ।।

क्वचित्कपोतांश्च बकांश्च वर्तकान्

क्वचिन्मयूरानपि तित्तिरान् क्वचिद् ।

शुकान् पिकांश्चापि कुक्कुटान् क्वचित्–

मांसाय विघ्नन्ति खलाः खगानपि ।।[17]

इसी प्रकार डॉ० दीक्षित के अन्य काव्यों– श्रीवल्लदेवचरित, मनुजाश्श्रृणुत गिरं मे, इदमपि श्रृणुत सखायः, दुर्जनचरितं आदि में निरीह प्राणिवर्ग के प्रति हिंसात्मक प्रवृत्ति का मुखरता से विरोध किया है । कवि ने अपनी लगभग सभी रचनाओं में अहिंसा परमो धर्मः पर पर्याप्त बल दिया गया है। वे जिओ और जीने दो के सिद्धान्त के पोषक थे । यही कारण है

 ISSN 2231-0584

कि वे भीष्मचरित महाकाव्य में राजकुमार देवव्रत के दीक्षान्तोपदेश के अवसर पर महामनीषी सर्वाचार्य के मुख से कहलवाते हैं कि–

पीडनीयाः परे नैव, न भाव्यं पीडितेन च।

'जीव–जीवय'–सिद्धान्तो, रक्षणीयस्स्वजीवने।।[18]

अर्थात् दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचाना; और न दूसरे से पीड़ित होना। अपने जीवन में 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त की रक्षा करना ।

इस प्रकार मनुष्यों द्वारा प्रकृति के अनमोल रत्न स्वरूप पशु–पक्षियों पर की जा रही क्रूर हिंसा, प्रताड़ना से डॉ० दीक्षित काफी आहत और उनकी सुरक्षा को लेकर काफी चिन्तित दिखलाई पड़ते हैं। यही कारण है कि उनका शोकपूर्ण हृदयोद्गार अमुक खण्डकाव्य के रूप में निःसृत हुआ है । इसके माध्यम से वह लोगों को भविष्य के लिए सचेष्ट करना चाहते हैं कि यदि उन निरीह प्राणियों के प्रति ऐसे ही निर्बाध रूप से हिंसा की जाती रही, तो निश्चित ही निकट भविष्य में वे समूल नष्ट अथवा लुप्तप्राय हो जायेंगे। उस स्थिति में हमारी वसुन्धरा निश्चित रूप से ही अपने एक आवश्यक अङ्ग से हीन हो जाएगी। अतः ऐसी स्थिति में जब लोगों में मानवीय मूल्यों, गुणों आदि का उत्तरोत्तर, पतन को प्राप्त होती हुई अमानवीय प्रवृत्ति के निवारणार्थ उन्हें 'प्रकृति की ओर लौटो' का महत् सदुपदेश प्रदान करने वाले, इस खण्डकाव्य की वर्तमानकालिक प्रासंगिकता निश्चित रूप से और अधिक बढ़ जाती है ।

कुल मिलाकर सम्पूर्ण काव्य का अनुशीलन करने पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि का प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः (दोंनो ही दृष्टियों से) ध्येय लोगों को अहिंसा परमो धर्मः के सिद्धान्त पालन–रक्षण–संवर्धन के लिए प्रेरित करना तथा इस पृथ्वी पर मानवीय मूल्यों के पोषण–विस्तार द्वारा उन्हें सभ्य–सुसंस्कृत सम्पूर्ण मानव बनाना है। विशेषकर दिन–प्रतिदिन अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति से दूर होती जा रही युवा पीढ़ी को जागृत कर उन्हें इसके संरक्षण हेतु प्रेरित करना । अतएव वर्तमानकालिक परिप्रेक्ष्य में मानवतावादी दृष्टिकोण को लक्षित कराने वाली बहुमूल्य काव्यरत्न स्वरूपा, अहिंसा परमो धर्मः सिद्धान्त के गम्भीर उद्घोषकी एवं समुद्भावक डॉ० दीक्षित की यह पशुपक्षिविचिन्तनम् नामक कृति अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में अपना अद्वितीय महत्त्व व स्थान रखती है ।

संदर्भ–सूची

[1]ऋग्वेद, 1 / 25 / 21

[2]अथर्ववेद, 8 / 3 / 15

[3]कठोपनिषद, 1 / 1 / 3

[4]ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 6 एवं 18

[5]वाल्मीकिरामायण, 1 / 2 / 15

[6]ध्वन्यालोक, 1 / 5

[7]अभिज्ञानशाकुन्तलम, 1 / 10,11

[8]पशुपक्षिविचिन्तनम, काव्य समर्पण पृष्ठ

[9]पशुपक्षिविचिन्तनम, 9–22

[10]पशुपक्षिविचिन्तनम्–पूर्वार्द्ध, 23–41

[11]पशुपक्षिविचिन्तनम्–पूर्वार्द्ध, 47,51,52

[12]पशुपक्षिविचिन्तनम्–पूर्वार्द्ध, 133,135,136,137,139,144,147,178,179

[13]पशुपक्षिविचिन्तनम्–उत्तरार्द्ध, 22,23

[14]पशुपक्षिविचिन्तनम्–उत्तरार्द्ध 29,30,31

[15]पशुपक्षिविचिन्तनम्–उत्तरार्द्ध, 71,72,79,81,82,86,87,96,98,109,118,128,147

[16]पशुपक्षिविचिन्तनम्–उत्तरार्द्ध, 167,176,180,188

[17]भारतमाता–रोहिति, 15 / 88–89

[18]भीष्मचरित, 3 / 45

 ISSN 2231-0584

शांकर वेदान्त में देह की अवधारणा

अमित सिंह (शोधच्छात्र)
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या (फ़ैजाबाद)
मोबाइल : 8739009304
ईमेल : mr.amitsingh77@gmail.com

भारतीय दर्शन विषयक विचारधाराओं को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं । वे हैं– आस्तिक और नास्तिक दर्शन । आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत ही वेदान्त दर्शन आते हैं । वेदान्त ज्ञानयोग की एक शाखा है, जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करता हैं । आस्तिक दर्शन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, एक वैदिक विचारों से उत्पन्न एवं दूसरा लौकिक विचारों से उत्पन्न । वैदिक विचारों को आधार बनाकर हम कर्मकाण्ड

पर आधारित मीमांसा दर्शन के रूप में एवं ज्ञानकाण्ड पर आधारित वेदान्त दर्शन के रूप में कर सकते हैं ।

वेदान्त शब्द का शाब्दिक अर्थ है– वेद का अन्त या सिद्धान्त अर्थात् वह शास्त्र जिसके लिए उपनिषद् ही प्रमाण हो । वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित समस्त ज्ञान का मूल उपनिषद् में निहित हैं । इन्हीं उपनिषदों को आधार बनाकर बादरायण मुनि ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की । इन सूत्रों का मूल उपनिषदों में ही प्राप्त होता हैं । वेदान्त की तीन शाखाएँ, इसमें सबसे प्रमुख अद्वैत वेदान्त शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है – विशिष्टाद्वैत द्वैतवाद एवं अद्वैत वेदान्त।

द्वैतं तस्याभाव अद्वैतम्[i] :

आदि शंकराचार्य अद्वैत वेदान्त के जनक कहे जाते हैं। इन्होंने उपनिषदों एवं वेदान्तसूत्रों पर प्रसिद्ध टीकाओं का सम्पादन किया है। शंकराचार्य ने बताया है कि अद्वैत वेदान्त निकृष्टोपाधिभूत व्यष्टिमूलक अज्ञान से उपहित चैतन्य को जीव संज्ञा प्रदान करता है । इस प्रकार जीव अविद्या से अविच्छिन्न चैतन्य है तथा अविद्या कर्म, शरीर, इन्द्रियाँ और अन्तः करण इनकी उपाधियाँ हैं । शंकराचार्य ने देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, उपाधियों से परिच्छिन्न पर ब्रह्म को ही शरीरधारी जीव कहा है ।

 ISSN 2231-0584

"पर स्वात्मा देहेन्द्रियमनोबुद्धयुपाधिभिः परिच्छिद्यमानो बालैः शरीर इत्युपचर्यते" [ii]

वेदान्तसार में जीव को प्राज्ञ कहा गया है। यह अज्ञान की व्यष्टि निकृष्ट उपाधि से युक्त होने के कारण मलिन सत्त्व प्रधान होती है । इस उपाधि से युक्त चैतन्य अल्पज्ञता एवं अशक्तता आदि गुणों वाला होने से व्यष्टिगत एक ही अज्ञान का प्रकाशक होने के कारण इसे प्राज्ञ कहा जाता हैं ।

"चेतन्यमूल्याज्ञत्वानीश्वरत्वादिगुणकं प्राज्ञ इत्युच्यते एकाज्ञानावभासकत्वात"[iii]

वस्तुतः जीव और ईश्वर का भेद व्यावहारिक है । परमार्थतः जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं हैं– जीवों ब्रह्मैव नापरः वस्तुतः जीव, ईश्वर, और ब्रह्म एक ही है । वेदान्त में जीवत्त्व विद्याजन्य भ्रान्ति रूप में माना गया है । जीव का जन्म, मरण या उत्पत्ति विनाश का एक जन्म से दूसरे में जाना अविद्याकृत है। जब तक अविद्या है, तब तक जीव का जीवत्व हैं। अविद्या निवृत्त होते ही जीव अपने शुद्धात्मक स्वरूप में प्रकाशित हो जाता है ।

अर्थात् शरीर, बाह्य और अन्तःकरणों से युक्त चैतन्य का नाम ही जीव है । इस प्रकार वेदान्त दर्शनानुसार जीव को तीन शरीर में विभक्त किया गया है । शरीर त्रय ये हैं कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर या लिङ्ग शरीर एवं स्थूल शरीर ।

स्थूल सूक्ष्मं कारणेत्यमुपाधित्रितयं चित्रेः।

एभिर्विशिष्टो जीवः स्याद् विभुक्तः परमेश्वरः॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जीव कारण शरीर का आश्रय लेकर विद्यमान रहता हैं । माया सत्त्व, रजस् एवं तमस् तीनों गुणों का नाम हैं । इसी को अज्ञान भी कहा जाता है । अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म जब शुद्ध सत्त्व प्रधान अज्ञान से आवृत होता है, तो इसको ईश्वर कहा जाता है । यही अव्यक्त, अन्तर्यामी संसार का कारणरूप होने से कारण शरीर कहलाता है । स्थूल एवं सूक्ष्म जगतप्रपञ्च का लयस्थान होने के कारण इसी को सुषुप्ति भी कहा गया है ।

व्यष्टिगत अज्ञान अर्थात् जीव की दृष्टि से भी निकृष्ट उपाधि युक्त यह व्यष्टि वेदान्त की दृष्टि से अहंकार आदि का कारण होने से कारण शरीर कहलाता है । यहाँ प्रयुक्त अहंकार से अभिप्राय अन्तःकरण से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में अन्तःकरण ही अज्ञान में विलीन होता हैं । आचार्य विद्यारण्यमुनि ने भी पञ्चदशी में कारण शरीर का लक्षण इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

"अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।

सा कारणशरीरं स्यात् प्राज्ञस्तत्राभिमानवान॥"[iv]

अर्थात् अविद्या में प्रतिबिम्बित होकर उसके पराधीन हो जाने वाला आत्मा जीव कहलाने लगता है । वह जीव उन अविद्यारूपी उपाधि की विचित्रता के कारण अनेक प्रकार का हो गया है । वह अविद्या कारणशरीर कहलाती है । क्योंकि वह अविद्या ही स्थूल सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल सूक्ष्म भूतों का कारण मानी गयी है । इस कारणशरीर में अभिमान करने वाले जीव को प्राज्ञ कहा जाता है ।

सूक्ष्मशरीर को लिङ्शरीर भी कहते हैं । इनका ज्ञान केवल अनुमान प्रमाण द्वारा ही होता है । इसे न छू सकते है, न देख सकते हैं । इसी कारण इसे सूक्ष्म शरीर कहा जाता है । आचार्य स्वामी रामतीर्थ ने इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ निम्न रूप में दिया है–

"लिङ्ग्यते ज्ञाप्यते प्रत्यगात्मसद्भाव एभिरिति लिङ्गानि, लिङ्गानि च शरीराणि चेति लिङ्गशरीराणि"[v]

वेदान्त में आकाश आदि पञ्च महाभूतों में अपने–अपने कारणों के गुणों के आधार पर ही उस समय सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण प्रधान रूप से उत्पन्न होते हैं । ये ही सूक्ष्म भूत तन्मात्र और अपञ्चीकृत कहलाते हैं । इन्ही अपञ्चकृत भूतों से सूक्ष्मशरीर एवं स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं । वेदान्त के अनुसार इसमें सत्रह अवयव होते है जो इस प्रकार विभाजित हैं– पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोतृ, त्व, चक्षु, घ्राण एवं रसना), पञ्चकर्मेन्द्रियाँ (वाक, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ), पञ्चवायु (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान), बुद्धि एवं मन ।

सांख्य दर्शन के अनुसार सूक्ष्मशरीर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है । इसमें अठारह तत्वों को मान्यता प्रदान की हैं– महत् (बुद्धि), अहंकार, मन, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ एवं पञ्चप्राण । सांख्य दर्शन अहंकार को सूक्ष्मशरीर में अधिक तत्त्व के रूप में स्वीकार करता है । जबकि आचार्य स्वामी रामतीर्थ एवं सदानन्द अहंकार का अन्तर्भाव मन में करते हैं ।

पञ्चदशीकार विद्यारण्यमुनि ने सूक्ष्मशरीर का लक्षण इस प्रकार किया है–

"बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राण पञ्चकैर्मनसा धिया।

शरीरं सप्तदशाभिः सूक्ष्म तल्लिंगमुच्यते॥"[vi]

 ISSN 2231-0584

पाँच सूक्ष्म महाभूतों की उत्पत्ति का लक्षण आचार्य विद्यारण्यमुनि ने इस प्रकार किया है –

तमःप्रधानकृतेस्तभोगायेश्वराज्ञया।

वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे॥[vii]

इन आकाशादि पाँच भूतों के पृथक्–पृथक् पाँच सत्त्व भागों से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । अर्थात् एक–एक भूत के सत्वांश से एक–एक इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है ।

सत्वांशैः पञ्चभिस्तेषां क्रमाद्धीन्द्रियपञ्चकम्।

श्रोत्रत्वगक्षिरसनाघ्राणारत्यमुपाजयते॥[viii]

उन पाँच भूतों के पाँचो सत्वांशों से मिलकर एक अन्तःकरण (मन और बुद्धि) उत्पन्न होते हैं ।

तैरन्तःकरणं सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद्विधा।

मनो विर्मशरूपं स्यात् बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका।[ix]

उन पाँचभूतों के पृथक्–पृथक् पाँच रजो भागों से पञ्चकर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं ।

रजोंऽशैः पंचभिस्तेषां क्रमात् कर्मेन्द्रियाणि तु।

वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि जज्ञिरे॥[x]

उन पाँच भूतों के पाँचो रजोभागों से मिलकर एक प्राण का जन्म हो जाता है । वह प्राण वृत्तिभेद के कारण पाँच प्रकार का होता हैं ।

तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदात् स पंचधा।

प्राणेऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च ते पुनः ॥[xi]

 ISSN 2231-0584

सूक्ष्मशरीर सम्पूर्ण चराचर जगत् की सूक्ष्मशरीरों में एकत्व की विवक्षा से समष्टिरूप एवं अलग–अलग कहने की दृष्टि से व्यष्टिरूप से विभक्त होता है । समष्टि से उपहित सूक्ष्म शरीर को सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ, प्राण इत्यादि नामों से व्यवहृत किया जाता है एवं व्यष्टि से उपहित सूक्ष्मशरीर को तैजस कहा जाता है । सूत्रात्मा एवं तैजस इन दोनों का भेद समष्टि एवं व्यष्टि दृष्टि से नाम मात्र है । वस्तुतः उसमें स्थित चैतन्य एक ही है । इस प्रकार अपञ्चीकृत पञ्चभूतों की सृष्टि सूक्ष्मशरीर निर्मित होता है ।

वेदान्तपरिभाषाकार ने सूक्ष्मशरीर को पर एवं अपर रूप में विभक्त किया है । उनमें हिरण्यगर्भ का लिङ्गशरीर पर अर्थात् व्यापक होता है । और हम लोगों का लिंगशरीर अपर अर्थात् अव्यापक होता है । हिरण्यगर्भ के लिंगशरीर की महत् तत्त्व संज्ञा है और हमारे लिंग शरीर को अहंकार कहा जाता है ।

स्थूल शरीर – **"स्थूल भूतानि तु पञ्चीकृतानि।"** आकाश आदि सूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण के बाद आकाशादि स्थूलभूतों की उत्पत्ति होती है । आचार्य सूरेश्वर ने इसी पञ्चीकरण प्रक्रिया को अपने वार्तिक में इस प्रकार प्रतिपादित किया हैं ।

पृथिव्यादीनि भूतानि प्रत्येक विभजेद् द्विधा।

एकैकं भागमादाय चतुर्धा विभजेत् पुनः।

एकैकं भागमेकस्मिन् भूते संवेशयेत्क्रमात्।

ततश्चाकाशभूतस्य भागाः पञ्च भवन्ति हि॥

वाय्वादि भागाश्चत्वारो वाय्वादिस्वेवमादिशेत्।

पञ्चीकरणमेतत्स्यादित्याहुस्तत्ववेदिनः॥[xii]

अर्थात् प्रत्येक सूक्ष्मभूत को सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित करके तत्पश्चात् प्रथम पाँच में से प्रत्येक को चार भागों में विभक्त करके अपने–अपने अंश को छोड़कर अन्य भूतों के अर्धांश के साथ जोड़ने से वे पाँच सूक्ष्मभूत पाँच स्थूल भूत हो जाते है ।

पञ्चकीरण प्रक्रिया

	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
1/8	½	½	½	½	½
1/8	वायु	आकाश	आकाश	आकाश	आकाश
1/8	अग्नि	अग्नि	वायु	वायु	वायु
1/8	जल	जल	जल	अग्नि	अग्नि
1/8	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	जल

स्थूल शरीर चार प्रकार के होते हैं

जरायुज– जरायुजानि जरायुभ्यो जातानि मनुष्वपश्वादीनि।[xiii] अर्थात् जरायुज से उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि जरायु कहलाते हैं ।

अण्डज– 'अण्डेभ्यो जातानि पक्षिपन्नगादीनि।'[xiv] अर्थात् अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं ।

उद्भिज– भूमि को फाड़कर उत्पन्न होने वाले लता–वृक्षादि ।

स्वेदज– 'स्वेदेभ्यो जातानि यूकामशकादीनि।'[xv] अर्थात् पसीने से उत्पन्न जू, मच्छर आदि स्वेदज कहलाते हैं ।

इस प्रकार उत्पन्न हुआ स्थूल शरीर समष्टि रूप उपाधि से उपहित चैतन्य सभी प्राणियों का अधिष्ठाता होता है एवं विविध रूपों में विराजमान होने के कारण वैश्वानर एवं विराट् कहा जाता है । व्यष्टिरूप से उपहित चैतन्य सूक्ष्मशरीर के अभिमान का परित्याग किये बिना स्थूलशरीर में प्रविष्ट होने के कारण विश्व कहलाता है। इस प्रकार पञ्चीकृत पाँच महाभूतों से स्थूल पञ्च की उत्पत्ति होती है ।

आत्मा के आच्छादक तत्वों में प्रमुख रूप अज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, उसी से ईश्वर, जीव, जगत् आदि की सृष्टि होती है। तीनों प्रकार के शरीरों के निर्माण एवं विकास में कोशों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। कोशों की संख्या पाँच बताया गया है ।

 ISSN 2231-0584

आनन्दमय कोष –

आत्मा के आच्छादक होने के कारण अथवा समूह मे स्थित होने के कारण ही इन्हें कोष की संज्ञा प्रदान की गई है । पञ्चकोषों में प्रथम आनन्दमय कोष की स्थिति सृष्टि में विकास की प्रथम कारणावस्था में विद्यमान थी ।

विज्ञानमय कोष–

जीव की स्वप्नावस्था में स्थित सूक्ष्मशरीर में तीन कोषों की स्थिति को स्वीकार किया गया है, विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय । इन तीनों कोशों के मिलने पर ही सूक्ष्मशरीर का निर्माण होता है । विज्ञानकोष के अन्तर्गत आकाशादि अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूतों के सात्विक अंशों से उत्पन्न पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि तत्व विद्यमान रहता है ।

मनोमय कोष–

आकाशादि अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूतों के रजोगुण प्रधान अंशों से उत्पन्न पञ्चकर्मेन्द्रियों के साथ मन की स्थिति इसमें विद्यमान रहता है । यह कोष इच्छा शक्ति से युक्त होता है ।

प्राणमय कोष–

शरीर के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले पञ्चवायु एवं पञ्चकर्मेन्द्रियों के साथ मिलकर इस कोष का निर्माण होता है। इस कोष में क्रियाशीलता का प्राधान्य कहा जा सकता है ।

अन्नमय कोष–

अन्न के विकार का बाहुल्य होने से इसे अन्नमय कहा गया है । इस कोष के माध्यम से जीव विषयों का उपभोग करता है । इस कोष का निर्माण पञ्चीकृत महाभूतों से होता है ।

आचार्य गौडपाद ने जीव की चार अवस्थाओं का कथन गौडपादकारिका में किया है– (1) जाग्रत (2) स्वप्न (3) सुषुप्ति (4) तुरीय

(1) जाग्रत–

इस अवस्था में जीव मन एवं इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है । इस स्थिति में उसका स्थूलशरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सचेष्ट रहते हैं । वह

 ISSN 2231-0584

सांसारिक पदार्थों का उपभोग करता है । आचार्य गौडपाद ने जीव की इस अवस्था को बहिष्प्रज्ञ एवं स्थूलभुक् कहा हैं ।

(2) स्वप्न–

स्वप्नावस्था में जीव का शरीर और इन्द्रियाँ विश्राम करती हैं । मन क्रियाशील रहता है । इस अवस्था में जीव का सम्बंध सूक्ष्मशरीर से होता है । वह मनोमय– प्राणमय– विज्ञानमय इन तीनों कोशों में रहता हैं । इसे अन्तःप्रज्ञ एवं प्रविविक्तभुक् संज्ञा प्रदान की गयी है । मन की वासना के अनुरूप कार्य करने के कारण इसे अन्तःप्रज्ञ भी कहा गया है ।

(3) सुषुप्ति–

इसमें जीव न कोई कामना करता है, न ही कोई स्वप्न देखता है । क्योंकि स्थूलदेह, इन्द्रियाँ अन्तःकरण आदि इसके कार्य नहीं करते। इस अवस्था में केवल आनन्द का प्राचुर्य होता है । अतः इसे आनन्दभुक् कहा जाता है । इस अवस्था में जीव चैतन्य से प्रदीप्त अज्ञानवृत्ति की प्रधानता से युक्त हुआ चेतोमुख कहलाता हैं ।

(4) तुरीय–

इस अवस्था मे सभी प्रकार के प्रपञ्चों पूर्णतः शान्त हो जाते हैं । इसमें जीव का शान्त, शिव एवं अद्वैत रूप माना गया है । सभी कोशों की मुक्ति भी हो जाती है । सभी प्रकार के दुःखों की निवृत्ति होकर कार्य– कारणभाव समाप्त हो जाता है । आचार्य गौडपाद जीव के इन तीनों भेदों के सम्बन्ध में कहते हैं–

बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो मन्तः प्रज्ञस्तु तैजसः।

धनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः॥

निष्कर्षतः शांकरवेदान्त के अनुसार कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर एवं स्थूलशरीर की समष्टि–व्यष्टि से उपहित चैतन्य भी स्थूल दृष्टि से ही क्रमशः ईश्वर, प्राज्ञ, सूत्रात्मा, तैजस एवं वैश्वानर, विश्वरूप में अलग–अलग प्रतीत होते हैं, जबकि तात्विक दृष्टि से इनमें कोई भेद नहीं होता हैं ।

 ISSN 2231-0584

संदर्भ–सूची

[i]संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ.–27

[ii]ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य – 1/2/6

[iii]वही

[iv]पञ्चदशी

[v]वेदान्तसार – विद्वन्मनोरञ्जनी–पृ०100

[vi]पञ्चदशी1/23

[vii]पञ्चदशी (1/28)

[viii]पञ्चदशी (1/19)

[ix](पञ्चदशी– 1/20)

[x](पञ्चदशी– 1/21)

[xi]पञ्चदशी(1/22)

[xii]पञ्चदशी

[xiii]वेदान्तसार

[xiv]वही

[xv]वही

[xvi]माण्डूक्योपनिषद्, गौडपाद कारिका–1

 ISSN 2231-0584

सूक्ष्म शरीर का दार्शनिक पर्यालोचन

डॉ. अनिल कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
कमला नेहरू कॉलेज
मोबाइल : 9650214651
ईमेल : anilkumar@knc.du.ac.in

भारतीय दर्शन में पुनर्जन्म की अवधारणा को चार्वाक को छोड़कर प्रायः सभी दर्शन स्वीकार करते हैं। यह पुनर्जन्म किसका होता है? इसके उत्तर में सभी दर्शन आत्मा का ही पुनर्जन्म स्वीकार करते हैं। बौद्ध दर्शन आलयविज्ञान का पुनर्जन्म स्वीकार करता हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भी कहते हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नवीन शरीरों को प्राप्त करता हैं।[1] स्थूल शरीर के माध्यम से आत्मा नये–नये वस्त्र धारण करता रहता है जिसके माध्यम से वह अधिष्ठित होकर वह जन्म–जन्मान्तर आवागमन करती रहती है, वह सूक्ष्म शरीर है। फिर प्रश्न उठता है कि सूक्ष्म शरीर मानने की आवश्यकता क्यों है? बौद्ध दर्शन सूक्ष्म शरीर को मनोमय आत्मप्रतिलाभ[2], शैव दर्शन पौर्यष्टक[3], सांख्य दर्शन लिङ्ग शरीर[4] या सूक्ष्म शरीर तथा वेदान्त–दर्शन लिङ्ग शरीर सूक्ष्म शरीर मानता हैं। सूक्ष्म शरीर की आवश्यकता है क्योंकि आत्मा शुद्ध एवं चेतन है तथा यह साधनहीन रहकर अचेतन जगत् के सम्पर्क में कुछ भी करने में असमर्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण कहते हैं–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यं शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

अर्थात् यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्म लेता है और न ही मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मरता हैं।भोगादि के लिए एक स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरे स्थूल शरीर में जाने के लिए भी आत्मा को साधन की अपेक्षा रहती हैं। यह साधन सूक्ष्म शरीर ही हैं। इस जन्म–मरण की गति में यह हमेशा आत्मा के साथ बना रहता

 ISSN 2231-0584

हैं। सूक्ष्म शरीर को आत्मा का वाहन कहा जाता है। समस्त सर्गकाल में आत्मा इसी में स्थित होकर अपनी समस्त गतिविधियाँ सम्पन्न करता है। यह आत्मा और स्थूल शरीर के मध्य सदैव बना रहता है।

इस तरह सूक्ष्म शरीर आत्मा का अधिष्ठान कहा गया हैं। सूक्ष्म शरीर का वास्तविक उपयोग, आत्मा के लिए सुख–दुखादि समस्त भोगों को प्रस्तुत करना तथा समाधि द्वारा तत्त्वज्ञान का सम्पादन करना है। शुद्ध आत्मा भोगों को करने में असमर्थ रहती है फलस्वरूप आत्मा को अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक ऐसे साधन की अपेक्षा रहती है जो भोग से लेकर अपवर्ग या मोक्ष पर्यन्त सर्वदा उसका सहयोग कर सके, सूक्ष्म शरीर ही वह साधन है।सूक्ष्म शरीर आत्मा तथा स्थूल शरीर के मध्य की योजक– कड़ी है। सूक्ष्म शरीर का स्वरूप भारतीय दर्शन–सांख्य–योग, आयुर्वेद और अद्वैतवेदान्त दर्शन में निम्नलिखित–

❖ सांख्य दर्शन में सूक्ष्म शरीर का दार्शनिक पर्यालोचन–

तेरह करण (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार) तथा पञ्च–तन्मात्रायें इन अट्ठारह तत्वों का यह समूह सूक्ष्म शरीर कहलाता हैं।[5] सांख्य दर्शन के अनुसार मनुष्य जो भी शुभ और अशुभ कार्य करता हैं उसके परिणाम–स्वरूप संस्कार बनते हैं। इन संस्कारों को ही भाव कहते हैं।[6] ये संख्या में आठ हैंः– धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। ये सात्त्विक भाव तथा इनके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य–ये तामस् भाव हैं। बुद्धि इन्हीं से संयुक्त होकर सूक्ष्म शरीर की रचना करती है।

सूक्ष्म शरीर के तत्त्वों में से तेरह करणों को लिंग शरीर भी कहते हैं।[7] जिसका लक्षण है–**"लिंगनाज्ज्ञापनाद् लिंगम्"**[8] अर्थात् जिसके द्वारा पुरूष का ज्ञान होता है वह लिंग है। इस तरह लिंग अर्थात् तेरह करणों में जब पञ्च तन्मात्राएं जुड़ जाती हैं, तो वह सूक्ष्म शरीर हो जाता।

सूक्ष्म शरीर का अपर नाम लिंग शरीर है। सूक्ष्म शरीर का **'लयं गच्छतीति लिंगम्'** की व्युत्पत्ति से इसका नाम लिंग रखा गया अथवा जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका विनाश भी अवश्यसम्भावी है, इस व्याप्ति से सूक्ष्म शरीर अपने विनाश का द्योतक होने से लिङ्ग कहा गया। यह लिङ्गत्व सूक्ष्म शरीर को प्रधान(मूल प्रकृति) से पृथक् करता है, क्योंकि प्रधान किसी से भी उत्पन्न नही होता। ये सूक्ष्म शरीर व्यक्ति–भेद कर्म विशेष से अलग–अलग होते हैं।[9]

लिङ्ग/सूक्ष्म शरीर का स्वरूप–यह लिंग शरीर सृष्टि के आरम्भ से उत्पन्न होकर प्रलय पर्यन्त बना रहता है और इसमें सर्गादिकाल से ही भोग विद्यमान रहता।[10] जब तक इसको विवेक ज्ञान नही हो जाता तब तक इसकी सत्ता बनी रहती है।[11] इस सम्बन्ध में

सांख्यकारिका की चालीसवींकारिका में उद्धृत है–

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।

संसरति निरूपभोगं भावैरधिवासितं लिंगम्।।

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में पूर्वोत्पन्न, असक्त, नियत, महत् तत्त्व से लेकर सूक्ष्म तन्मात्रापर्यन्त, भोगरहित, धर्म, अधर्म आदि भावों से युक्त लिंग शरीर संसरण या गमनागमन करता रहता है अर्थात् यह सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति के द्वारा प्रत्येक पुरुष के लिए पृथक्–पृथक् उत्पादित– **'पूर्वोत्पन्न'**।[12] यह सूक्ष्म शरीर **'असक्त'** होता है अर्थात् इतना सूक्ष्म होता हैं कि शिलाओं में भी आसानी से प्रवेश कर सकता हैं। **'नियत'**[13] होने के कारण इसे नित्य मानते हैं क्योंकि जब तक यह कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो जाती है, तब तक यह बना रहता हैं। यह सूक्ष्म शरीर बुद्धि से लेकर सूक्ष्मभूत तन्मात्रा (महत्तत्व, अहंकार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रियों, पञ्चकर्मेन्द्रियों, पञ्चतन्मात्रा) आदि अठारह तत्वों का समुदाय[14] अर्थात् परिणाम[15] होता है–**'महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम्'**। यह सूक्ष्म शरीर **'संसरति निरूपभोगम्'** अर्थात् सूक्ष्म शरीर से विषयों का भोग साक्षात् संभव नही होता अपितु स्थूल शरीर के द्वारा ही यह विषयों का उपभोग करता हैं। अतः जब तक यह स्थूल शरीर प्राप्त नही करता तब तक बिना भोग किये इधर–उधर लोक में विचरण करता रहता हैं। यह **'भावैरधिवासितम'**[16] अर्थात् धर्माधर्मादि भावों से अधिवासित होने से ही इसका संचरण होता है, क्योंकि धर्माधर्म निमित्तक ही संसार हैं। ये धर्म, अधर्म आदि भाव बुद्धिनिष्ठ होते है न कि आत्मनिष्ठ और बुद्धि सूक्ष्म शरीर में रहती है। इसलिए बुद्धि से युक्त होने के कारण सूक्ष्म शरीर भी धर्म आदि भावों का उसी प्रकार से भोग करता है जैसे चम्पक पुष्प के सम्पर्क से वस्त्र सुगन्धित होता है। इस तरह धर्म–अधर्म आदि से युक्त होने के कारण सूक्ष्म शरीर संचरण करता है। यह शान्त, घोर और मूढ़ इन्द्रियों से संगठित होने के कारण यह **'विशेष'** कहलाता है।[17]

सूक्ष्म शरीर को मानने की आवश्यकता–लिंग पद से आत्मा के ज्ञापक बुद्धि आदि त्रयोदश करणों का ग्रहण होता है न कि सूक्ष्म शरीर। ये बुद्धि आदि करण किसी न किसी पर आश्रित होते है, क्योंकि बिना आश्रय के ये काम नही कर सकते। जन्म–मरण के बीच में स्थूल शरीर पर आश्रित रहते हैं किन्तु मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म ग्रहण से पूर्व आश्रय का अभाव होता है। इसलिये इनके आश्रयभूत लिङ्ग/सूक्ष्म शरीर की कल्पना निराधार नहीं है; यथाः–

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथाच्छाया।

तद्वद्विनाऽविशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्।।[18]

 ISSN 2231-0584

अर्थात् बिना आधार के कोई चित्र अथवा बिना वृक्षादि के छाया नही हो सकती उसी प्रकार अविशेष अर्थात् तन्मात्रा के बिना लिङ्ग / बुद्धि आदि करण नही रह सकते। ये तन्मात्राएं स्वाभाविक जल की तरह रहती हैं अर्थात् शान्त, घोर, मूढ़ से रहित। जिस प्रकार जल के बिना शीतलता नहीं रहती, वायु स्पर्श के बिना नहीं रहती, अग्नि उष्णता के बिना नहीं रहती उसी प्रकार स्थूल शरीर लिंग शरीर के बिना नहीं रहता हैं। जब तक कर्मों का भोग पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक सूक्ष्म शरीर बना रहता है और यह नाना योनियों में स्थूल शरीर के माध्यम से पुनर्जन्म लेता रहता है।[19] स्थूल शरीर मूर्त्त होता है अतः मूर्त्त शरीर मूर्त्त पदार्थो का उपभोग नही कर सकता। यह सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही हो सकता है।[20] यह सूक्ष्म शरीर पुरूषार्थ के लिए प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार राजा अपने देश में समर्थ होने के कारण जो–जो चाहता है वह कर लेता है उसी प्रकार प्रकृति भी सर्वत्र व्यापक होने के कारण निमित्त–नैमित्तिक प्रसंग से पृथक्–पृथक् देह धारण में सूक्ष्म शरीर की व्यवस्था करती है। सूक्ष्म परमाणुओं से तन्मात्राओं से उपचित तेरह करणों वाले सूक्ष्म शरीर की मानुष, दैव तथा तिर्यक योनियों में व्यवस्था करता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर भिन्न योनियों में शरीर धारण करता है। कैसे? नटवत्। जैसे– नट परदे पर वेश बदल कर आता है, कभी देवता बनकर आता है तो पुनः मनुष्य बनकर आ जाता है फिर विदूषक या अन्य बनकर। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर निमित्त–नैमित्तिक प्रसंग से हाथी, स्त्री, पुरूष आदि रूपों को धारण करता है।[21] इस तरह सूक्ष्म शरीर भोगों का उपभोग करने के लिय स्थूल के माध्यम से तब तक पुनर्जन्म लेता रहता है जब तक उसमें भोग पूर्ण नही हो जाते।[22]

❖ आयुर्वेद में लिङ्ग शरीर / सूक्ष्म शरीर

आयुर्वेद की दार्शनिक परम्परा भारतीय ज्ञानपरम्परा से अभिन्न होने के कारण अन्य दर्शनों के समान ही पुनर्जन्म की अवधारणा को स्वीकार करती है। इनकी दृष्टि में पुनर्जन्म आत्मा (पुरुष) का नही हो सकता क्योंकि वह निर्विकार है। यदि आत्मा को जन्म व मृत्यु ग्रहण करने वाला तत्त्व मान लेते हैं तो वह विकार स्वभाव वाला परिलक्षित होता है और विकार स्वभाव वाला तत्त्व होने के कारण आत्मा की नित्यता की अवधारणा खण्डित हो जाती। अतः इन दार्शनिको ने आत्मा को निर्विकारी अव्यक्त तथा नित्य माना है किन्तु करण सहकृत आत्मा (पुरूष) को मन, बुद्धि (श्रोत्र, घ्राण, चक्षु, रसना तथा स्पर्श), कर्मेन्द्रिय (हस्त, पाद, गुहा, उपस्थ तथा वाक् इन्द्रिय), करणों के साथ संयोग होने पर कर्म, वेदना, बुद्धि (ज्ञान) होता है। यह अकेले आत्मा न तो किसी कार्य को करने में प्रवृत्त होती है और न ही किसी उपादान विषयों का भोग करने में समर्थ है। आत्मा ज्ञानात्मक[23] होने के कारण इन्द्रियादि से संयोग होने पर ही सभी कार्य सम्पन्न होते है तथा संयोग न होने पर कोई भी कार्य सम्पन्न नही होता।[24] यह आत्मा (पुरूष) एक जन्म से दूसरे जन्म मनोजव (मन के संयोग से गमन करने वाला) के साथ आकाश को छोड़कर चार सूक्ष्म महाभूतों (स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा) के साथ मृत देह (शरीर) से निकलकर पुनः नूतन शरीर प्राप्त करती है। जीर्ण शरीर का त्याग एवं नूतन शरीर को प्राप्त

करना पूर्वकृत कर्मो के अनुसार होता है।[25,26] , जब यह आत्मा मन तथा चार तन्मात्राओं के साथ देह से निकल जाती है तो यह स्थूल शरीर शून्यगार, अचेतन और पञ्चमहाभौतिक शरीर शेष रह जाता है, इसे पञ्चत्व प्राप्त हो गया – ऐसा भी कहा जाता है।[27] सभी प्राणी अपने– अपने शुभाशुभ कर्मो के अनुसार आत्मा (मन एवं तन्मात्रा से युक्त होकर) को सभी नीच– ऊँच योनियों में प्राण से युक्त करता है अन्य दूसरा नियामक नही है।[28] वस्तुतः आत्मा को निष्क्रिय एवं अव्यक्त माना गया है। उससे जब तक मन तथा चार सूक्ष्म महाभूतों (तन्मात्रा) का संयोग होता है तब तक यह लिङ्ग शरीर[29] से युक्त होकर व्यापक, सभी शरीरो को धारण करने वाला, विश्वकर्मा, जगत् स्वरूप, चेतनाधातु, अतीन्द्रियों से युक्त राग–द्वेष भाव वाला होता है।[30] संसार को चलाने के लिए आत्मा एवं सूक्ष्म महाभूत (तन्मात्रा) अन्योन्याश्रय रूप से एक दूसरे पर आश्रित होते है। इस लिङ्ग शरीर में रसज, आत्मज, मातृज और पितृज भेद से चारों महाभूत सोलह प्रकार से होते है। ये चारों सूक्ष्म महाभूत आत्मा पर आश्रित होते है तथा आत्मा इन चारों सूक्ष्म महाभूतों पर आश्रित होती है।[31] अब यहां शंका उत्पन्न होती है कि लिङ्ग शरीर की सत्ता कब तक बनी रहती है? इसके उत्तर में कहा गया है कि जब तक आत्मा अपने अत्यन्त सूक्ष्म अतीन्द्रिय भूतों से पृथक् नही होता है, न कर्म, न मन, न बुद्धि, न अहंकार, न विकार स्वरूप दोष से आत्मा छुटकारा पाती है। जब तक रज और तम का अनुबन्ध मन से बना रहता है। अज्ञान के कारण रज और तम गुणों का मन से अनुबन्ध रहने से मन सदोष कर्म के कारण जन्म–जन्मान्तर के कारण होते हैं, जो इनका वाहक है, वही सूक्ष्म शरीर / लिङ्ग शरीर है।[32]

अद्वैत वेदान्त दर्शन में सूक्ष्म शरीर का दार्शनिक पर्यालोचनः–

अद्वैत वेदान्त दर्शन का मानना है कि ईश्वर सृष्टि की रचना केवल लीला के लिए करता है।[33] शंकराचार्य का कहना है कि सृष्टि रचना ईश्वर का स्वभाव है। जैसे मनुष्य के शरीर में श्वास–प्रश्वास चलते रहते हैं उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है।[34] वेदान्तसार प्रकरण ग्रंथ में सदानन्द ने सृष्टि की प्रक्रिया के अन्तर्गत सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीर का वर्णन किया है। उनके अनुसार, तमोगुणप्रधान किन्तु रजस् एवं सत्त्व की यत्किञ्चित् सत्ता से युक्त विक्षेप शक्ति सम्पन्न अज्ञानोपहित चैतन्य अर्थात् ब्रह्म ही सृष्टि का कारण है। उससे सर्वप्रथम सूक्ष्मतन्मात्रारुप आकाश की उत्पत्ति होती है क्रमशः आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से सूक्ष्मतन्मात्रारूप पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।[35] इन्हीं से सूक्ष्मभूत अपञ्चीकृत आकाशादि से सूक्ष्मशरीर, पञ्चीकृतमहाभूत आदि की उत्पत्ति होती है तथा पञ्चीकृत महाभूतों से स्थूलशरीर उत्पन्न होते हैं।

सूक्ष्मशरीर–

सूक्ष्मभूत अपञ्चीकृत आकाशादि से सूक्ष्मशरीर की उत्पत्ति होती हैं। इसे किसी भी प्रकार से देख अथवा छू नहीं सकते, इसी कारण इसे सूक्ष्मशरीर कहा जाता हैं। इसका ज्ञान

अनुमान प्रमाण द्वारा होता हैं। इसका अपर नाम **'लिङ्गशरीर'** भी है।

इसे लिंग दो अर्थों में कहा जाता है– **१. लिंग्यते ज्ञाप्यते यत् तत् लिंगम्**– इस व्युत्पत्ति से अर्थ है, जो लिंगित हो अर्थात् अनुमान प्रमाण से ज्ञात हो। २. **लिंग्यते ज्ञाप्यते अनेन**– इस व्युत्पत्ति से अर्थ है, अनुमापक शरीर अर्थात् यह शरीर आकाशादि सूक्ष्मभूतों का अनुमापक है।

सूक्ष्मशरीर में अवयव – सदानन्द ने भी सूक्ष्मशरीर को १७ अवयवों से निर्मित लिंग शरीर कहा है– **सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिंगशरीराणि।**[36] पञ्चज्ञानेन्द्रियां, पञ्चकर्मेन्द्रियां, पञ्चवायु तथा बुद्धि एवं मन आदि ये सत्रह अवयव हैं।

पञ्चदशीकार के अनुसार– **बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैमनसा धिया।**

शरीरं सप्तदशाभिः सूक्ष्मं तल्लिंगमुच्यते॥[37]

सूक्ष्मशरीर अभिव्यक्ति की प्रक्रिया –

सृष्टि में जड़ता का प्राधान्य होने के कारण ईश्वर को भी तमोगुण से युक्त विक्षेपशक्ति से उपहित माना जाता हैं। ये पांचों तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और व्यक्त नहीं होते। अतः इन्हें सूक्ष्मभूत या तन्मात्रा कहा जाता है। इन तन्मात्राओं के सात्त्विक अंश से पृथक्–पृथक् पांच इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है।[38] आकाश तन्मात्रा से श्रोत्र, वायु तन्मात्रा से स्पर्श, अग्नि तन्मात्रा से चक्षु, जल तन्मात्रा से जिह्वा तथा पृथ्वी तन्मात्रा से घ्राण इन्द्रिय की उत्पत्ति होती हैं। इन पांचों का निवास स्थान क्रमशः कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका में है और ये क्रमशः शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गंध का अनुभव कराती हैं।[39] आकाश तन्मात्राओं के सात्त्विक अंश की समष्टि से बुद्धि और मन नाम की दो वृत्तियों की उत्पत्ति होती है। बुद्धि निश्चयात्मिका वृत्ति[40] तथा मनस् संकल्प विकल्पात्मिका वृत्ति हैं।[41] चित्त का बुद्धि में और अहंकार का मन में अन्तर्भाव होता है।[42] ये सभी प्रकाशस्वरूप अर्थात् बाह्य संसार का ज्ञान कराती है, अतः इनको सत्त्वगुण से उत्पन्न माना गया है।[43] आकाशादि के राजसिक अंश से इसी प्रकार से कर्मेन्द्रियों और प्राणों की उत्पत्ति होती है।[44] कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति आकाशादि तन्मात्राओं से पृथक्–पृथक् होती है।[45] रजोगुणप्रधान आकाश से वाक्, रजोगुणप्रधान वायु से पाणि (हाथ) , रजोगुणप्रधान अग्नि से पाद, रजोगुणप्रधान जल से मलविसर्जन करने वाली कर्मेन्द्रिय पायु और रजोगुणप्रधान पृथ्वी से जननेन्द्रिय उपस्थ की उत्पत्ति होती हैं। प्राणों की उत्पत्ति पांच तन्मात्राओं से होती है। प्राणवायु पांच हैं– प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान।[46] प्राण–वायु नासिका के अग्रभाग में रहने वाली है, सामने की ओर गमन करने वाली है।[47] अपान वायु गुदा आदि स्थानों में रहने वाली है, नीचे की ओर गमन करने वाली

हैं।[48] व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में निवास करने वाली, सब ओर गमन करने वाली हैं।[49] उदान वायु कण्ठ में रहता हुआ जीवात्मा को उपर ले जाती हैं।[50] समान वायु उदर में रहती है जो कि भोजन का परिपाक एवं विभाग करती हैं।[51] वेदान्त दर्शन में पञ्चकर्मेन्द्रियों, पञ्चज्ञानेन्द्रियों, पञ्च प्राणों, मन एवं बुद्धि इन सभी सत्रह तत्वों के योग से सूक्ष्म शरीर बनता हैं।

शांकर भाष्य में इसके सन्दर्भ में कहा गया है– **"मुख्य तु सप्तदशकं प्रथितं हि लिंगम्।"**[52] अर्थात् मुख्यतः १७ तत्त्वों के मेल से ही लिंग शरीर बनता हैं। ये १७ अवयव है–

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।

अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम्।।

इन १७ अवयवों को तीन कोशों– विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश तथा प्राणमय कोश में वर्गीकृत किया गया है। पञ्चज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं।[53] पञ्चज्ञानेन्द्रियों सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं।[54] पञ्चकर्मेन्द्रियों एवं पञ्च प्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं।[55] इनमें से विज्ञानमय कोश ज्ञानशक्ति से युक्त है, अतः कर्त्ता कहलाता हैं। इस कोश से युक्त चैतन्य जीव कहलाता है। मनोमयकोश इच्छाशक्तिसम्पन्न है, अतः विवेक का साधन कहलाता है तथा प्राणमय कोश गमनादि क्रियासम्पन्न है, अतः कार्यस्वरूप हैं। स्वयोग्यता के आधार पर ही इनका क्रमशः कर्ता, करण तथा कार्य – इन नामों से विभाग किया गया हैं। ये तीनों मिलकर ही सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं।[56]

वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव, ईश्वर एवं ब्रह्म – ये तीनों उपाधि भेद से पृथक्–पृथक् हैं किन्तु तत्त्वतः एक ही हैं। जीव का तीन तरह के शरीरों से संबंध होता है– कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीर। सृष्टि के प्रारम्भ में जीव कारण शरीर का आश्रय लेकर विद्यमान रहता हैं। ब्रह्म जब शुद्ध सत्त्वप्रधान अज्ञान से आवृत होता है तो इसे ईश्वर, अव्यक्त, अंतर्यामी या जगत का कारण कहते हैं। इसे ही **"कारण शरीर"** कहते हैं। आनन्द का प्राचुर्य रहने से इसे आनन्दमय कोश भी कहते हैं, प्रलयकाल में यह बना रहता है। सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर का यह लय स्थान होता है। द्वितीय– अनुमेय सूक्ष्म शरीर अपञ्चीकृत महाभूतों से निर्मित होता है। इसी के माध्यम से जीव सुख–दुख का भोग या अनुभव करता है। तृतीय– स्थूल शरीर आकाशादि सूक्ष्म भूतों के पञ्चीकरण के बाद आकाशादि स्थूल भूतों का निर्माण होता है, ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती हैं। ब्रह्माण्ड में जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज – ये चार प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं। इन्हें सांख्य दर्शन में स्थूल शरीर से अभिहित किया गया है।

 ISSN 2231-0584

सांख्य योग, आयुर्वेद तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में कुछ समानताएं होते हुए भी कुछ ऐसी असमानताएं हैं जो अनेक प्रश्नो को उठाती हैं। **पहली समस्या** यह है कि क्यों अद्वैत वेदान्त दर्शन सूक्ष्म तन्मात्रा से सूक्ष्म शरीर की अभिव्यक्ति मानता है वहीं सांख्य– योग अहंकार से सूक्ष्म शरीर की अभिव्यक्ति मानता है ? **दूसरी समस्या** यह है कि क्यों अद्वैत वेदान्त दर्शन जहाँ सूक्ष्म शरीर में पञ्च प्राणों को स्वीकार करता है वहीं सांख्य क्यों पञ्च प्राणों की जगह पञ्च तन्मात्रा को स्वीकार करता है? तीसरी समस्या यह है कि आयुर्वेद की तत्त्वमीमांसा सांख्य–योग के समान होने के उपरान्त भी सूक्ष्म शरीर की तत्त्वमीमांसा में इतने विभेद के क्या कारण हैं? अर्थात् सांख्य–योग जहाँ अठारह तत्त्वों की संयुक्त अवस्था को सूक्ष्म शरीर कहता है वहीं आयुर्वेद आत्मा से संयुक्त चार तन्मात्राओं एवं मन को लिङ्ग / सूक्ष्म शरीर कहता है। दोनों ही दार्शनिक परम्पराओं की सष्टि–प्रक्रिया समान होने के बाद भी सूक्ष्म शरीर के स्वरूप की प्रक्रिया के विभेद के क्या दार्शनिक आधार कारण रहे हैं – इसका अन्वेषण करना। चौथी समस्या है कि अद्वैत वेदान्त तन्मात्राओं से लिङ्ग / सूक्ष्म शरीर से अभिव्यक्त मानता है। इनकी दृष्टि में सूक्ष्म शरीर सत्तरह तत्त्वों का माना गया है वहीं आयुर्वेद आत्मा से संयुक्त चार तन्मात्रा एवं मन को सूक्ष्म शरीर कहा गया है। अब यहां प्रश्न उठता है कि अद्वैत वेदान्त दर्शन के समान आयुर्वेद में सूक्ष्म शरीर की तत्त्वमीमांसा में तन्मात्राओं को स्वीकार करने के बावजूद इनकी तत्त्वमीमांसा में विभेद के क्या आधारभूत दार्शनिक कारण रहे हैं।

संदर्भ–सूची

मूल स्रोतः–

1. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य सहितम्, महर्षि वेदव्यास प्रणीतम्, यतिवर श्रीभोलेबाबा, भारतीय विद्याभवन, दिल्ली, २००४
2. वेदान्तसार (विवृत्ति सहित) सदानन्दयोगीकृत, डॉ. कृष्णकान्त त्रिपाठी साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–250002
3. सुबोधिनी संस्कृतटीका सहितः वेदान्तसार सदानन्दप्रणीत, डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. वेदान्त परिभाषा, श्रीमद्विधारण्यमुनिविरचिता, प्रो. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द–, संस्कृत–विश्वविद्यालय, वाराणासी
5. सांख्यकारिकाः ईश्वरकृष्ण, डॉ.रामकृष्ण आचार्य, साहित्य भण्डार, मेरठ
6. सांख्यदर्शन विदोदयभाष्य, उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम, हंसानन्द

गौण स्रोतः–

१. योगीकथामृत, परमहंस योगानन्द, योगा सत्संग सोसायटी ऑफ इंडिया
२. शिवमुनि ग्रंथावली, आदि मुनीश्वीर योगेश्वर शिव मुनि महाराज, मुनीश्वर मठ आदिमुनीश्वराश्रम,24 / 1, अलहदादपुर, गोरखपुर–273001
३. भारतीय दर्शन की रूपरेखाः आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
४. दर्शन दिग्दर्शनः राहुल सांकृत्यायन, किताब महल

५. भारतीय दर्शन, डी. आर. जाटव, नेशनल प्रकाशन हाउस, नई दिल्ली
६. भारतीय दर्शन (आलोचना और अनुशीलन), चन्द्रधर शर्मा, मोतालाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
७. षड्दर्शन रहस्य, पंडित रंगनाथ पाठक, बिहार राष्ट्रभाषा, पटना
८. भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, राममूर्ति पाठक, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद।
९. भारतीय दर्शन का विवेचनात्मक इतिहास, राममूर्ति शर्मा, राष्ट्रीय संस्कृत –संस्थानम्
१०. भारतीय दर्शन, डॉ. राधाकृष्ण, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

❖ **कोश ग्रंथ :** –

१. ENCYCLOPEDIA OF INDIAN PHILOSOPHIES,
VOL; 1;, KARL H- POTTER] MOTILAL BANARASIDAS, VARANSI,1995
२. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन, दिल्ली
३. अमरकोश, शक्तिधरशास्त्रीकृत हिन्दी टीका सहित, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ,1919
४. भारतीय दर्शन बृहतकोश (4 खण्ड), बच्चूलाल अवस्थी, शारदा प्रकाशन, दिल्ली,2005

❖ **साक्षात्कार :**–

१. संत गुरमीत राम रहीम सिंह जी, डेरा सच्चा सौदा, सिरसा, हरियाणा।
३. आचार्य बलदेव, आर्य समाज, मधुबन चौक, नई दिल्ली

 ISSN 2231-0584

पुरुष सत्तात्मक समाज में औरत, अस्तित्व व अस्मिता की तलाश : कृष्णा सोबती के कथा साहित्य के संदर्भ में

श्रीमती नीतू सिंह
शोध छात्रा
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)
मोबाइल : 9755168555, 9752822330
ईमेल : prakashsingh766@gmail.com
neetuprakash1986@gmail.com

हिंदी साहित्य में स्त्री के अस्तित्व व अस्मिता की तलाश की शुरुआत छायावाद काल से मानी जाती है। प्रेमचंद से लेकर राजेंद्र यादव तक अनेक पुरुष लेखकों ने इस समस्या को उकेरा है। लेकिन उस सजीव रूप का चित्रण उसमें नहीं है जिस सजीवता को स्वयं महिला लेखिकाओं ने चित्रित किया है। हिंदी कथा साहित्य में नारी अस्मिता को लेकर स्त्री विमर्श की गूंज का शंखनाद 1960 ई. में पश्चिम में हुआ था, जिसमें चार नाम मुख्य रूप से चर्चित हैं–उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी एवं शिवानी। इन लेखिकाओं ने स्त्री की आत्मा में छिपी हुई शक्तियों को पहचाना व नारी की दिशाहीनता व कुंठा आदि को दूर करने का प्रयास किया। ''कृष्णा जी के ज्यादातर उपन्यासों व कहानियों में स्त्रियाँ अपना एक जीवन खोजती हुई जीवन जीती है, जिनके संघर्ष से धूल भरी आंधी चलती रहती है।'[1]

पुरुष सत्तात्मक समाज में औरत, अस्तित्व व अस्मिताः–

जब स्त्री इस पुरुष सत्तात्मक समाज के परिवेश में स्वतंत्रतापूर्वक जीवन–यापन करना चाहती है तब वह अपने अस्तित्व की तलाश इस पुरुष प्रधान वातावरण में करती है। लेकिन सामाजिक अर्थव्यवस्था के नाम पर उसे विवाह रूपी बेड़ियों में जकड़कर परिवार रूपी जेल में इस तरह बंद कर दिया जाता है कि वह अपनी स्वतंत्रता की इच्छा को समाप्त कर, आत्मसमर्पण की कीमत पर ही सम्मान की जिंदगी बिता सकती है। इन्हीं कारणों से स्त्री आज के समाज में बहन, बेटी व माँ के रूप में जानी जाती है। लेकिन वर्तमान परिपेक्ष में स्त्री इन बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में अपनी पहचान बनाने का प्रयास करती है। यहीं से प्रारंभ होती है स्त्री की अस्मिता की तलाश व स्त्री अस्मिता का विमर्श।

स्वतंत्रता की अर्ध शताब्दी गुजर जाने के बावजूद प्रगतिशील समाज की नजरों में स्त्री के प्रति विचारधारा प्राचीन काल की तरह ही है। पुरुष सत्तात्मक समाज से विवश होकर नारी ने अपने अस्तित्व तथा अस्मिता को मानवीय रूप में महसूस करने के लिए आंदोलन किया और कहा कि–''मैं भी एक मनुष्य हूँ और मनुष्य की भांति समाज में सभी सम्मानों को पूर्ण रूप से धारण करने की अधिकारिणी हूँ।'' लेकिन आधुनिकतम नारी पुरुष सत्तात्मक समाज से उत्पन्न विकृत संस्कृति से चतुर्मुखी त्रास और ग्रास बनने के लिए

 ISSN 2231-0584

विवश है। पुरुषों की संकीर्ण विचारधाराओं ने उसे अबला बनने के लिए मजबूर कर रखा है, वास्तव में यदि देखा जाए तो वह अबला नहीं सबला है। प्राचीनकाल व आधुनिक काल के बीच उसका स्त्री से भी उतना ही विरोध है जितना पुरुष से है। विश्व के समस्त धर्मों में यह देखा गया है कि माता, स्त्री व देवी के रूप में या गुलाम के रूप में स्थिति को ग्रहण करती है। फलस्वरुप पुरुष सत्तात्मक समाज होने के कारण स्त्री की पराधीनता की निरंतर वृद्धि होती गई। वह विभिन्न भूमिकाओं में 'अन्या' बना दी गई।

औरतों की अस्मिता संबंधी लेखन में कृष्णा सोबती ने बड़े ही खुलेपन के साथ पदार्पण किया। सोबती साहित्य में मानवीयता के साथ–साथ साहसिकता जैसी विशेषताओं की झलक सहज ही देखने को मिलती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण नारी अस्मिता लेखिका के रूप में आपका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वास्तव में पुरुष प्रधान समाज में नारी अपनी पहचान तथा आत्मसम्मान को बहुत ही कठिनाई के साथ बनाने में प्रयासरत रही है। कृष्णा जी ने अपने साहस व आत्मविश्वास के बल पर ही हिंदी साहित्य में ही नहीं वरन् समाज में भी साधारण प्रयास के द्वारा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। आपकी रचनाएं अधिकांशतः महिला लेखन पर ही आधारित हैं। सोबती जी के लेखन से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता का अधिकार स्त्री व पुरुष के लिए समान है। आपकी लेखनी द्वारा स्त्री विमर्श की गूँज मुखरित होती है। उन्नीसवीं सदी के राजनीतिक हलचलों के बीच 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में अपनी परंपराओं, रुढ़ियों से बंधी हुई असहाय नारी का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी पूर्ण रूप से पुरुष पर निर्भर रहती है, इसीलिए पति की मृत्यु के बाद 'पासो' का घर उजड़ जाता है। ''पासो की विधवा माँ जैसे –तैसे अपने भाइयों से विद्रोह कर किसी रईस के घर जा बसती है। पासो भी समाज व नियति के थपेड़ों में वेदना के तमाम अनुभवों के बीच अपने विद्रोही मन व तेवरों में नये ठिकानों से जूझती जाती है।''[2]

हिंदी साहित्य में जिस समय स्त्री के अस्तित्व का नाम लेने वालों का अकाल था उन दिनों सोबती ने उगते सूर्य की किरणों के समान अपने पराक्रम व प्रखरता से नारी अस्मिता की अलख जगाई।

स्त्री अस्मिता वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की संकल्पना है। स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है।

डॉ. संदीप रणभिरकर के शब्दों में–'स्त्री विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने व निर्णय लेने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतना ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है।''[3]

सोबती जी का जन्म स्वतंत्रता के पहले वाले गुजरात में हुआ था जो वर्तमान में पाकिस्तान में है। अपने जन्म से जुड़ी उन्होंने एक पुस्तक लिखी–''गुजरात पाकिस्तान से

गुजरात हिंदुस्तान''। प्रस्तुत पुस्तक में कृष्णा सोबती के साहित्य के अनुभव बड़ी ही व्यापकता एवं गहराई के साथ यहां देखने को मिलता है। सोबती जी का नाम कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' से साहित्यकारों में प्रचलन में आया। प्रस्तुत कहानी संग्रह चौबीस कहानियों को लेकर अपने पाठकों के लिए एक स्वस्थ और समृद्ध जमीन का निर्माण करने वाली है। कोरोना जैसे असाध्य रोगों को लिए हुए देश विभाजन से जुड़ी समस्याओं से ग्रसित स्त्रियों में प्रेम में मिल रही आजादी को ढाल बनाकर सोबती जी ने कहानियों का विषय वस्तु बनाया है। ''कृष्णा सोबती जी ऐसी चुनिंदा रचनाकारों में से थीं जिन्होंने विभाजन नाम के हिंस्र पशु के रक्त, विषाणु, दाँत और नाखून देखे थे।''[4]

'बादलों के घेरे' भी स्त्री–पुरुष की प्रेम कहानी से अछूती नहीं है जिसमें एक स्वस्थ युवा एक तपेदिक की बीमारी से ग्रस्त युवती के प्रेम जाल में फँसता है, बिछुड़ता है और काल के गाल में समा जाता है। इस कहानी में वर्णित प्रेम से उठने वाले अनेकानेक प्रश्न आज भी प्रेम को चरितार्थ करते हैं। तत्पश्चात् 'यारों के यार' जैसी कहानी स्त्री अस्मिता को लेकर धरातल पर आयी। यह अपने समय की विवादास्पद कहानियों में से एक है क्योंकि इसमें बोल्ड देशज शब्दों का प्रयोग किया गया है।

'डार से बिछुरी', 'मित्रो मरजानी', 'तिन पहाड़' और 'ऐ लड़की' जैसी कृतियाँ साहित्य जगत को देकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वह वास्तव में नारी अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए स्त्री विमर्श का पाठ पढ़ाने वाली इस पुरुष सत्तात्मक समाज में हिन्दी की पहली लेखिका है।

प्रकाशन के क्रम में 'डार से बिछुरी' उपन्यास को पहला स्थान प्राप्त है। कृष्णा सोबती ने अपने जन्म से पहले की कारुणिक कथा को इसमें प्रस्तुत किया है।

सोबती जी की प्रसिद्ध रचनाओं में से 'मित्रो मरजानी' भी एक है जिसमें मित्रो एक पात्र के रूप में है। ऐसा माना जा सकता है कि स्त्री पात्र 'मित्रो' का कोई संबंध पंजाब से नहीं था। झगड़ालू स्वभाव के साथ 'मित्रो' सोबती जी के अन्तस् में बैठ गई और बाद में उभर कर सामने आई। इसी प्रकार कहानी 'ऐ लड़की' में लड़की की बूढ़ी माँ का संस्मरण जिसमें कोलकाता जाने और समुद्र के विशालतम रूप को प्रथमदृष्ट्या देखने का सुख प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि नारी को एक संकुचित दुनियाँ में जीने के लिए बाध्य करना हिंसा को बढ़ावा देना है। पुरुष सत्तात्मक समाज जिस प्रकार से स्त्री को अमानवीय कृत्य करने के लिए विवश करता है, यह घोर निंदनीय है। लड़की का भविष्य उसकी माँ के संस्करण में छिपा हुआ प्रतीत होता है। कृष्णा सोबती के अन्य उपन्यासों में 'जिंदगीनामा', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'दिलो दानिश' और 'समय सरगम' काफी प्रसिद्ध रहे। ये उपन्यास हमारी संस्कृति और सामाजिकता के बड़े प्रमाण हैं। इन कृतियों में उपन्यास के मान्य स्वरूप से हटकर स्वतंत्र गल्प दिखाई देता है। उनके लेखन में सामाजिक और सांस्कृतिक

आवश्यकताओं की नारेबाजी नहीं दिखाई देती बल्कि अपने समय और समाज को समझने की कला दिखाई देती है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास सन 1972 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो बचपन में समाज से कलंकित हो जाती है और भाव शून्य होकर क्रूर और असंवेदनशील हो जाती है, परंतु बाद में वह एक ऐसे पुरुष के संपर्क में आती है जिसके प्रभाव से उस कलंकित वातावरण से मुक्त होकर पुनः एक सामान्य महिला की श्रेणी में आ जाती है।

''कृष्णा सोबती के रचे सारे जिंदगीनामें भी तो बिल्कुल ऐसे ही हैं। उनकी समूची कथा रचना उस आईने की तरह है जिसके सामने अपने सत्य, रजस, तमस में डूबी बहुरूपा प्रकृति खड़ी है। यह त्रिगुणात्मक सृष्टि–तनया–छवि ही कृष्णा सोबती जी की कथा प्रकृति में बसी हुई है। कृष्णा सोबती जी अपनी कथाओं में स्त्री के सामने लोकरंग शब्दों का आईना रखती हैं।''[5]

मृदुला गर्ग ने सोबती जी की भाषा को स्त्री की भाषा के रूप में देखा है क्योंकि उनके लिए जिंदगीनामे ऋतु काल में ही बीतते हैं जहां प्रकृति से स्त्री और स्त्री से प्रकृति वक्त के बारहमासे में बरत रहे।

'मित्रो मरजानी' से लेकर 'डार से बिछुरी' और अन्य रचनाओं को नारी के नजरिए से अगर देखा जाए तो यह कहना गलत नहीं होगा कि नारीवाद का जन्म विशेष ऐतिहासिक कारणों से हुआ है। नारीवाद न केवल औरतों को मुक्त करता है बल्कि पुरुषों को भी इतिहास व समाज की नई समझ देता है। कृष्णा सोबती की लेखनी निश्चित रूप से स्त्री अस्मिता के लेखन के लिए प्रबल रूप से मानी जाती है।

निष्कर्ष–

साठोत्तरी स्त्री लेखिकाओं की रचनाओं में स्त्री के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। उनकी अपनी उपलब्धियों के साथ–साथ अपने अलग–अलग वजूद हैं। क्या नारी की अस्मिता को हिंदी साहित्य वास्तविकता में पहचान पाएगा? क्या हिंदी उपन्यास में स्त्री अस्मिता के साथ अस्तित्व व चेतना रूपी धरातल पर जाकर साहित्यकारों से प्रत्यक्ष संवाद हो पाएगा? हमारी दृष्टि में इन सभी प्रश्नों के उत्तर आज तक प्राप्त नहीं हो पाए।

पुरुष सत्तात्मक समाज में औरतों की अस्मिता की लड़ाई की झलक स्पष्ट रूप से

देखी जा सकती है।

नारी प्राचीन काल से ही पीड़ित एवं शोषित रही है। पुरुष सत्तात्मक समाज अपनी कुंठित भावनाओं की आड़ में नारी को हमेशा दबाकर रखने की चेष्टा करता रहा है। कभी घर की मर्यादा की आड़ में तो कभी देवी कहकर घर की चारदीवार रूपी जेल के अंदर कैद करने का प्रयास करता है। इन्ही रूढ़िवादी बेड़ियों को तोड़ने की लड़ाई है–नारी के अस्तित्व व अस्मिता की तलाश। विजय प्राप्त करने के लिए ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री व पुरुष परस्पर सामंजस्य स्थापित करते हुए सौहार्द्र का दामन न छोड़े।

संदर्भ–सूची

1. नया ज्ञानोदय : फरवरी 2019, पृष्ठ 13
2. कथादेश : मार्च 2019, पृ. 07
3. पंचशील शोध समीक्षा, पृ. 87
4. हंस : अप्रैल 2019, पृ. 49
5. हंस : अप्रैल 2019, पृ. 37
6. समकालीन हिंदी कहानियाँ, कृष्णा सोबती–डार से बिछुड़ी, ऐ लड़की, मित्रो मरजानी जिंदगीनामा, सूरजमुखी अंधेरे में, दिलो दानिश।

उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी की ठेकेदारीः सामाजिक बहिष्करण या मुक्ति का अस्त्र?

करन
शोधच्छात्र
मोबाइल : 8527726450
ईमेल : karankvs.109@gmail.com

आज उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम के रूप में चुना जाता है। शोषित और पिछड़े तबकों से आने वाले विद्यार्थी काफ़ी संघर्षों के बाद उच्च शिक्षा में पहुँच पाते हैं। उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी का वर्चस्व और असुविधाजनक शैक्षणिक ढांचा अक्सर ऐसे विद्यार्थियों को शिक्षा–व्यवस्था से बाहर धकेल देते हैं।प्रस्तुत आलेख में उच्च शिक्षा के अंग्रेज़ी माध्यम ढांचे की पड़ताल की गयी है तथा उच्च शिक्षा में संस्थागत चुनौतियों को उजागर कर भाषा एवं सत्ता के सामाजिक–राजनीतिक–सत्तात्मक पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया हैं। एक ओर जहां अंग्रेज़ी को सामाजिक बहिष्करण के रूप में देखा जाता है वहीं दूसरी ओर यह गरीब, शोषित और पिछड़े वर्ग के सामने सामाजिक मुक्ति के अस्त्र के रूप में भी उभरकर सामने आयी है। उच्च शिक्षा में असुविधाजनक शैक्षणिक ढांचे न केवल समाज के उत्पीड़ित वर्ग को शिक्षा से बहिष्कृत करते हैं बल्कि यह ज्ञान–उत्पादन की प्रक्रिया को एक–तरफ़ा कर ज्ञान के लोकतंत्रीकरण पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं।

आज शिक्षा की पहुँच के मायने अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा की पहुँच में तब्दील हो गए हैं। अंग्रेज़ी माध्यम शैक्षिक संस्थानों में आज हर कोई पढ़ना चाहता हैं। आज़ादी के बाद से अंग्रेज़ी माध्यम शिक्षा ने इतनी तेज़ रफ्तार पकड़ी है कि इसका विस्तार न केवल एक भाषा विषय के रूप में हुआ है बल्कि इसको शिक्षा के माध्यम के रूप में चुना जाने लगा है। उच्च शिक्षा में इसका व्यापक रूप बहुत हद तक दिखाई पड़ता है, जहां कक्षा में होने वाली चर्चाओं से लेकर पाठ्यसामाग्री, क्लास के व्हाट्सप्प ग्रुप से लेकर कैंटीन में विद्यार्थियों के बीच होने वाली बातचीत और यहाँ तक की हंसी–मज़ाक सभी अंग्रेज़ी में ही होते हैं। अंग्रेज़ी का ऐसा माहौल देख वे विद्यार्थी जो समाज के वंचित तबकों से और गैर–अंग्रेज़ी पृष्ठभूमि से आते हैं अक्सर स्वयं को अलग–थलग महसूस करने लगते हैं। ऐसे में किसी विशेष भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर उसका वर्चस्व कायम करना ऐसे विद्यार्थियों को शिक्षा–व्यवस्था से बहिष्कृत करने का एक उपकरण है। विद्यार्थियों से न केवल अंग्रेज़ी में बोलने, लिखने व पढ़ने की मांग अथवा अपेक्षा की जाती है बल्कि इस भाषा में सहजता से सोच पाने की भी अपेक्षा की जाती है। अपने आसपास लोगों को अंग्रेज़ी में बोलता देख और खुद को अंग्रेज़ी में जूझते हुए देख बहुत से विद्यार्थी स्वयं को अपमानित महसूस करते हैं। जिसके कारण बहुत से विद्यार्थी अंग्रेज़ी सीखने के लिए"इंग्लिश कोचिंग सैंटर्स"से एक से दो माह का इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स में दाखिला तक ले लेते हैं परंतु जगह–जगह खुले

 ISSN 2231-0584

अंग्रेज़ी के कोचिंग सैंटर्स की गुणवत्ता इतनी खराब होती हैं कि यह विद्यार्थियों को कुछ नहीं सीखा पाते। जहां एक ओर 'प्रिविलेज्ड' तबकों से आने वाले विद्यार्थी अंग्रेज़ी में दी जाने वाली पाठ्यसामाग्री की समझ चंद पलों में बना लेते हैं तो वहीं दूसरी ओर शोषित और पिछड़े तबकों से आने वाले विद्यार्थी उस पाठ्यसामग्री का अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करने में लगे रहते हैं कि कहीं कुछ अनुवाद करके थोड़ा–सा समझ में तो आ जाए। विद्यार्थियों को तीस–चालीस (बल्कि इससे कही अधिक) पृष्ठों की अंग्रेज़ी में रीडिंग पकड़ाकर शिक्षकों के लिए यह कहना बहुत आसान हो जाता हैं कि इसको अगली क्लास में पढ़कर आना है और उसी के आधार पर चर्चा करेंगे या सवाल–जवाब पूछेंगे। ऐसे में कुछ विद्यार्थी ही कक्षा में सवाल–जवाब की प्रक्रिया में जुड़ पाते हैं और इन्हीं के सवाल–जवाब ही आगे चलकर ज्ञान बन जाते हैं जबकि दूसरी ओर, कुछ विद्यार्थियों के सवाल न तो कभी कक्षा के भीतर आ पाते हैं और न ही ज्ञान–उत्पादन की प्रक्रिया का हिस्सा बन पाते हैं। इसीलिए ज्ञान और भाषा के बीच के इस संबंध को समझना और भी ज्यादा ज़रूरी हो जाता हैं। हाशिए के तबके से आने वाले विद्यार्थियों को तमाम तरह की हिंसाओं का सामना करना पड़ता हैं। इनमें से एक है–ज्ञान के माध्यम से की जाने वाली हिंसा, जिसको अंग्रेज़ी में'एपीस्टेमिक वायलेंस'कहा जाता हैं। यह माना जाता हैं कि उच्च शैक्षिक संस्थान एक ऐसी जगह हैं जहां ज्ञान बाँटा जाता है परंतु दुर्भाग्यवश इस ज्ञान को एक खास भाषा में बाँटा जाता है जो 'प्रिविलेज्ड' तबकों से आने वाले विद्यार्थी ही समझ पाते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो इस भाषा को जानते नहीं हैं उनपर हिंसा की जाती है। ऐसी हिंसा जिसका उन्हें शायद कभी पता तक नहीं चल पाता। उच्च शिक्षा में जिस भाषा में ज्ञान बाँटा जाएगा या ज्ञान–उत्पादन किया जाएगा वह अपने आप में बताता है कि उच्च शैक्षिक संस्थान समाज के किस तबके को शिक्षित करना चाहते हैं, किन लोगों तक ज्ञान पहुँचाना चाहते हैं और किन लोगों के सवालों को ज्ञान प्रक्रिया का हिस्सा बनाना चाहते हैं। आज बहुत से शिक्षक ऐसे शोधार्थियों का शोध निर्देशक बनना चाहते हैं या सुपरवाईज़ करना चाहते हैं जिनकी अंग्रेज़ी में अच्छी पकड़ है (नाग, 2019) और ऐसे शोधार्थी जिनकी अंग्रेज़ी पर कम पकड़ होती हैं या जो निम्न तबकों से आते हैं अगर वे गलती से किसी सुपरवाईज़र (खासतौर पर सवर्ण जाति वाले) के अंतर्गत आ भी जाते हैं तो उन्हें तमाम तरीकों से प्रताड़ित किया जाता है (सुकुमार, 2008)। अतः उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी की ठेकेदारी आज न केवल भाषा के वर्चस्व को कायम करती है बल्कि इसका उपयोग जाति, वर्ग और लिंग (जेंडर) की सामाजिक संरचनाओं को बनाए रखने के लिए भी किया जाता है।

आज कई विश्वविद्यालयों में मूल्यांकन के तौर–तरीके बदल रहें हैं जिसमें क्लास–पार्टिसिपेशन, ग्रुप–डिस्कशन और प्रेजेंटेशन आदि भी शामिल हैं। जाहिर सी बात हैं जब शिक्षा का माध्यम ही अंग्रेज़ी बनता जा रहा है तो क्लास–पार्टिसिपेशन या फिर ग्रुप–डिस्कशन के दौरान हो रही चर्चाएँ भी अंग्रेज़ी में ही चलेगी। कक्षा की चर्चाओं में वे विद्यार्थी ही बढ़–चढ़कर भाग ले पाते हैं जो अंग्रेज़ी बोलने में माहिर हैं, जो महँगे–महँगे प्राइवेट स्कूलों से पढ़कर आए हैं, जिनके घरों में अंग्रेज़ी के संसाधन हैं और जिनके पास

एक खास तरह की सामाजिक–सांस्कृतिक पूंजी है। गरीब, शोषित और वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले विद्यार्थी अक्सर सरकारी स्कूलों से पढ़कर आते हैं और उन्हें क्लास–पार्टिसिपेशन व कक्षा में हो रही किसी भी चर्चा में जुड़ने ही नहीं दिया जाता। ऐसा नहीं है कि वे क्लास–पार्टिसिपेशन या ग्रुप–डिस्कशन के दौरान हो रही चर्चाओं में जुड़ना नहीं चाहते बल्कि कक्षा की भाषा उन्हें चुप करा देती है। ग्रुप–प्रेजेंटेशन के दौरान भी बहुत बार यह देखने को मिलता है कि विद्यार्थी आपस में ग्रुप बना लेते हैं एक ग्रुप ऐसे विद्यार्थियों का बन जाता है जो अंग्रेज़ी में बिना रुकें प्रेजेंटेशन देते हैं और दूसरा ग्रुप ऐसे विद्यार्थियों का बन जाता हैं जो अंग्रेज़ी बोलने में झिझक महसूस करते हैं। क्लास–पार्टिसिपेशन, ग्रुप–डिस्कशन और प्रेजेंटेशन आदि होने के बाद, विद्यार्थी को इसी के आधार पर अंक भी दिए जाते हैं। उच्च शिक्षा में हर विद्यार्थी समृद्ध ज्ञान, विचार और अनुभव लेकर आते हैं परंतु अंग्रेज़ी में जूझने के कारण अक्सर विद्यार्थी इनको दूसरों के सामने व्यक्त नहीं कर पाते। ऐसे विद्यार्थी जो अंग्रेज़ी में जूझने के कारण अपने विचारों को अंग्रेज़ी में अच्छे से नहीं लिख पाते या कक्षा में होने वाली चर्चाओं में बढ़–चढ़कर भाग नहीं ले पाते, बहुत बार उनको या तो कम अंक दिए जाते हैं या फिर उन्हें फ़ेल कर दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप बहुत से विद्यार्थियों की सेमेस्टर–बैक आ जाती है और कुछ ड्रॉप–आउट कर जाते हैं। वैसे यहाँ ड्रॉप–आउट शब्द की जगह 'पुश–आउट' शब्द का उपयोग करना ज्यादा सटीक होगा, क्योंकि यह विश्वविद्यालय के असुविधाजनक शैक्षणिक ढांचे ही हैं जो विद्यार्थियों को शिक्षा–व्यवस्था से बाहर धकेल देते हैं। काफ़ी विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को अकादमिक क्षेत्र में अच्छे अंक प्राप्त करने पर छात्रवृत्ति भी मिलती है। इसका मतलब यह हुआ कि जिस विद्यार्थी ने जितने ज्यादा अंक प्राप्त किए होंगे उसको छात्रवृत्ति मिलेगी। जिन विद्यार्थियों का दबदबा कक्षा की चर्चाओं में दिखता है उन्हीं विद्यार्थियों ने छात्रवृत्ति पर भी कब्ज़ा कर रखा है।

उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी का वर्चस्व शिक्षकों के नियुक्तिकरण पर भी एक गहरा प्रभाव डालता है। इसमें कोई राय नहीं है कि आज विश्वविद्यालयों/कॉलेजों में शिक्षकों का चयन भी इस बात को ध्यान में रखकर किया जाता है कि वे पाठ्यचर्या को अंग्रेज़ी में पढ़ाने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम हैं भी या नहीं। बहुत से शिक्षक अधिकांश समय अंग्रेज़ी के अलावा किसी और भाषा में बात करना ही नहीं चाहते, उनको लगता है कि अगर वे किसी और भाषा का उपयोग करेंगे तो यह उनको बाकी लोगों के सामने कम बुद्धिमान दिखलायेगा। परंतु एक शिक्षक के रूप में हमारे लिए यह सोचना बेहद ज़रूरी है कि हम अपनी कक्षाओं के भीतर विद्यार्थियों को किस भाषा का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। शिक्षकों के भी अपने पूर्वाग्रह व मान्यतायें हो सकती हैं जिसका सीधा प्रभाव सीखने–सीखाने की प्रक्रिया पर पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई विद्यार्थी फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोल रहा है तो बहुत से शिक्षक सोचते हैं कि यह एक अच्छा विद्यार्थी है, जबकि दूसरी ओर एक ऐसा विद्यार्थी भी हो सकता है जो हिंदी अच्छे से जानता हो पर उसके पास समृद्ध विचार हो। ऐसे कुछ पूर्वाग्रहों पर शिक्षकों को गहन विचार करने की आवश्यकता है

जिसके लिए सभी स्तरों पर अधिक से अधिक संवाद करना और भी ज्यादा ज़रूरी हो जाता है ताकि कक्षा एक ऐसा स्थान बन सके जहा गैर–अंग्रेज़ी माध्यम पृष्ठभूमि से आए विद्यार्थी भी कक्षा की चर्चाओं में बराबर की हिस्सेदारी महसूस कर सकें।

धीरे–धीरे उच्च शिक्षा में एक उबाल आ रहा है और शोषित वर्गों से आए विद्यार्थियों का समूह ऊभरता हुआ नज़र आ रहा है जो सदियों से हुए सामाजिक–ऐतिहासिक शोषण पर गहन तरीके से सोच रहा है और आवाज़ उठा रहा है। आज विश्वविद्यालयों/कॉलेजों के अलोकतांत्रिक रवैये पर ऐसे विद्यार्थियों का समूह विश्वविद्यालय प्रशासकों से लगातार प्रश्न करता नज़र आ रहा है। ऐसे में विश्वविद्यालय प्रशासकों को जवाबदेह होना पड़ेगा। यह बहुत अच्छी बात है कि उच्च शिक्षा में जिस भाषा से वर्चस्व कायम किया जा रहा है उसी भाषा का उपयोग कर बहुत से विद्यार्थी प्रशासन के सामने कठिन सवालों को पूछ रहे हैं और साथ ही जवाब भी मांग रहे हैं। जहां एक ओर अंग्रेज़ी को समाज में असमानताओं को और अधिक व्यापक करने के रूप में देखा जाता है वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ी भाषा को सामाजिक गतिशीलता और मुक्ति का अस्त्र भी माना जाता हैं। बहुत से लोग अंग्रेज़ी के खिलाफ तर्क देते हैं, जबकि काँचा इलैया, चन्द्रभान प्रसाद जैसे विद्वान तर्क देते हैं कि अंग्रेज़ी दलितों की भाषा है और उन्हें स्थानीय भाषा सीखने के लिए मजबूर होने की बजाय अंग्रेज़ी भाषा को 'क्लैम'करने की आवश्यकता है। इलैया (2013) बोलते हैं कि"दलितों का मुख्य एजेंडा आरक्षण नहीं है। मेरे लिए समानता पाने की राह अंग्रेज़ी शिक्षा है। मेरे लिए शिक्षा ही आशा है, आरक्षण नहीं, और मैं अंग्रेज़ी शिक्षा पर ज़ोर देता हूँ।" यहाँ इलैया अंग्रेज़ी शिक्षा को समाज में समता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के रूप में देख रहे हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा को दलितों के लिए सामाजिक मुक्ति का एक अस्त्र समझा जाता है जो उन्हें जाति–व्यवस्था से हुए अन्याय और शोषण से लड़ने में मदद करेगा।

अंग्रेज़ी को उत्पीड़क की भाषा भी कहा जाता है जिसका उपयोग वह उत्पीड़तों को अपमानित करने और उनको शर्मिंदा करने के लिए करता है परंतु उत्पीड़क की सत्ता को ध्वस्त करने के लिए उत्पीड़ितों को उत्पीड़क की भाषा का उपयोग करना होगा, उस भाषा को जब्त करना होगा, उस भाषा में अपने अर्थ गढ़कर अपनी संरचना देनी होगी और फिर उसी भाषा को उत्पीड़क के खिलाफ मोड़ना होगा (हुक्स, 2002)। सत्ता की भाषा को चुनौती देने के लिए, सत्ता की भाषा का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जितना भी ज्ञान उत्पीड़क की भाषा में पढ़ा–लिखा गया है वह ज्ञान उत्पीड़कों के सवालों, उनकी दुनिया और अनुभवों पर आधारित है। अतः हाशिये की आवाज़ और शब्द तब तक शिक्षा में नहीं आ पाएंगे जब तक यह हमारे लेखन और कक्षा की लेन–देन का हिस्सा नहीं बन जाते। यह ज़रूरी है कि विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि, संस्थागत ज्ञान और सुविधाजनक शैक्षणिक संरचनाओं की कमी के बीच के अंतर को खत्म किया जाए। उच्च शैक्षिक संस्थानों को गरीब, शोषित और पिछड़े तबकों से आए विद्यार्थियों जिनको स्कूली स्तर पर गुणवत्तापूर्ण अंग्रेज़ी शिक्षा नहीं मिल पायी उनको शैक्षणिक समर्थन देने में जुटना ही होगा। अंग्रेज़ी

सीखने में कोई बुराई नहीं है, कड़वी सच्चाई तो यह है कि आज के समय में अंग्रेज़ी पर पकड़ होना एक आवश्यकता बन गयी है। परंतु, बाकी भाषाओं में लिख पाने और सोच पाने के अवसरों को गंवाकर केवल और केवल अंग्रेज़ी से जुड़ना भी चिंता का विषय है। अतः अंग्रेज़ी के बहिष्करण के उपकरण के स्वरूप को खत्म करने के लिए और ज्ञान–उत्पादन की प्रक्रिया को लोकतांत्रिक बनाने के लिए, उच्च शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा भाषाओं को लाना बहुत ज़रूरी है।

संदर्भ–सूची

1. नाग, शिवानी (2019). तालीम की लड़ाईः उच्च शिक्षा में सामाजिक बहिष्करण के विविध रूप. पाठशाला, 2 (1), 66–69.

2. Hooks, B. (2017). Language. T*eaching to Transgress: Education as the Practice of Freedom*. New York: Routledge, pp. 167-177.

3. Mathur, S. (2013, February 15). Kancha Ilaiah: Even if 10% dalit children got English education, India would change. *Times of India*. Retrieved from https://timesofindia.indiatimes.com/interviews/Kancha-Ilaiah-Even-if-10-dalit-children-got-Englisheducation-India-would-change/articleshow/18503625.cms?

4. Sukumar, N. (2008). Living a Concept: Semiotics of Everyday Exclusion. *Economic and Political Weekly, 43* (46), 14-17.

एकेडेमॉस (2021)
ISSN 2231-0584

कमला नेहरू कॉलेज
(NAAC द्वारा 'A' ग्रेड मान्यता प्राप्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
फोन : 26494881